खांडेकर साहित्य : ७

कल्पलता

ललित निबंध

वि. स. खांडेकर

मूल्य पाँच रुपये

चि. कल्पलता
की
बाललीलाओंको

विषय-सूचि

विषय-सूचि

●●●

१

नया जेब

मुझे घूमनेकी स्वभावसे ही बड़ी रुचि है। बचपनमें दोपहरको कृष्णाके किनारे जाकर किसी शान्त स्थानपर बैठकर, पानीकी ओर देखते हुए मनोराजमे खो जानेका मुझे बड़ा शौक था। उनमेके बहुतसे मनोराज अब काल-प्रवाहमें बह गये हैं। परतु अब भी मेरे मनमें बार बार यह आता है कि, घरमें किसीको भी कोई सूचना दिये बिना, चिलचिलाती हुई धूपमे कहीं दूर घूमनेके लिये चला जाऊँ, और लाल रँगकी सुन्दर बुँदियोंवाली साड़ी पहनी हुई तरुणीकी तरह दीखनेवाले गुलमोहरकी छायामें, – निरतर मधुर किलकारियाँ करनेवाले छोटे बच्चेकी तरह सरसराते रहनेवाले पीपलके तले – अथवा बरसोंसे तूफानके साथ झगड़ते रहनेके कारण शरीरपर बुढापेकी छाया आ जानेपर भी किसी भावुक बूढ़े नानाकी तरह अपने अनन्त हाथोंसे आशीर्वाद देनेवाले वटवृक्षकी छायामे बैठकर नये नये मनोराज गढ़नेमें निमग्न हो जाऊँ।

परंतु यदि इससे कोई यह निष्कर्ष निकाले कि घूमने जानेके लिये दोपहरका वक्त ही मुझे सबसे अधिक पसंद है, तो वह ग़लत होगा। दोपहरको छाता लेकर घूमने जानेवाले सभ्य महाशय मैंने देखे हैं। उनके विषयमें मै हमेशा आदरसे ही बोलूँगा। परतु उस आदरका प्रकार जरा भिन्न है। सती जानेवाली स्त्री अथवा

पैराशूटसे शत्रुके देशमें उतरनेवाले सैनिकके प्रति जो आदर मुझे मालूम होता है; उसी तरहकी भावना है वह!

स्वय मुझे दोपहरको घूमने जानेकी जो सनक आती है, वह ठीक कविकी स्फूर्तिकी तरह होती है। कभी कभी ही आती है वह! परतु जब मुझमे उसका सचार हो जाता है, तब वह मुझे बिलकुल बेचैन कर देती है। वैसे हमेशा प्रिय लगनेवाली घरकी सारी बातें, जैसे पत्नीका हास-परिहास, पुस्तकें, बच्चोंकी किलकारियाँ—इन सब बातोंसे उस क्षण मेरी अरुची हो जाती है।

परतु ऐसे क्षण मेरे जीवनमें यदा कदा ही आते हैं। मेरे घूमने जानेका अत्यंत प्रिय समय प्रातःकाल ही है। किन्तु यह प्रातःकाल एक विशेष प्रकारका चाहिए। कुछ लोग सुबह होनेसे पहले अँधेरेमें ही घूमना पसद करते हैं। ये व्यायाम-प्रेमी लोग फकीरकी तरह हाथमें लालटेन लेकर जाते हैं या बिना लालटेनके जाते हैं, यह मैं नहीं जानता। परतु किसी 'स्टण्ट' फिल्मकी नायिकाकी तरह जब सृष्टि-सुदरी अँधकारका नकाब ओढ़कर सचार करती रहती है, उस समय खलनायककी तरह उसकी ओर आँखें फाड़कर देखनेमें क्या आनन्द है, इसकी मुझे कल्पना ही करते नहीं बनती! अँधकार दूर होतेतक मैं जिस तरह घरसे बाहर निकलना पसद नहीं करता, उसी तरह सूर्योदय होनेके बाद, चाय पीकर आरामसे घूमने जाना भी मुझे नापसद है। इस समय सृष्टि यद्यपि अँधेरा घूँघट हटा देती है, फिर भी कुल मिलाकर उसका स्वरूप पुरानी साड़ी पहनकर घरके कामोंमें लगी हुई वयस्क नारीकी तरह लगता है। जो इन दो समयोंके बीचमें घूमने जाता है, उसे ही उसके वास्तविक रमणीय स्वरूपका दर्शन हो सकता है। ऐसे समय जब कि कहीं कहीं थोड़ा थोड़ा दीखने लगा है, घूमनेके लिये बाहर निकलनेमें मुझे हमेशा ही बड़ा आनद आता है। आसपास देखिये तो अँधेरा धीरे धीरे शिथिल पड़ता जाता है। जैसे कोई लावण्यवती युवती अपने जालीदार अवगुंठनको कोमल हाथोंसे हटाते हुए हमारी ओर देखकर मुस्करा रही है! आकाशमें किसी जगह दो-चार निस्तेज तारे टिमटिमाते रहते हैं। परतु छोटे बच्चेकी तरह नाचती-खेलती आनेवाली मीठी मीठी प्रात-वायु किसी अज्ञात स्थानसे सुगधका झोका लेकर आती है और कानोंमें गुनगुनाती है– 'इस प्रकार पागलकी तरह क्या देख रहे हो? पृथ्वीके तुम्हारे हाथमें आनेवाले, तुम्हें उल्लसित करनेवाले तारे, वृक्षों और लताओंपर खिलने लगे हैं। चलो, वहाँ चलें!'

कल सुबह जब मै घूमनेके लिये बाहर निकला, तो प्रात वायुने ठीक यही शब्द मेरे कानमें गुनगुनाये। दिवालीके लिये माँ मीठे मीठे पदार्थ तैयार कर रही है और उसी समय नटखट लड़का एकदम आकर उनमेंकी एक गुजिया लेकर भाग जाता है, उसी तरह वह हवा कहींसे मीठी सुगध ले आयी थी। परिचित गीतके मधुर स्वर सुनकर मनुष्यके पैर जहाँके तहाँ थम जावे, उसी प्रकार मेरी एकदम स्थिति हो गयी। हरसिंगारके फूलोंकी सौम्य पर मधुर सुगध थी वह। मेरे मनमें आया कि रुक्मिणी और सत्यभामाके बीच लड़ाई करनेके लिये हरसिंगारकी योजना करनेवाला कवि, वास्तवमे बडा नयी सूझवाला होना चाहिए!

मैं रास्ता छोड़कर भीतरकी तरफ मुड़ा। एक छोटी-सी घरकी बगियामें सात-आठ वर्षकी एक बालिका तेजीसे फूल बीन-बीनकर टोकनीमें रखती जाती थी। वह एक गीत भी गुनगुना रही थी। उस गीतके शब्द मुझे स्पष्ट रूपसे सुनाई न पड़े। परतु इस समय एक कल्पना जरूर चटपट मेरे मनमें आ गयी। आजकल फिल्म, रेडिओ और ग्रामोफोनपर गा-गाकर मुझ सरीखे लाखों आदमियोंका सिर पका देनेवाली अनेक सिने-तारिकाएँ और तानसेनोंको यदि यह जानना हो कि सगीत कैसा होता है, तो उन्हें यहीं आना चाहिए।

चटसे उस लड़कीने मेरी ओर देखा। तुरत ही वह हँसती हुई आगे बढ़ी। हरसिंगारके उन कोमल फूलोंको हौलेसे उठाकर उसने मेरे सामने बढाया। मैंने उन्हें अपने हाथमे ले लिया। हाथोंमें उन नन्हे नन्हे फूलोंकी मनमानी सुगंध लेते हुए मै मनमे कह रहा था – 'यदि कल एकदम मृत्यु मेरे सामने आकर खड़ी हो जाय और मुझसे कहे – 'तुझे इसी समय मेरे साथ चलना होगा। तू अपनी पसंदकी सिर्फ एक ही चीज अपने साथ ले सकता है,' तो मै एक क्षणका भी विचार न कर उससे कहूँगा, – 'मुझे सिर्फ अँजलि-भर हरसिंगारके फूल अपने साथ ले लेने दे। जीवनमे जीवित रहने योग्य जो जो मुझे मिला है, उसका प्रतिबिम्ब इन कोमल सुगंधी फूलोंमें मुझे हमेशा दिखायी देगा।''

इस विचार-तंद्रामें जागकर मै देखता हूँ तो वह बालिका दूरके एक घरमे अदृश्य हो रही थी। मेरे मनमे यह विचार आया कि उसे पुकारकर उससे दो मीठी बातें करूँ। परतु वह जहाँके तहाँ ही रहा। वह एकदम दृष्टिसे ओझल हो गयी। सोचा, उसे ज़ोरसे पुकारूँ, पर मै उसका नाम भी नहीं जानता था।

मैं लौटकर सड़कपर आया और आगे चलने लगा।

फूलोंको हाथमें लिये हुए कितनी देरतक चलता रहता? इसलिये सहज ही मैं सोचने लगा कि उन्हें कहाँ रखूं। मैंने चटसे अपने बायें जेबको टटोलकर देखा। उसमें चार-पाँच कागज पड़े थे। मैं उन्हें निकालकर देखने लगा। एक था डॉक्टरका बिल, दूसरी थी घरके किरायेकी चालू महीनेकी रसीद, तीसरी थी किसी फलाने मिस्टर और मिसेसके द्वारा भेजी गयी अपने पुत्रके विवाहकी अंग्रेजी-में छपी निमन्त्रण-पत्रिका। चौथा था भोलेपनका स्वाँग बनानेवाले एक झूठे व्यक्ति-का पत्र। ऐसे लोगोंके साथ मेरे हाथके ये निर्मल और कोमल फूल रहे, यह कल्पना मुझे बिलकुल असह्य लगने लगी। मैंने उन फूलोंको बायें हाथमें लिया और दाहिने जेबमें हाथ डाला। इस जेबमें मेरी तालियाँ रखी थीं। बड़े बड़े पण्डितोंने शब्द-कोषमें 'ताली' शब्दका क्या अर्थ दिया है, यह मैं ठीकसे नहीं जानता। कोल्हटकरके द्वारा किया गया उसका इस आशयका वर्णन कि वह तालेकी पत्नी है और पतिके पेटमें घुसकर उसका मुँह खोलनेमें सिद्ध-हस्त होती है, मैंने पढ़ा है। परंतु कहीं भी और किसी भी समय जब मैं ताली देखता हूँ, तो सबसे पहले मेरे मनमें यही कल्पना आती है कि मनुष्यका मनुष्यके ऊपर जो अविश्वास है, उसीका वह एक मूर्तिमान प्रतीक है! महायुद्धोंको रोककर अथवा समाजवादका सर्वत्र प्रसार करके जगको सुखी बनाया जा सकता है या नहीं, इस विषयमें मैं किंचित सशंक हूँ। परतु मेरा यह विश्वास है कि जिस दिन दुनियाकी आखिरी ताली नष्ट हो जायगी उसी दिन स्वर्ग पृथ्वीपर अवतीर्ण हो जायगा!

इसलिये तालियोंके गुच्छेके साथ हाथके फूलोंको रखना यानी मँजे हुए अप-राधियोंके झुंडमें गांधीजीको ले जाकर रख देनेकी तरह ही था। यह करनेके लिये मेरा मन तैयार न होता था। मैंने अपने ऊपरके छोटे जेबकी ओर देखा।

मैं प्रायः फाउंटेनपेन अपने पास नहीं रखा करता। बार बार यह अनुभव होते रहनेके कारण कि, ऑटोग्राफ और सन्देश माँगनेवाले लोग सब ओर घातमें बैठे रहते हैं, मैंने करीब दस सालसे उसका बहिष्कार कर दिया है। परतु आजका दिन कुछ अलग ही था। मैंने ऊपरके जेबकी ओर देखा। उसमेंसे फाउंटन पेन बड़े ठाटसे झाँक रहा था। इस उद्देश्यसे कि बच्चे खेलमें उसका फैसला न कर दें, पत्नीने उसे रातको मेज़से उठाकर मेरे जेबमें रख दिया होगा! इस जेबमें फूलोंको रखनेके लिये मैंने अपना हाथ उठाया। परतु दूसरे ही क्षण मेरे मनमें आया कि अपने प्रिय फूलोंको इस प्रकार अपमानित करनेका मुझे क्या

अधिकार है ? इस फाउटनपेनसे आजतक मैंने न जाने कितनी झूठी कहानियॉ लिखी हैं। कई तरुण और तरुणियोंकी नोट-बुकोंमे 'गा दीपगग गानी' सदेश इसी फाउटनपेनसे लिखा, परतु उस सदेशको आचरणमे उतारनेका क्या एक बार भी मैंने कभी प्रामाणिक प्रयत्न किया है ?

मैंने चुपचाप अपना हाथ पीछे खींच लिया।

भीतरके जेबमे मनीबैग था। पैसे और फूल !* छिः ! इतनी विषम जोड़ी दुनियामे और किसीकी भी न होगी !

फूलोंको हाथोंमे ही रखे हुए मै चलने लगा। हाथमे रखे उन फूलोंको देखते हुए मुझे गडकरीकी 'फुले वेचलीं पण —' * कविताका स्मरण हुआ। उस सुदर कविताका नायक अनेक वनोंमे खोजकर अपनी प्रेमदेवीकी पूजाके लिये नाना प्रकारके फूलोंको इकट्ठा करता है। परतु जिसके लिये जी तोड़कर उसने वे फूल इकट्ठे किये होते हैं, उसकी वह हृदयशारदा ही उससे बिछुड़ जाती है। किसी पागलकी तरह फूलोंको हाथमे लिये उसकी खोज़मे भटकनेवाले उस नायकका चित्र मेरी ऑखोंके सामने खडा हो गया।

तुरत ही मेरे ध्यानमे आया कि – राहगीर मेरी ओर टकटकी लगाकर देख रहे हैं। इतनी सावधानीसे हाथमे हरसिगारके फूल लेकर घूमने जानेवाला व्यक्ति उन्होंने अपने जीवनमे प्रथम बार ही देखा होगा ! उनकी उस विचित्र दृष्टिके कारण मै कुछ लज्जित-सा हो गया। मेरे मनमे आया – हजारो वर्ष हो गये लोग कोट और ॲगरखोंका उपयोग कर रहे हैं, परतु अभीतक एकके भी मस्तिष्कमे यह कल्पना कैसे नहीं आयी कि प्रेमसे दिये गये फूलोंको सॅजोकर हौलेसे अलग रखनेके लिये अपने कोटमे एक स्वतत्र छोटा-सा जेब होना चाहिए। बटन-होलमें फूल लगाकर कोटको और फिर उस कोटके कारण स्वय अपने शरीरको सुशोभित करनेकी कल्पना मनुष्यको सूझ सकती है। परतु किसीके द्वारा रास्तेमे बड़े प्रेमसे दिये गये फूलोंको सुरक्षित कहॉ रखा जाय, इसका अवश्य आजतक किसीने भी विचार नहीं किया है !

क्या फूल और क्या भावनाऍ, दोनोंका प्रदर्शन करनेका ही मनुष्यको अधिक शौक होता है, यही सच है। उनका सरक्षण कैसे किया जाय, उनकी ताज़गी किस

* फूल चुन लिये पर—

तरह कायम रखा जाय, उनकी सुगंध लेकर भी उनके यौवनको अखण्ड किस तरह बनाये रखा जाय, इसका हम कभी भी विचार नही करते !

दो-तीन मील घूमकर मै घर लौटने लगा। वे फूल अभीतक मेरे हाथमे ही थे। परतु अब वे मुरझाये-से दीखने लगे थे। मेरे हाथकी गरमाहट और कोमल धूपके केवल स्पर्शसे उनका सौन्दर्य निस्तेज हो रहा था। मेरे मनमे आया कि अपनी पैनी दृष्टिसे स्त्री और वाणीमे विलक्षण साम्य देखनेवाले भवभूतिको फूल और भावनाका साम्य क्यो नही दिखायी दिया ? दोनोकी उपयुक्तता कोई कसौटी नही है ! निर्मल आनदका दान और उदात्त बोधका गान ही उनके जीवनका उद्देश्य है ! परतु दुनियामे उनका जीवन जितना सुन्दर उतना ही क्षण-भगुर होता है। इस क्षण-भगुरताका नाश करनेके लिये मनुष्यने अबतक क्या प्रयत्न किये हैं ? व्यापारी लोग फूलोंसे इत्र निकालते हैं और कवि भावनाओंसे काव्य बनाते हैं ! परतु ये इत्र और वे काव्य क्या कभी भी धनिकों और पंडितोकी बित्ता-भर दुनियाके पार कदम रखते हैं ?

सुगध लेकर फूलोंको फेंक देने और उसी तरह पहले क्षणिक उन्मादक आनदको लूटकर, भावनाको दूर हटा देनेका दुनियाका क्रम आजतक जारी है। एकाध दिव्य क्षणमे अपने अंतःकरणको स्पर्श कर जानेवाली भावनाएँ क्षण-भगुर न रहें, इसलिये यदि मानवप्राणी अखण्ड प्रयत्न करता रहता, यदि वह अपने मनमें नित्य यह महसूस करता रहता कि कल्पनासे भी कोमल भावनाकी लताको सूखनेसे बचानेके लिये उसे आँसुओंसे सींचना पड़ता है, तो आजकी दुनियापर श्मशानकी जो छाया छा रही है, वह बिल्कुल न होती !

इस विचारके मनमे आते ही मेरे निजी जीवनके दो-तीन प्रसग एकदम मेरी आँखोंके सामने खड़े हो गये।

उस समय शायद मै दूसरी अंग्रेज़ीमे था। एक दिन यह समाचार आया कि लोकमान्य तिलकको छः सालके लिये देश-निकाला हो गया है। हम सब लोगोंको यह समाचार ऐसा लगा जैसे हमपर बिजली गिर पड़ी हो ! हम सब लोगोने उस दिन स्कूल न जानेका निश्चय किया। दूसरे दिन हमारी गैरहाजिरीके लिये हेड मास्टरसाहबने हमें बेत मारे। उन बेतोंको खाते हुए मुझे कितना गर्व अनुभव हो रहा था ! बेत खानेवाले अनेक थे, परतु उन्हें मारनेवाला एक ही था। इस-लिये इस खुशीमें कि आज मेरी अपेक्षा हेडमास्टरके ही हाथमे अधिक दर्द होगा, मैं घर गया और रातको बारह बजे न जाने कहाँसे लाये हुए 'लाल-बाल-पाल'-

की त्रिमूर्तिके फोटोकी ओर भावना-पूर्ण दृष्टिसे देखते हुए मैंने जो देश-सेवा करनेकी प्रतिज्ञा की वह —

यदि उस समय मुझे यह ज्ञान होता कि ऐसी उत्कट और क्षणिक भावनाको सुरक्षित रखनेके लिये मनमे एक स्वतत्र कक्षके अस्तित्वकी जरूरत होती है, तो क्या ही अच्छा होता? परतु जिस तरह खुला हुआ कपूर धीरे धीरे हवामे उड़ जाता है, उसी तरह उच्च भावनासे प्रेरित होकर मेरे द्वारा की गयी उस बाल-प्रतिज्ञा-की भी गत हो गयी!

दूसरा एक प्रसग मुझे दिखायी देने लगा। हमारी शालाका वह गुणी, होशियार और ग़रीब ईसाई लड़का! शायद उसका नाम घाब्र् था। जब मैंने सुना कि वह सख्त बीमार है, तब मै उसके घर गया। उसका घर क्या था—वह एक भयकर सीड़वाली डेढ खनकी एक तग और गदी झोपड़ी थी। उस झोपड़ीमे छः पैसेवाला टिनका दीया प्रकाश देनेके बजाय धुँआ ही उगल रहा था। उस धुँधले प्रकाशमे मैंने घाब्रूको देखा। उसके उस विलक्षण फूले हुए पेटको देखते ही मेरे रोंगटे खड़े हो गये। अत्यन्त गरीबीके कारण उसे भात खानेको नहीं मिलता था! बेचारा महीनों सिर्फ पेज पीकर ही स्कूल आया करता था। कभी न कभी तो पढ-लिखकर पेट-भर भोजन मिल जायगा, इस आशासे वह छटपटा रहा था। परतु उसकी इस छटपटाहटका अन्त भयंकर रोगमे हुआ। मृत्यु-शैय्यापर पड़े हुए उस निष्पाप जीवसे मैंने जो बातें की, वे ऑखोसे। उस दिन, घर वापस आनेपर, रातको मै न भोजन कर सका, और न सो सका। अनेक बार मैंने ऑखोके ऑसू पोंछे। पर—पर मेरे वे ऑसू—वे उत्कट ऑसू भी क्षण-भंगुर ही रहे! उस क्षणकी वह भावना यदि मै सुरक्षित रख सकता, तो?

घर नज़दीक आ जानेके कारण मुझे जो दृश्य दीख रहे थे उनका सिलसिला यहीं टूट गया। मैंने हाथोमे रखे हुए फूलोको देखा। अब वे बिलकुल मलिन दीख रहे थे। मुझे लगा कि मेरे हाथका प्रत्येक कुम्हलाया हुआ फूल जीवनमें मेरे द्वारा उपेक्षित एक एक कोमल भावनाका प्रतीक तो नहीं है? मेरे पिताजीको लकवा मार गया था। वे बीमार थे। उस समय उनकी खूब सेवा करनेकी इच्छा होते हुए भी, बचपनमें, मैं अनेक बार जिस प्रकार खेलोंमें खो गया, उसी तरह आगे चलकर भी मित्र, पत्नी, बहन, गुरुजन और समाजके प्रति प्रेम होते हुए भी, उन्हें सुखी करनेके लिये मुझे जितने प्रयत्न करना चाहिए थे, उतने मुझसे न हो

सके। तात्कालिक विकसित भावनाओंको मनके स्वतन्त्र कक्षामे रखकर उन्हें सुरक्षित रखनेका मैंने प्रयत्न किया होता तो —

मै जीना चढकर ऊपर पहुँचा, तो मेरी पत्नी द्वारमे खड़ी हुई मेरी प्रतीक्षा ही कर रही थी। कमरेमे कोई बैठा हुआ था। उसके पास जो सामग्री थी उससे मैं पहचान गया कि वह दरजी है। मेरी समझमे न आया कि उस व्यक्तिका इस समय मुझसे क्या काम हो सकता है! कहीं हजरतका एकाध बिल तो चुकानेको नहीं रह गया है? छिः! यह सच है कि परसो ही मै कोटका कपड़ा खरीदनेके लिये बाज़ार गया था। परतु इस भयसे कि उस कपड़ेका भाव सुनते ही मुझे कहीं हृदयकी बीमारीका दौरा न शुरू हो जाय, दूकानसे तत्काल भाग आया था! यह होते हुए —

मेरी पत्नीने कहा, — 'आपके कोटका नाप लेने आये हैं ये!'

'युद्धके बाद संसारमे जो बड़ी बड़ी योजनाएँ अमलमे लायी जानेवाली हैं, उनमे मेरा नया कोट भी एक है! परतु युद्ध समाप्त होनेको अभी दो-तीन साल लग जायेंगे। इसलिये आज सिर्फ़ कोटका नाप लेकर रख लेनेसे क्या फ़ायदा है?' मैंने अपनी यह दलील पेश की।

मेरी पत्नी हँसकर बोली, — 'शायद हिटलर नहीं चाहता कि आप जल्दी नया कोट सिल्वाएँ! परतु इस घरमें हिटलरका राज्य नहीं — मेरा है। इसलिये —'

उसने ग्रामोफोनकी अल्मारीपर रखा हुआ कोटका कपड़ा लाकर, मेरे सामने रख दिया। उस दिन जिस कपड़ेको देखकर मैंने दौड़का व्यायाम प्रथम बार आरभ किया था, वही कपड़ा था वह!

दरजी महाराजके सामने मैं खड़ा हो गया। उन्हें ठीक तौरसे नाप देनेके लिये हाथमे रखे हुए फूलोंको अन्यत्र रखना आवश्यक था। मैंने उन्हें पत्नीके हाथमे देते हुए दरजीसे कहा, 'देखो, बिलकुल नये फैशनका कोट सिलवाना है मुझे!'

मेरी पत्नी मेरी ओर आश्चर्यसे देखने लगी। पहले तो फैशन स्त्रीकी तरह पुरुषकी घनिष्ठ मित्रानी नहीं हो सकती, यह उसे मालूम था। दूसरे, फैशनसे मेरा जन्मजन्मान्तरका बैर है, इस कटु सत्यका उसे पिछले पन्द्रह वर्षोंमे अनेक बार तीव्रतासे अनुभव हुआ था। मैं आगे क्या कहूँगा इस ओर वह पूरा ध्यान देकर सुनने लगी।

मै दरजीसे कह रहा था, – 'देखो भई, वैसे कोट तुम कैसा भी बनाओ! पर मेरे इस कोटमें एक पूरी तरहसे स्वतत्र छोटा-सा जेब अवश्य बनाओ। उस जेबमे मै केवल फूल रखा करूँगा। तालियाँ, बिल तथा दूसरी सटर-पटर चीज़ोंको उसमे प्रवेश करनेकी इजाजत न रहेगी। उसपर 'नो ऐडमिशन' की तख़्ती ही लगा देंगे हम!'

मेरी पत्नी एकदम हँस पड़ी। दरजीसे भी अपनी हँसी न रोकी गयी। यह ध्यानमे आते ही कि फूल रखनेके जेबको पोस्ट ऑफिस ही मानकर मैं उत्साह और आवेशमे बहता गया, मै भी हँसने लगा।

हँसीका आवेश कम होते ही दरजीने अदबसे पूछा, – 'साहब, यह जेब कैसे बन सकेगी?'

'न बन सकनेको क्या हो गया?' – मेरी पत्नीने पूछा। यह कहते हुए ही वह हाथमे रखे उन छोटे फूलोंको केशोंमे लगानेकी कोशिश कर रही थी।

वैसे देखा जाय तो हरसिंगारके फूलोंको स्त्रियाँ केशोमे कभी नहीं लगातीं। उन्हें लगाना सभव भी नहीं होता! और ये फूल तो मुरझाए हुए थे। पर – पर इन फूलोंको 'इन्होने' जानबूझकर अपने लिये ही लाये हैं, यह उसकी धारणा हो गयी थी न!

२

आभार

उस पुस्तककी एक ही कहानी पढनेको बची थी। सफर जब खत्म हो जाता है तो मनुष्यको बड़ी जल्दी पड़ जाती है न? ठीक उसी तरहकी जल्दी मुझे पड़ गयी थी। मै मन-ही-मन कह रहा था—बस, ये दो पन्ने और पढ डाले कि—

परतु उन दो पन्नोंकी प्रथम पाँच पँक्तियाँ पढते ही मैं चकरा गया। वह कहानी थी ही नहीं। कथा समाप्त होनेपर भजन करते हैं न? उसीका अनुकरण उस लेखकने किया था।

पुस्तक बंद कर उसे एक तरफ रख देनेका विचार कर रहा था मै। परतु उस पन्नेके बीचवाले एक वाक्यने मेरा ध्यान खींच लिया। उसमें लेखकने अपनी पत्नीका हृदयसे आभार माना था।

मुझे लगा—उपर्युक्त लेखक महोदयकी पत्नी सुशिक्षिता होगी। उसने लेखन-कार्यमे लेखककी खूब मदद की होगी। हाँ, लेखक हुआ कि उसका हस्ताक्षर रद्दी होना ही चाहिए! उन अक्षरोंको लगाकर उसने उसके लेखोकी एक सुदर पाण्डु-लिपि तैयार कर दी होगी—

कल्पनाकी पतगकी डोरको खीचकर मै पुस्तकका वह भाग पढने लगा। लेखक शान्तिसे कह रहा था—'मैं अपनी पत्नीका अत्यन्त आभारी हूँ। सिनेमा जाते

समय प्रत्येक बार मुझे उसके साथ जाना ही चाहिए, यदि यह हठ उसने किया होता, तो इस पुस्तककी बहुत-सी कहानियोंको लिखनेका मुझे समय ही न मिलता।'

इस वाक्यको पढ़कर मैं मन-ही-मन हँसा और आगेके मजमूनको बड़ी उत्सुकतासे पढ़ने लगा।

लेखकने अपने कमरेके ऊपर रहनेवाली और नृत्य सीखनेवाली एक स्त्रीका भी आभार माना था। क्योंकि वह यदि चौबीसों घंटे उसके सिरपर नाचती रहती तो उसे लिखनेके लिये शान्ति ही प्राप्त न होती।

मैंने आगेके भागपर दृष्टि डाली। उसके आभारोंकी सूचि बहुत बड़ी हो गयी थी। उसमें उसने शुद्ध शराब देनेवाले दूकानदारका भी समावेश किया था।

यह बात नहीं कि सूचिको पढ़ते हुए मुझे हँसी न आयी हो। उसे बनाते समय उपर्युक्त लेखकने स्मरण-शक्तिकी अपेक्षा विनोद-बुद्धिका ही अधिक उपयोग किया था, यह सच है। परतु एक ओर तो हँसी आ रही थी और दूसरी ओर मेरा मन कह रहा था – इस विनोदके पीछे एक कोमल भावना छिपी हुई है – एक चिरन्तन सत्य इस विनोदके परदेमेंसे भी बाहर झाँककर देख रहा है। कितने सूक्ष्म स्नेह-बन्धनोंसे हम सब बँधे हैं, यह इससे सूचित हो रहा है।

चाहे जब मुँहको गोल-गोल-सा बनाकर 'थैंक् यू' कहते रहनेवाले व्यक्तिपर मुझे क्रोध आता है। सभाके बाद अंतमें आभार-प्रदर्शनके लिये उठकर रंगमें भग करनेवाले प्राणीका तो मैं तिरस्कार ही करता हूँ। अन्तःकरणमें आभार माननेके बजाय अपनी अधूरी विद्वत्ताका प्रदर्शन करनेमें ही उसे अधिक धन्यता मालूम होती है। परतु कृत्रिम फूलोंमें सुगध नहीं होती, इसलिये क्या कोई लतापर खिले हुए फूलोंकी सुगध लेना छोड़ देता है? आभारोंकी भी वही बात है।

पत्नीसे लेकर शराबके दूकानदारतक आभार माननेवाले उस लेखककी तरह मैं भी बीच-बीचमें बहुतोंके आभार मानता रहता हूँ। तग सड़कसे जाते समय सामनेसे मोटर ठेला आ जाये! वह जब नजदीकसे गुजर जाता है और यह विश्वास हो जाता है कि धूलके सिवा और कोई प्रसाद उससे हमें न मिला, तब मैं उस भव्य रथका संचालन करनेवाले ड्राइवरका मन-ही-मन आभार मानता हूँ। मैं ऐसे समय यह नहीं भूलता कि यदि उसने थोडी भी असावधानी की होती तो कालिदासके 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्'वाले सिद्धान्तका मुझे तुरंत अनुभव हो जाता। होटलमें भोजन करनेके बाद दो-तीन दिनमें यदि स्वास्थ्य न बिगड़ा, तो

उसके मालिकका आभार माननेकी सनक भी मुझपर सवार हो जाती है। होटल-के मालिक जैसे लोग दालमें पड़ी हुई छिपकलीको समयपर ही निकालकर फेंक देनेकी सावधानी बरतते हैं, यह हमारे लिये कितने बड़े भाग्यकी बात है! नहीं तो हमारे नामके पहले 'स्वर्गवासी' की उपाधि कभीकी लग गयी होती!

पर एक बात है। इन आभारोंको मानते हुए बीचहीमें मेरे मनमें आता है—साधारण मनुष्यकी दृष्टि कितनी कमजोर होती है! वर्तमान कालके, किम्बहुना उसमें भी चालू घड़ीके परे उसे कुछ दीखता ही नहीं। वरना हमारे जीवनमें जिन लोगोंने हमपर थोड़े-बहुत उपकार किये हैं, उन सब मनुष्योंकी मूर्तियाँ उसे दिखायी पड़तीं और 'कृतज्ञता' शब्द केवल शब्द-कोषमें ही बच रहता।

पुडलीककी सुप्रसिद्ध कथाका भी यही मर्म होना चाहिए। बचपनमें हमारे लिये माँ-बापने कितने कष्ट उठाये होंगे इसकी तरुण मनको कल्पना ही करते नहीं बनती। वह यौवन-सुलभ उन्मादसे नाचने लगता है। हमारे इस आवारा नाचमें अत्यन्त पवित्र और कोमल भावनाओंका चकनाचूर हो रहा है, हमारे पैर जुहीकी पुष्प-राशिपर गिर रहे हैं, यह बात उनकी गिनतीमें ही नहीं आती। एक बार उसका ज्ञान हो गया कि फिर माँ-बापका महत्त्व परमेश्वरसे भी अधिक लगने लगता है। स्वयं अपने ही रंगमें रंग जानेवाले ऐसे तरुण-मनका जब विचार करने लगता हूँ तो उस समय किसी जगह पढ़ा हुआ एक चुटकुला मुझे झट याद आ जाता है। देवालयकी नींव और उसके कलशकी कहानी है वह। इस अभिमानसे कि भक्त लोग बड़ी दूरसे ही मुझे नमस्कार करते हैं, कलश फूलकर कुप्पा हो जाता है। इस उन्मादमें यह कहकर कि कोई तुझे झाँककर भी नहीं देखता, वह नींवको अपमानित करता है। इन अपमान-भरे शब्दोंको सुनते ही नींव क्रोधसे थर थर काँपने लगती है। परंतु उसके साथ ही इस भयसे कि मैं भी लड़खड़ाकर गिर पड़ूँगा, कलश उसकी शरण जाता है।

मुझे लगता है—जीवनमें हमारी भी यही दशा होती है। माँ-बाप, बहन-भाई, मित्र-स्नेही, पुत्र-पुत्रियाँ इत्यादिके सच्चे मूल्यका हमें क्वचित् ही बोध होता है। उनके प्रेमके गीलेपनपर हमारी जीवन-लता खिलती रहती है, यह हमारे ध्यानमें नहीं आता। छोटी छोटी बातें भी यदि हमारे मनके लायक न हुईं तो हम उनपर नाराज़ हो जाते हैं, उन्हें तुच्छ समझते हैं और यह भी भुला देते हैं कि उनके बिना हमारा जीवन नीरस हो जायेगा।

ऐसे समय यदि किसी चमत्कारसे जिस व्यक्तिपर हम नाराज हुए हैं उसके द्वारा हमपर किये गये उपकारोंका चित्रपट हमारी आँखोंके सामनेसे सरकने लगे तो —

ऐसा चमत्कार हो जाना कोई असंभव बात नहीं है। मैं जो पुस्तक पढ़ रहा था उसके लेखकने जिस दृष्टिसे आभारोंको दर्ज किया है उससे हम अपने जीवन-की ओर देखने लगे तो संसारके आधे दुख बात-की-बातमें नष्ट हो जायेंगे।

और इसीलिये मुझे लगता है — डायरी रखनेके बजाय बचपनसे प्रत्येक मनुष्य-को आभारोंकी नोट-बुक रखना सीखना चाहिए। हमपर निरपेक्ष प्रेम करनेवालोंके नाम उस पुस्तकमें न भूलते हुए हमें दर्ज़ करने चाहिए। मैंने इस प्रकारकी एक पुस्तक रखी होती तो — उस पुस्तकपर उड़ती हुई नज़र डालते ही मुझे यह विश्वास हो जाता कि जीवनके हिसाबमें मैं ही दुनियाका कर्जदार हूँ।

ऐसे समय एक और विचार मनमें आता है। मैंने ऐसी पुस्तक नहीं रखी, इसलिये दुनियाका कुछ अधिक बिगड़ा नहीं। परंतु हिटलरको जरूर यह आदत किसीको भी बचपनसे लगा देनी थी। यह आदत यदि उसे लग जाती तो बरसोंसे हर रोज सुबह महायुद्धके भयंकर वर्णनोंको पढ़नेका मौका ही हमपर न आया होता।

●●●

३

सावन

'आपकी पसदकी फिल्म कौनसी है?' – मेरा ऑटोग्राफ लेते हुए एक विद्यार्थीने मुझसे प्रश्न किया।

मैंने चटसे उत्तर दिया, – 'बड़ी दीदी!'

वह हँसते हुए बोला, – 'आपकी पसदकी फिल्मसे मेरा अभिप्राय है, कि आपके द्वारा लिखी गयी फिल्मोंमेंसे आपकी पसंदकी फिल्म!'

'वैसी फिल्म तो अभी बनना है!'

'अच्छा, तो आपकी पसंदका उपन्यास —'

'मुझे अपने तीन-चार उपन्यास अच्छे लगते हैं। उनमेंसे यदि एकहीको चुनूँ, तो क्या यह दूसरोंके प्रति अन्याय न होगा?'

मेरी कल्पना थी कि यह सोचकर कि मैं ठीक उत्तर देना टाल रहा हूँ, वह लड़का चला जायगा। परतु शिवाजीने जिस उम्रमें तोरणा किला जीता था, उस उम्रका विद्यार्थी था वह! उसके चीमड़पनकी कल्पना पहले मुझे न हुई थी!

बिना झिझकके उसने फिर मुझसे पूछा, – 'आपकी पसदका महीना कौनसा है?'

मैंने एकदम उत्तर दिया, – 'सावन!'

जिस नोट-बुकमे उसने मेरा ऑटोग्राफ लिया था उसे मेरे आगे बढ़ाता हुआ वह बोला, — 'कृपा कर यह इसमे लिख दीजिएगा!'

अब मुझे पूर्ण रूपसे ज्ञात हो चुका कि तोरणा जीतनेवाला शिवाजी केवल वीर पुरुष न था, वह राजनीतिज्ञ भी था! अपने हस्ताक्षरके ऊपर मैने चुपचाप लिख दिया, – 'मेरी पसदका महीना सावन।'

इन शब्दोको मै फुर्तीसे लिख तो गया, परतु शीघ्र ही मेरे मनमे एक शका आयी। सहज ही ऑटोग्राफकी यह नोट-बुक अनेक साहित्यिकोके हाथमें पहुँचेगी। मैंने जो महीना चुना है उसे देखकर, बड़े बड़े पडित मुझपर हँसे बगैर न रहेगे। वासतिक वनश्रीसे सजे हुए बैसाख किंवा शारदीय शृगारसे सुशोभित कुँआरको छोड़कर, सावनको अपनी पसदका महीना कहकर उसे गले लगानेवाले व्यक्तिकी वे निःसदेह अरसिकोमे गणना किये बिना न रहेंगे।

पर ये साहित्यिक ही क्या, यदि सारी दुनिया भी मुझे पागल कहे, फिर भी भविष्यमे सावन ही मेरी पसंदका महीना रहेगा, इस विषयमें मुझे अवश्य अब कोई शका नहीं मालूम होती। अनेक लोग यह सोचेंगे कि मेरी यह पसदगी मेरे मनकी एक सनक है। परतु बचपनसे यद्यपि मैने अन्य अनेक महीनोंसे हार्दिक प्रेम किया है, फिर भी सावनकी तुलनामे वे सब मुझे अब बहुत फीके लगते हैं!

फागुनकी ही बात लीजिये। बचपनमे यह महीना मुझे अत्यन्त प्रिय था। जिन शरारतोंके लिये शेष ग्यारह महीनोंमे लड़कोंको निश्चित रूपसे 'मुष्टि-मोदक' प्राप्त होते हैं, वे इस महीनेमे खुले आम की जा सकती हैं। फौजी वर्दी पहननेसे मनुष्यको बहुतसी सहूलियते मिलती हैं न? फागुनमें बच्चोंसे लेकर बूढ़ोंतक सबको यही सुभीता था उन दिनों! वैसे रात-बिरात हम सरीखे आधे-टिकटवालोंको घरसे बाहर खेलनेकी अनुमति कौन देता? परन्तु माघी पूनोके बीतते ही महीना-भर हर सड़कपर हमारे लोन-पाटके खेल बड़े जोरोंसे शुरू हो जाते और सारे बाल-गोपाल उनमे बड़े उत्साहसे भाग लेते। खेलमें कोई जीते, फिर भी 'शंखं दध्मुः पृथक् पृथक्' गीता-वचनको ध्यानमें रखकर, दोनों दलोंके लड़के उस विजयोत्सवको इतने उत्साहसे मनाते कि मुहल्लेवालोंकी नींद हराम हो जाये! चोरी करना और आग लगाना 'पीनल-कोड' की भाषामें भले ही जुर्म हो, परंतु हमारे बाल-जगत्की दृष्टिसे वे बड़े पराक्रम थे! होलीमें

इन कामोंको हँसते-खेलते करनेवाले बाल-वीरोको बड़े लोग स्वर्ण पदक क्यों नहीं देते, इसीका हमे उस समय आश्चर्य होता था। होलीके लिये लकड़ियाँ चुराते समय हम जो चालें खेला करते थे, वे आजकल छुक-छिपकर शत्रुसे लड़नेवाले चीनी देशभक्तोंको भी न सूझती होंगी। एक बार कृष्णा नदीसे स्नान करके लौट रहे सन्यासीकी खड़ाऊँको उड़ानेके लिये हमने उसे जानबूझकर छू लिया था! बेचारा किनारेपर खड़ाऊँ रखकर फिरसे स्नानके लिये गया। उसने उधर नदीमें डुबकी लगायी और इधर हम उसकी पवित्र खड़ाऊँके साथ चम्पत हो गये —

होलीके दूसरे दिन धुँलेंडी मनाई जाती थी जो हर समय स्वच्छताका पाठ पढानेवाले जेठे-बड़ोंके विरुद्ध बालकोंद्वारा मचाई गयी एक क्रान्ति ही रहा करती थी। उस समय आजकी तरह गॉव-गॉवमे फोटोग्राफरोंकी धूम न थी, नहीं तो इस सिद्धान्तको कि बन्दर ही मनुष्यका पूर्वज है, मैं धुँलेंडीके दिनका अपना एकाध फोटो दिखाकर ही, सिद्ध कर देता। धुँलेंडीके बाद आनेवाली रग-पचमी तो हमें जीवनका सबसे बड़ा त्यौहार लगता। उस दिन सिर्फ आधे दिनकी छुट्टी देनेवाले मास्टर लोग, ज़मानेभरके अरसिक होना चाहिए, यह मेरा पक्का मत बन गया था। वैसे दरीपर या कुरतेपर थोड़ी-सी भी स्याही गिर पड़ती, तो मॉकी बातें सुननी पड़तीं, परतु रग-पंचमीके दिन मेरे कुरते और हाफ-पैण्टपर सारे गहरे रगोंका खासा सम्मेलन हो जाता, फिर भी मातारामसे उसे चुपचाप देखते रहनेके सिवा और कुछ भी करते न बनता था! उस दिन किसी भी स्याहीको मैं हथेलीका मैल समझता था। चूँकि आजकल रग पंचमी इतने ज़ोरशोरसे नहीं मनाई जाती कि मुझे यह भय हो कि मेरे द्वारा बताया गया गुप्त प्रयोग मेरे लड़के मुझहीपर करने लगेंगे, मैं उस समयके बाल-गोपालोंका एक 'ट्रेड सीक्रेट' भी ज़ाहिर कर दूँ, तो कोई हर्ज़ न होगा। रग पचमीके दिन प्रत्येक घरके बड़े लोग लड़कोंको फटे-पुराने कपड़े पहननेको दिया करते थे। परतु उनकी आँख बचाकर हम अधिक पुराने न हुए कपड़े धीरेसे पहले पहन लेते और इसके बाद ही रंग खेलना शुरू करते थे। शामको हमारे कपड़ोंकी शुद्ध स्वदेशी रगीन फिल्म बनी हुई देखकर, घरके जेठे-बड़ोंके हाथ और हमारी पीठ, दोनोंमे बहुत बातें हुआ करती थीं! परतु मुहर्रमके शेरोंकी तरह दीखनेवाले बच्चोंको शालामें भेजना सभव न होनेके कारण, सब पालकोंको दॉत-होंठ चबाते हुए, हमें झख मारकर नये

कपड़े बनवा देने पड़ते थे। मुझे विश्वास है कि आगामी पीढ़ीके इतिहास-अन्वेषक यह सिद्ध कर देंगे कि उस समयके दरजी अन्य त्यौहारोंमें रंग-पंचमीको ही अधिक मान दिया करते थे।

परंतु जैसे जैसे मैं बड़ा होने लगा, वैसे वैसे फागुनका यह उद्दाम आनंद मुझे लड़कपन-सा लगने लगा। उस सारे खेल और धींगाधींगीमें ऊधमी नटखटपनसे भरा हुआ हास्य था। परंतु हास्य जीवन-वृक्षका नया कोमल पत्ता है, उसके फूल अलग ही होते हैं, उन्हें मैंने अभीतक देखा भी नहीं है, इस कल्पनासे मैं अस्वस्थ होने लगा। धुँलेंडीकी मिट्टीके बदले बाग़के फूलोंके प्रति मेरे हृदयमें अधिक अपनत्व पैदा हो गया। पहले मैं फूलोंको मसल डाला करता था। अब मैं उन्हें दुलारसे सहलाने लगा। रंग-पंचमीके चमकदार और भड़कीले रंगोंकी रुचि बात-की-बातमें दूर चली गयी। गुलाब और सोन-चँपाके फूलोंके सौम्य रंगोंमें मैंने सौंदर्य देखना सीखा। उस समय मेरी समझमें ही न आता था कि स्वप्निल दृष्टिसे प्रेम-गीतोंको पढ़ने और गुनगुनानेमें मेरे दिन कैसे बीत रहे हैं। कालि-दाससे लेकर गडकरीतक अनेक कवियोंके सहवासमें मुझे भी लगने लगा कि वसंतका अभिन्न मित्र वैसाख ही संसारका सबसे सुंदर महीना है।

परंतु कवियोंद्वारा वर्णित वैसाखके वासंतिक सौंदर्यका दर्शन बहुधा मुझे घर बैठे ही लेना पड़ता था। भर दोपहरको नुक्कड़वाले आम्र-वृक्षसे कोयलकी कुहूका संगीत आरंभ हो जाता। यह बात न थी कि ऐसा न होता हो। उस वृक्षके तले चट पहुँचकर, 'अवेळ तरिही बोल, कोकिळे, अवेळ तरिही बोल,' * की तर्जपर अपने प्रेम-भंगके दुखको प्रकट करनेकी मुझे भी रह-रहकर सनक आ जाती थी। परंतु आधे फर्लांगका यह सफ़र मुझसे दो कठिनाइयोंके कारण, कभी न हो सका। पहली कठिनाई थी चिलचिलाती हुई धूपकी और दूसरी कठिनाई यह थी कि जिसके न मिलनेसे कवितामें सर्द आहें भरनी पड़ती हैं, उस प्रणयिनीको अभी-तक मैंने देखा ही न था।

पहले पहल कवि लोगोंपर पूर्ण विश्वास रखकर, इस कल्पनासे कि वैसाख शृंगारका सखा है, मैं उसका अंध-भक्त हो गया। परंतु इस महीनेमें नंगे-पाँव घर-से निकलनेपर जब पैर जलने लगे, तब मेरी आँखें झटसे खुल गयीं। धीरे धीरे मेरा यह विश्वास होने लगा कि वैसाखमें विवाहोंकी धूम होनेके कारण ही कवियोंने

* 'असमय है, फिर भी हे कोयल, बोल!'

ज़बरदस्ती उसका शृंगारसे नाता जोड़ दिया है। शंकरजीकी आँखसे निकली हुई आगमें अच्छी तरहसे भुनकर निकला हुआ मदन, उतनी ही भयकर ग्रीष्मकी गरमीमें, अपना पुष्प-बाण संधान कर पृथ्वीपर भटकता फिरता है, यह कवि-कल्पना बहुत करके किसी पागलखानेसे ही बाहर आयी होगी। आगे चलकर, आमके व्यापारियोंने इस उद्देश्यसे कि उनका माल बाजारमें पड़ा हुआ न सड़ता रहे, घरसे ग्राहकोंको बाहर निकालनेके लिये कवियोंको घूस देकर वसंत ऋतुके भड़कीले वर्णन उनसे लिखवाँ लिये होंगे, इस विषयमें मैं निःशंक हो गया।

परतु एक बात है। इस समय मैं यह महसूस कर चुका था कि हास्यकी तरह शृगार जीवनका ऊपरी-ऊपरी रस नहीं है। परतु हृदयको उन्मत कर देनेवाले शृंगारका दर्शन तरुण मनको वैसाखमें नहीं होता। वह रसराज जेठमें प्रकट होता है। मृग उसका वाहन है। उस समय स्वर्ग, पर्जन्य-धाराओंकी सहस्र बाहुओंसे पृथ्वीको प्रेमसे नज़दीक खींचता है और प्रियतमके उस चिरवाँछित आलिंगनसे पुलकित हुई पृथ्वी आनन्दसे सुगधित निःश्वास छोडने लगती है। मृत्तिकाके उस एक ही मूक उद्गारमें वसंतके सारे फूलोंकी सुगंध एकत्रित रहती है। यह अनुभव मुझे कॉलेजमें रहते हुए पहली बार हुआ। उस दिन मैं घूमने बहुत दूर निकल गया था। बादलोंसे भरे आकाशकी तरह मेरा मन भी भर आया था। बिजलीके कारण चमक जानेवाले विचित्र विचार बीच-बीचमें उनमें अपना अस्तित्व प्रकट कर रहे थे। आकाश स्याह हो गया था, सारी सृष्टि काली पड़ गयी थी। इस विचारसे कि इस दुनियामें मैं अकेला हूँ, मेरे मनपर भी उदासीकी छाया फैल रही थी। जिस जीवनमें अपनी माँके मुँहसे दो मीठे शब्द सुननेको नहीं मिलते, जिसके रिश्तेदारोंसे यह कल्पना ही करते नहीं बनती कि मनुष्यका मन भी होता है, वह मनुष्य जीवित भी किसलिये रहे! यह प्रश्न बार-बार मुझे सता रहा था। इस प्रश्नके पीछे कदाचित् आत्म-हत्याका विचार भी छिपा हो!

मैं एक शिलापर इस तरह सुन्न बैठा हुआ था, तभी एकदम मूसलधार वर्षा आरंभ हो गयी। पर्जन्यधाराओंका गंभीर संगीत और विद्युल्लताका स्वच्छन्द नृत्य —दोनोंका वह अद्भुत और अपूर्व विलास देखनेमें मैं तल्लीन हो गया। भींगे हुए पक्षी पेड़ोंके आश्रयमें आकर कोलाहल मचाने लगे, तब कहीं मेरे ध्यानमें आया कि मैं भी बिलकुल भींग गया हूँ!

फिर भी मैं अपनी जगहसे न हिला। सारे वातावरणमें एक सूक्ष्म विलक्षण

सुगध छा रही थी। मैंने आकाशकी ओर देखा। वह निखर गया था। उससे अत्यन्त दूर रहनेवाली पृथ्वीके प्रेमने उसमें परिवर्तन कर दिया था। वातावरणकी मधुर सुगध प्रेमके इन अदृश्य फूलोंकी थी।

सारे कपड़े भींग जानेपर भी, उस दिन मैं तत्काल घर नहीं लौटा। 'पहली वर्षा' शीर्षक कविताकी जल्दी-जल्दी याद आनेवाली पंक्तियोंको गुनगुनाता हुआ मैं उस शिलापर कितनी ही देरतक बैठा रहा था! 'बाल-कवि'* की शैलीपर लिखी गयी यह दो सौ पंक्तियोंकी कविता, आगे दस-पन्द्रह वर्षोंतक जेठके आरभ-में, मुझे निश्चित रूपसे याद आया करती। उसे प्रकाशित करानेका साहस मुझे कभी भी न हुआ। परतु वर्षाके पहले झलेंमे दूर जाकर भींगनेका, सबके लिये अज्ञात उस कविताकी प्रणयरम्य कल्पनाकी यादका आनन्द आगे चलकर मैंने कई सालोंतक लूटा। जब उस उन्मादका स्मरण होता है, तो मुझे ऐसा लगता है कि बीससे चालीस वर्षकी उम्रतक हरएकको जेठका महीना ही अधिक अच्छा लगता होगा। मेरा ऑटोग्राफ लेनेवाला वह विद्यार्थी यदि दस वर्ष पहले मेरे पास आता, तो उसकी नोट-बुकमें 'मेरी पसदका महीना—जेठ' ये शब्द एक क्षणका भी विचार न करके मैं लिख देता।

परतु चालीसके बाद जेठके प्रति मेरा प्रेम कम हो रहा है। मै मृगकी पहली वर्षाको आज भी बड़े कुतूहलसे देखता हूँ। प्रियतमाके दीर्घ विरहसे आकाश काला पड़ गया है, उसके लिये उत्कठित हुई पृथ्वी उसकी ओर देखती हुई और भी अधिक उन्मत हो रही है, मेघ-गर्जनाके गभीर तालपर चंचल नृत्य कर रही है—ये दृश्य आज भी मुझे आनदित करते है। परतु जब जेठकी वर्षा होने लगती है, तो उसे देखते हुए मेरे मनमें आजकल एक विचित्र कल्पना आये बिना नहीं रहती। मुझे लगता है कि पहली वर्षा पहले प्रेमकी तरह होती है। वह आन्तरिक आनंदके बजाय शारीरिक उन्मादका विलास है। इस शृंगारमें उपभोगकी आसक्ति है, त्यागकी भूमिकापर खड़े रहनेकी इच्छा करनेवाला उदात्त प्रेम नहीं है। उस उज्ज्वल प्रेमका स्वरूप ससारमें सिर्फ़ वात्सल्यके रूपमे ही प्रकट होता है।

मुझे इस वात्सल्यका साक्षात्कार बारह महीनोंमें केवल सावनमें ही प्रबलतासे

* मराठीके अर्वाचीन कवियोंके श्रेष्ठ प्रकृतिपूजक कवि—स्व० त्र्यबक बापूजी ठोंबरे (१८९०—१९०८)

होता है। इस समय पृथ्वी पहलेकी तरह आकाशकी प्रेम-वर्षामे निमग्न होकर अपने आपको नहीं भूल जाती। इसमें अब उसे मजा नहीं आता। बल्कि, अपने मिलनसे उत्पन्न हुए बालकोको सम्हालने और बढानेमे ही उसे अधिक आनद होता है। मैं शिरोड़ामें था। उस समय सावनमे, जब धानके खेतोंमेंसे होता हुआ मैं स्कूल आता, तब मोतियोंके गुच्छोंकी तरह दीखनेवाली पर किंचित् झुकी हुई बालिओंको देखकर, मेरे मनमे एक ही कल्पना आया करती और वह यह कि, इस ख्यालसे कि माँको छोड़कर अब हमे शीघ्र ही दूर जाना होगा, ये सब बालक इस इच्छासे कि वह उनका अंतिम चुम्बन ले, इस तरह झुककर नीचे देख रहे हैं!

मैं जब सावनकी सायंकालको नदीपर टहलने जाता हूँ, तो वहाँ भी वात्सल्यका इसी प्रकारका सुन्दर प्रदर्शन मुझे दिखाई देता है। जेठ और असाढके महा-पूरमे मनको चकित कर देनेवाली भयानक शोभा होती है। परतु जब उस प्रचण्ड प्रवाहमें बहकर आये साँपोको देखता हूँ, अथवा आसपासके खेतोंको डुबा देने-वाली उसकी उन्मत और गदली लहरोंकी खड़खड़ाहट सुनता हूँ तो मै घबड़ा जाता हूँ। यह ज्ञान होनेके कारण कि निसर्गकी किसी भी क्रीडामे रमणीयताके साथ रौद्रता होती ही है, उस महापूरसे दूर भाग जानेकी मुझे इच्छा नहीं होती। परंतु तैरनेका शौक होते हुए भी मुझे सहसा ऐसा नहीं लगता कि नदीके उस ताण्डव-नृत्यमें मैं भी भाग लूँ। जेठ और असाढ़में नदीकी ओर मैं हमेशा आदरसे देखता हूँ। परंतु उस आदरके पीछे भय भी छिपा रहता है।

सावन आते ही मेरा भय न जाने कहाँ भाग जाता है? और बचे हुए आदरका बात-की-बातमें प्रेममें रूपान्तर हो जाता है। उस समय नदी-किनारेके खेत हरी वेश भूषा धारण कर बड़ी उत्सुकतासे मेरा स्वागत करते हैं। नदीका पात्र पानीसे पूरा भरा रहता है। परंतु वह निथरा होनेके कारण मुझे ऐसा भ्रम होता है जैसे शुभ्र वस्त्र परिधान किये जल-देवी ही मुझे स्वच्छन्दतापूर्वक खेलनेके लिये बुला रही है। इस समय मेरे मनमें यह कल्पना आती है कि, निसर्गकी मनमानी रौद्रताको मर्यादाके भीतर रखनेवाली उज्ज्वल मानवी संस्कृति ही हमारे सामनेसे सरिताके रूपमें गाती हुई आ रही है, और इस दृश्यको देखनेमें मैं तल्लीन हो जाता हूँ। परंतु तुरंत ही दूसरी अधिक सुंदर कल्पना मुझे मोहित कर देती है। वह कहती है कि महापूरसे बनी-ठनी नदी प्रियतमसे मिलने जा रही प्रेमातुरा अभिसारिका-

की प्रतीक थी, परतु सावनमें बड़ी शानसे धीरे धीरे क़दम रखती हुई जा रही परिपूर्ण नदी मातृ-देवीकी मगल मूर्ति है!

सावनमें वात्सल्यके दर्शन केवल हरे-भरे खेतों और सरिताके परिपूर्ण पात्रमें ही होते हों, यह बात नहीं है। आकाशमें भी उसीका मनोहर प्रतिबिम्ब दिखायी देता है। आकाशमें बादल छाये देखकर, बाहर निकलते समय, हम हाथमें छाता लेकर ही कामपर जाते हैं। परतु चार कदम भी हम नहीं चल पाते कि बादलोंके परदोंकी ओटमें छिपा हुआ घाम धीरेसे झाँककर देखता है और जैसे तालियाँ बजाकर कहता है, 'कैसा बुद्धू बनाया!' हमें इस शरारती घामपर ज़रा भी गुस्सा नहीं आता। प्रत्युत ऐसा लगता है कि तेजस्वी आँखोंवालेपर कोमल कपोलोंवाले इस छोकरेको, काश हम पकड़ सकते, तो उसके गालमें कई चुटकियाँ—नहीं, उस-पर चुम्बनोंकी वर्षा कर देते!

शामको बाहर जाते समय सुबहकी तरह धोखा न हो, इसलिये हम खिड़कीसे आकाशकी ओर देखते हैं। बाहर जगमगाती हुई धूप साफ दिखायी देती है। छाता पदवीकी तरह होता है। मतलब यह कि अनेक बार उसका उपयोग होनेके बजाय, उसका बोझ ही मनुष्यको उठाना पडता है! इस कल्पनासे हम उसकी ओर तुच्छतासे देखते हुए शानसे हाथ हिलाते घरसे बाहर निकल पड़ते हैं। हम कुछ ही दूर जा पाते हैं कि शुभ्र मलमलके कुरतेपर स्याही उड़ेल लेनेवाले बालककी तरह दीखनेवाला एक छोटा-सा बादल धीरेसे हमारे सिरपर आ जाता है, और जल्दी-जल्दी पानीकी फुहार हमपर छोडने लगता है। 'कैसा बुद्धू बनाया!' कहता हुआ सुबहके घामकी तरह सायंकालका यह बादल भी तालियाँ बजाने लगता है।

इस मधुर आँखमिचौलीके कारण ही सावन मुझे बहुत अच्छा लगता है। मुझे हमेशा ऐसा आभास होता है कि धूप और वर्षाके इस कुशल खेलमें मानवी जीवनका प्रतिबिम्ब झलकता है। अपने निजी दुखों, संकटों और अपघातोंका विचार करते हुए मनुष्य निश्चित-रूपसे यह भूल जाता है कि उसके जीवनमें अगणित अनाहूत सुख आये हैं, अनेक मधुर दुर्घटनायें हुई हैं और अनपेक्षित दिशाओंसे आनन्दकी असख्य शीतल लहरें उसकी ओर बढती हुई आयी हैं। यह ज्ञानकी जीवन हास्य और अश्रुका सुदर संगम है, सिर्फ सावन ही उसके मनमें पैदा कर सकता है। ऐसे समय एक क्षणके लिये भी क्यों न हो, अपने

अनुभवोंको उदात्त दृष्टिसे देखनेकी सामर्थ्य उसमे आ जाती है। और फिर यह ज्ञान हो जानेके कारण कि, जन्म-मृत्यु, प्रेम-भय, सुबह-शाम, और पर्वत घाटीकी तरह सुख-दुख भी जीवनकी एक अभेद्य जोड़ी है, ससारमें रहकर भी मनुष्य तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे अपने जीवनको देखने लगता है।

एक बादशाहने अपनी दैनदिनीमें लिख रखा है– 'जीवनमें सुखके केवल चौदह दिन मुझे प्राप्त हुए।' मुझे ऐसा लगता है कि उस बादशाहके सारे वजीर बड़े बेवकूफ थे। मैं यदि उसके पास होता तो मुझे विश्वास है कि उसने 'जीवनके आधे दिन अत्यन्त सुखमें बीतें,' यही लिखा होता। उसके दिमाग़को ठिकानेपर लानेके लिये मैं और कुछ न करता। सिर्फ पूरे सावन-भर उसका पलग राजमहलकी चॉदनीपर बिलकुल खुलेम ले जाकर रख देता!

•••

४-

मित्र कैसे बनाएँ ?

राममाऊके कमरेमें मैंने कदम रखा ही था – मैं पत्थरकी मूर्ति हो गया !

दुर्घटनाओं और अत्याचारोंके भयंकर समाचार रोज रोज पढनेवाले मेरे पाठक-मित्रोंकी आँखोंके आगे विचित्र कल्पनाचित्र खड़े हो जायेंगे जिनके कारण उनके चित्त विचलित होने लगेंगे। इसलिये मैं पहलेसे ही कहे देता हूँ कि राममाऊ बिस्तरपर अचेत पड़ा है और उसके सिरहाने एक खाली प्याला है जिसकी तलीमे कोई काली-सी चीज़ चिपकी हुई है, ऐसा कोई दृश्य उस कमरेमें न था। 'उस्तरा' 'खूनसे भरा गढ़ा' इत्यादि इत्यादि शब्दोंसे आँखोंके सामने खड़े होनेवाले भयानक चित्रोंका भी मेरे आश्चर्यसे सबंध न था। मेरे चकित हो जानेका कारण दूसरा ही था। पड़ा हुआ राममाऊ एक पुस्तक पढ़ रहा था !

हमारा मन प्रत्येक व्यक्तिकी एक विशिष्ट बैठकका एक चित्र खींचकर अपने पास रख लेता है। किसीने 'बुद्ध' शब्द कहा कि मेरी आँखोंके सामने भगवान बुद्धकी गभीर ध्यानस्थ मूर्ति ही खडी होती है। संसारके विलक्षण दुखों-का जब उसे पहला तीव्र ज्ञान हुआ था उस समयका घबड़ाया हुआ सिद्धार्थ किसी भी तरह मुझे अपनी आँखोंके सामने खड़ा करते नहीं बनता। जब गांधी-जीकी याद आती है उस समय दाडी-यात्राके दिव्य दृश्यके किंचित् झुके हुए परतु

अपने हाथकी काठीसे धरित्रीको झुकानेवाले महात्माजीकी कृश शरीरयष्टि मेरे सामनेसे चली जा रही है, ऐसा मुझे आभास होता है। मैंने महात्माजीके ऐसे अनेक फोटो देखे होंगे जिनमें वे चरखा चला रहे हैं। परंतु मेरी कल्पना उनमें-से एकको भी मूर्तिमान् खड़ा नहीं कर सकती।

मानसशास्त्र इस पहेलीको किसी भी रीतिसे हल करे, परंतु रामभाऊका और मेरा अनेक वर्षोंका परिचय होते हुए भी कोई जब उसका नाम लेता है तो मेरी आँखोंके सामने ताश खेलनेमें खोया हुआ एक मामूली, सीधा-सादा क्लर्क दीखने लगता है। उसके कमरेमें जब मैंने कदम रखा तब मैं जानता था कि उसके कमरेमें दूसरा और कोई नहीं है। परतु इसके साथ ही मुझे यह भी पूर्ण विश्वास था कि भीतर बैठा हुआ रामभाऊ अकेला ही ताश खेल रहा होगा।

परन्तु विश्वासका यह पथरीला बंगला एकदम ताशोंका बंगला सिद्ध हुआ! हज़रत आराम-कुर्सीमें पड़े थे सही, पर सिर्फ आँखें मूँदकर नहीं—बल्कि एक पुस्तक पढ़ते हुए। पुस्तक पढ़नेमें वह इतना खो गया था कि उसे यह भी पता न चला कि मैं कमरेमें आया हूँ।

मैं विस्मित हो गया। उसके मित्रोंमेंसे किसीको भी स्वप्नतक न आया था कि जीवनमें रामभाऊकी किसी पुस्तकके साथ इतनी घनिष्ठ मित्रता हो जायगी। यदि उसे कोई अच्छा उपन्यास पढ़नेको देते थे, तो वह उसके पन्ने इधर-उधर उल्टा कर कह देता था,—'भई, मुझे तो इन व्यर्थकी बातोंमें कुछ भी मज़ा नहीं आता। यह दिखानेके लिये कि एक तरुणका एक तरुणीसे स्नेह-सबंध हो जाता है, चार सौ पन्ने काले करनेकी क्या जरूरत है? हम तो बादशाह और बेगमका विवाह भी पाँच मिनटमें लगा देते हैं।'

ऐसे इस शुक्राचार्यकी तपश्चर्याका भग किस रभाने किया यह देखनेके लिये मै दबे पाँव आगे बढ़ा। देखा तो रामभाऊकी विलक्षण समाधि लगी हुई है।

मैं धीरेसे खाँसा। थोड़ा खकारा भी। छीकता भी। परतु खाँसीकी तरह छींक आज्ञाकारी न होनेके कारण मैं निरुपाय हो गया!

रामभाऊने पलकें भी ऊपर न उठायीं। मेरे मनमें आया—बदर-खाँसीसे भी रामभाऊके रंगमें भंग होनेकी संभावना नहीं दीखती।

मैंने ज़ोरसे प्रश्न किया,—'क्यों रामभाऊ, क्या पढ़ रहे हो?'

गर्दन ऊपर न उठाकर ही रामभाऊने उत्तर दिया, – 'क्या ही सुंदर पुस्तक हैं ? दस लाखके ऊपर बिक चुकी है, सो यों ही नहीं !'

दस लाखसे ऊपर बिकी हुई पुस्तक ! मुझे विश्वास हो गया कि कोई अत्यंत लोकप्रिय अंग्रेजी उपन्यास भूलसे रामभाऊके हाथमें पड़ गया है। अपनेके घर आयी इस कामधेनुका नाम —

मैंने पूछा, – 'किसका उपन्यास पढ़ रहे हो ?'

'उपन्यास ? –' इतना ही शब्द कहकर रामभाऊ हँसने लगा। हँसते-हँसते ही वह बोला – 'रातको तीन बजे इसे पूरा करके सोया। परतु जागते ही फिर उसकी याद आयी। चाय पीकर फिर पढ़ने बैठा हूँ सो —'

रामभाऊको एक पुस्तक इतना पागल कर दे ? विश्वामित्रपर मोहनी मत्र फूँकनेके लिये मेनकाको ही स्वर्गसे नीचे उतरना पड़ा था। इस पुस्तकमें भी उसी प्रकारका कोई विलक्षण सौन्दर्य होना चाहिए। नहीं तो हमारा यह बिक्रिक-सम्राट —

मैंने उत्सुकतासे रामभाऊके हाथसे पुस्तक छीन ली और उसका नाम पढ़ा – 'How to Win Friends and Influence People.'

अब हँसनेका हक मेरा था। मैंने रामभाऊका मज़ाक उड़ानेके लिये कहा, – 'यह मामला तो कुछ ऐसा दीख रहा है जैसे ब्रह्मचारी शूर्पनखापर आसक्त हो जाय ! क्या ही बढिया पुस्तक खोज निकाली है तुमने ! 'मित्र कैसे बनाएँ !' अरे भैया, मित्र क्या सब्जी-बाजारकी सब्जी है ? आगरेकी यात्राके वर्णनकी पुस्तक पढकर किसीको ताजमहल देखनेको नहीं मिल जाता !'

अपने पूज्य-व्यक्तिकी हँसी कौन भक्त सहन कर सकेगा ? रामभाऊ झल्लाकर ही बोला, – 'देखिये, पुस्तकको पढ़े बिना व्यर्थ ही अंट-संट आलोचना करनेमें क्या अर्थ है ? रामदास स्वामीने ही कहा है – पर उसे छोड़िये। पहले इसके दस पॉच पन्ने तो कम-से-कम पढ डालिये और फिर —'

रामभाऊने पचहत्तरावॉ पृष्ठ खोलकर मेरे सामने रख दिया और चाय तैयार करनेकी सूचना देने वह भीतर चल दिया।

मैं पढ़ने लगा। प्रकरणके आरंभमे ही लिखा था, – 'लोकप्रिय होनेके छः मार्ग।'

मैंने हँसते हुए मन-ही-मन कहा, – 'जहॉ सौमेंसे निन्यानबे लोगोंको एक ही मार्ग नहीं दिखायी पड़ता, वहॉ यह लेखक छः मार्ग दिखानेके लिये तैयार

है ! मौज है भाई ! अंधा माँगे एक आँख, और भगवान उसे छः दे दे—कुछ इसी तरहका मामला दीखता है यह !'

मैं उस प्रकरणको पढ़ने लगा। लेखकने आरंभमें ही यह प्रतिपादन किया है कि लोकप्रियता प्राप्त करनेके लिये एक गुरु बनाना आवश्यक है। वह गुरु याने कुत्ता ! लेखक महाशय आगे कह रहे थे—'कुत्तेका प्रेम कितना निरपेक्ष होता है ? वह न तुमसे सौदा करके नफा कमाना चाहता है, न तुमसे विवाह करना चाहता है !'

नेपोलियन जैसा मनुष्य मित्रके लिये क्यों महँगा हो गया, थर्स्टन नामक जादूगर अपने खेल शुरू करनेसे पहले 'ये सब दर्शक मेरे मित्र हैं— मैं उनसे प्रेम करता हूँ' वाक्योंको मन-ही-मन क्यों रटा करता था, मित्रोंकी वर्ष-गाँठे डायरीमें नोट करके उस दिन उन्हें बधाईके तार भेजनेसे स्नेहका गहरा स्वरूप किस तरह प्राप्त होता है, पिछले महायुद्धमे कैसरका पराभव हुआ तब प्राण बचानेके लिये उसे हॉलैंड भाग जाना पड़ा। उस समय एक लड़केने उसे किस तरह एक मधुर पत्र लिखा और फिर उस पत्रके परिणाम स्वरूप उस लड़केकी माँसे कैसरका किस प्रकार विवाह हो गया इत्यादि बातें लेखकने इस प्रकरणमें बड़े मनोरंजक ढंगसे निवेदन की थीं।

परतु मुद्देकी बात आगे ही थी। प्रकरणके अन्तमें प्रसिद्ध मानस-शास्त्र-वेत्ता ऐडलरके आधारपर उसने एक उपदेशपूर्ण छोटा-सा वाक्य लिख दिया था— 'Become genuinely interested in other people' लोकप्रिय होनेका मार्ग एक ही है—'दूसरे लोगोंकी ओर ध्यान दो—अपने आसपासके लोगोंसे एकरस हो जाओ—मित्रोंके जीवनमें घुल-मिल जाओ —'

इसमेंका प्रत्येक वाक्य कहनेके लिये सरल है। परंतु आचरणमे लानेके लिये ?

इस पुस्तकको कल रात-भर विभुक्षितकी तरह पढ़कर, उसे पुनः सुबह तन्मयतासे पढ़नेवाले रामभाऊपर मुझे हँसी आने लगी।

मेरे भीतरका आलोचक पूरी तरह जाग उठा। वह कह रहा था,— 'तैरनेकी-कलापर लिखी पुस्तकोंको पढ़कर क्या कोई कभी तैरना सीखा है ? उसे सीखनेके लिये पानीमें ही उतरना पड़ता है और वक्त मौक़ेपर गोते भी खाने पड़ते हैं। हमने और आपने क्या कभी ऐसी एक भी स्त्री देखी है जो पाकशास्त्र पढ़कर घर-

गृहस्थीके काममें चतुरा बन गयी हो? अच्छी रसोई बनानेवाले लोगोंने अपने हाथ पहले अनेक बार चूल्हेमें जला लिये होते हैं। कुछ भी हो, पर पुस्तकें जीवनके असंगत और धुँधले प्रतिबिम्ब होती हैं। वे मनुष्यको क्या पढ़ायेंगी? अपने स्वयंका कैसा भी प्रतिबिम्ब देखनेमें मनुष्यको आनन्द आता है, इसीलिये दुनियामें आईने और पुस्तकें बिकती हैं! बस, इतनी ही बात है।'

रामभाऊ चाय ले आया था। उसकी चुस्कियाँ लेते हुए मेरी दृष्टि पुस्तकके मुख-पृष्ठपरके पहले ही वाक्यकी ओर गयी। एक, दहं, शत – अरे बाप रे! इस पुस्तककी दस लाखसे भी अधिक प्रतियाँ बिक चुकीं! उसपर साफ़ शब्दोंमें लिखा ही है – 'वर्तमान समयके ललित-साहित्यकी अत्यंत लोकप्रिय पुस्तक।'

मैं मन-ही-मन कह रहा था, – 'दुनिया पागलोंका बाज़ार है,' वाक्य जिसके मुँहसे पहले निकला होगा, वह दुनियाका सबसे सयाना आदमी होना चाहिए। यही सच है कि दुनियाको किसी झुकानेवालेकी ज़रूरत होती है। 'सत्यनारायण-की पूजा करनेसे संकट दूर होते हैं,' यह कहनेवाले पुरोहितजी और 'इस तरह या उस तरह बर्ताव करनेसे मित्र प्राप्त होते हैं' कहनेवाला लेखक – इन दोनोंमें क्या अन्तर है? दोनों ही लोगोंकी भोली भावनाओंसे किंबहुना उनकी दुर्बल मनो-वृत्तिसे लाभ उठाते हैं। कहिये, ठीक कहता हूँ न?'

यह इच्छा किसे नहीं होती कि हमारे बहुतसे मित्र हों? विद्याको सम्पत्ति कहने-का प्रघात भले ही बहुत पुराना हो, फिर भी मित्रोंका बृहत् संग्रह ही मनुष्यके जीवनका सच्चा वैभव होता है। परतु संसारके किसी भी वैभवको पुस्तकी ज्ञानके द्वारा सम्पादन कर लेना क्या कभी संभव हुआ है?

मुझे लगने लगा कि मेरे हाथमें जो पुस्तक है और घुड़-दौड़के 'टिप्स' देनेवाली जो पुस्तक होती है – इन दोनों पुस्तकोंमें कुछ न कुछ विलक्षण साम्य है। दोनोंकी विलक्षण बिक्रीका कारण एक ही है – बिना मेहनत किये किसी भी चीज़-को जितना संभव हो, उतने जल्दी और उतनी विपुल मात्रामें प्राप्त करनेकी मनुष्यकी इच्छा! घोड़ेपर पाँच आनेका दाव लगाकर किसीको एकाध बार पाँच रुपये मिल गये होंगे। परंतु सिर्फ़ इसी कारणसे घुड़-दौड़ द्रव्य-सम्पादनका विश्वसनीय मार्ग नहीं हो सकता! घुड़-दौड़के 'टिप्स' देनेवाली पुस्तकोंमें दिये गये 'टिप्स' अनेक बार ग़लत निकल जाते हैं। परतु उनकी लोकप्रियता किसी भी तरह कम नहीं होती। मित्र प्राप्त करनेका राज-मार्ग दिखानेवाली मेरे हाथ-

में रखी यह पुस्तक जो इतनी बिकी इसका कारण मनुष्यके इस लालची स्वभावमे ही है। लेखककी सामर्थ्यमें नहीं।

चाय समाप्त होते ही रामभाऊ बोला, – 'आप इस पुस्तकको एक बार पढ़ डालिये और फिर —'

मेहमानको कोई पकवानका जितना आग्रह न करेगा, उतना आग्रह रामभाऊ मुझे उस पुस्तकको पढ़नेका करने लगा। उसने हठ ही पकड़ लिया कि मुझे वह पुस्तक पढ़नी ही चाहिए।

मैंने पुस्तक रख ली और यह विचार करता हुआ कि दो-चार दिन पुस्तकको अपने घरमें रखे रहूँगा और उसे न पढकर ही जाकर रामभाऊको साभार लौटा दूँगा, मैं घर आया। रामभाऊको चिढानेके लिये उस पुस्तकके कुछ वाक्योको ध्यानमें रखना जरूरी था, इसलिये दूसरे दिन सुबह पड़ा पड़ा मै उसके पन्ने उलटने लगा —

और फिर ज़रूर —

प्रवाहके साथ बहती जानेवाली नौकाकी तरह मै उस पुस्तकको फुर्तीसे पढ़ता गया। पुस्तक कब समाप्त हो गयी इसका मुझे पता तक न चला। परतु जब समाप्त हुई तब मेरे मनको बड़ी सकपकाहट-सी लगी।

कल सुबह इस पुस्तकपर खुश होनेके लिये मैंने रामभाऊकी हँसी उड़ायी थी। परतु आज ? मुझे स्वयं मुझपर ही हँसी आयी। मूँगफलीकी उबली हुई फलियाँ अथवा काजू खाते समय, बार बार मनको यह चेतावनी देते हुए कि 'बस, अब काफी हो गया' मनुष्यका हाथ सामनेवाली चीज़पर जाता ही है न? इस पुस्तकके विषयमें ठीक वही स्थिति हो गयी थी मेरी। 'बस, इस प्रकरणके बाद रख दूँगा' कहते हुए मैंने पूरी पुस्तक पढ़ डाली।

वैसे देखा जाय तो यह बात बिल्कुल न थी कि इस पुस्तकमें कोई सुंदर कल्पनाएँ थीं, विनोद था, मानवी स्वभावका कोई चित्रण था अथवा मनको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाला कोई सजीव कथानक था। इस पुस्तकके प्रत्येक प्रकरणमें एकाध बहुश्रुत मित्रकी गप्पोंसे अधिक और कुछ भी न था। पुस्तकके अन्तमें गृहस्थीको सुखी बनानेके लिये लेखकने जो अनेक उपाय बतलाये हैं वे ऐसे थे जिन्हें साधारण मनुष्य भी जानता है।

इस विषयमें लेखकने पुरुषोको उपदेश दिया था, – 'स्त्रियाँ हमेशा चाहती हैं

कि वे सुंदर दिखे और लोग उस सौन्दर्यकी प्रशंसा करें। एक अठानवे वर्षकी नानीको जब उसके बचपनका फोटो दिखाया तब मन्द दृष्टि होनेके कारण उसने जो पहला प्रश्न किया वह यह था – ' यह बताओ न कि इस फोटोमें मेरा पोशाक कैसा है ? ' जो बात वेश-भूषाकी, वही पाक-कौशल्यकी भी है। रूसमें दावत खत्म होनेपर रसोइयेको ड्रॉइंग रूममें लाकर मेहमानों द्वारा उसका अभिनंदन करनेकी जो प्रथा थी, वह कोई यों ही न थी ! यदि हरएक पति इन दोनों विषयोंमें पत्नीकी समय समयपर प्रशंसा करता रहे, तो गृहस्थीके दुखके कॉंटे बोथरे हो जाते हैं और सुखकी कलियॉं फुर्तीसे खिलने लगती हैं।

पुस्तक पढ़ते हुए मन-ही-मन मैंने इस मज़मूनका मज़ाक ही उड़ाया था। परंतु पुस्तक समाप्त होनेके पश्चात मुझे लगने लगा – लेखकद्वारा बतायी गयी ये बातें बिल्कुल साधारण होंगी। पर वे सत्य हैं न ? हमारे वर्तमान जीवनमें इन मामूली सत्योंका ही अभाव है न ? इसीलिये उन्हें कहना और इस ढंगसे कहना जिससे कि वे किसीको भी आसानीसे जँच जाये – अत्यन्त आवश्यक है। इस पुस्तककी इतनी लोकप्रियताका कारण यही होना चाहिए।

हममेंसे हरएक चाहता है कि हमारे बहुतसे मित्र हों। हमें यह लगता रहता है कि हमारा अपने मित्रोंसे कभी भी मन-मुटाव न हो। हमारे मनमें पद-पदपर यह उत्कट इच्छा पैदा होती है कि हमारे और हमारी पत्नीके हृदयोंके तार सदैव जुड़े रहें और उनकी नाद-लहरोंपर गृहस्थीकी नौका तैरती रहे ! परंतु प्रत्यक्ष जो अनुभव होता है उसका अवश्य इस आशा, इच्छा और अपेक्षासे कुछ भी नहीं जुड़ता। पॉंच-दस सालकी पुरानी मैत्री किसी तुच्छ कारणसे टूट जाती है, हमारे जीवनके सुखोंकी शक्करमें कोई पहलेसे ही नमक मिला देता है, ऐसा अनुभव होता है और हम और हमारी पत्नीमें प्रेम-कलहके बजाय कलह-प्रेम ही अधिक है इसका पता हमारे पड़ोसियोंको भी धीरे धीरे लग चुकता है !

पैरमें कॉंटेकी बारीक नोक टूट जानेसे ही मनुष्य अस्वस्थ हो जावे, उस तरह इन छोटे छोटे सॉंसारिक दुखोंसे हमारे मनकी दशा हो जाती है। यदि बड़ा भारी बिच्छू काट खाय तो मनुष्य ज़ोर-ज़ोरसे रो सकता है। दूसरे लोग भी उससे सहानुभूति दिखाते हैं। परंतु पद-पदपर असंतोष निर्माण करनेवाली मामूली बातें इस बिच्छूकी तरह नहीं होतीं। उन्हें खटमलोंकी उपमा ही शोभा देगी। खटमल मनुष्यको परेशान कर देते हैं। परंतु उस अभागे मनुष्यसे अपना यह दुख दूसरेसे

कहां भी नहीं जाता अथवा रो कर व्यक्त भी नहीं किया जाता। मैत्री टूटना, मामूली व्यवहारमें धोखा खाना, घरमें व्यर्थकी झँझटें खड़ी होना – ये सब दुख इसी प्रकारके होते हैं। इन दुखोंपर यदि एकाध उपाय मिल गया तो उसकी प्रत्येकको ज़रूरत होती है। कार्नेजीकी 'मित्र कैसे बनाएँ?' नामक इस पुस्तक-की जो प्रचण्ड बिक्री हुई उसका कारण यह है कि उसमें साधारण मनुष्यके इन अत्यन्त साधारण दुखोंका उसने सहानुभूतिसे विचार किया है। यही नहीं, बल्कि वैद्य जिस प्रकार रोगीको पथ्य बताता है उस तरह उसने अनेक मानसिक पथ्य भी अपने पाठकोंको बतलाये हैं।

परतु इन पथ्योंका पालन साधारण मनुष्योंसे हो सकेगा या नहीं, यह शंका अनेकके मनमें उत्पन्न होगी – मेरे मनमें भी वह आयी थी। उसका समाधान कार्नेजीने कहीं भी नहीं किया है। परंतु इस पुस्तकका समर्पण-पत्र पढनेसे उस विषयमें भी आशावादी रहनेके लिये कोई हर्ज़ नहीं, ऐसा मुझे लगता है। लेखक-ने अपनी यह पुस्तक होमर क्रॉय नामक हम और आपसे अपरिचित एक मनुष्यको समर्पित की है। अपने इस स्नेहीका वर्णन लेखकने एक ही वाक्यमें किया है — 'जिसे इस पुस्तकको पढ़नेकी बिल्कुल ज़रूरत नहीं, उस प्रिय मित्र को।'

● ● ●

५

मंदाकिनी

किसीने कहा है कि सुभाषितका उद्गम बहुधा सौंदर्यमें होता है, सहसा सत्यमें नहीं होता। इसका अनुभव मुझे बार-बार होता है।

पिछले महीनेकी बात है। बहुत दिनोंके बाद – दिन कहनेके बजाय वर्ष ही कहूँ तो अधिक शोभा देगा – मैं शिरोडा गया था। वहाँकी शालामें एक छोटा सा पारितोषक-वितरण समारोह था। कार्य-क्रम आरंभ हो रहा था, तभी चेहरेपर मन्द मुस्कान लिये हुए एक लड़का मेरे पास आया और उसने बटमोगरेका एक ताज़ा फूल मुझे दिया। उस फूलकी भीनी सुगंध लेते हुए मेरे मनमें आया, इस सुगंधके रूपमें शालाने भी मेरे प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया है। है न?

उस फूलको कोटमें लगानेका मैंने प्रयत्न किया। परंतु जल्दी-जल्दीमें वह मुझसे न हो सका। ऐसे समय मुझे अपने बुद्धूपनपर बड़ा गुस्सा आता है। परंतु शीघ्र ही मैं अपने आपको संतोष दे देता हूँ – सारी छोटी-मोटी बातें यदि इसी जन्ममें सीख ले, तो अगला जन्म भार-स्वरूप हो जायगा। उससे मैं जल्दी ऊब जाऊँगा। इससे तो अनेक विषयोंमें मेरा वर्तमान अज्ञान ही अधिक अच्छा है। अगले जन्ममें मुझे बहुतसी बातें सीखनी हैं, यह कल्पना ही कितनी आशादायक है! आओ, हम उन बातोंकी एक सूची ही तैयार कर लें। कोटमें फूल लगाना, साइकिल-

पर बैठना, फाउंटनपेनमें स्याही भरना, टेनिस खेलना, गाते न बना फिर भी हारमोनियम बजाना, कम-से-कम अलगोजा बजाना, रुमाल या नेकटाई, इनमेंसे किसी एकको बाँधना सीखना इत्यादि, इत्यादि।

इस विचार-पद्धतिसे मनको संतोष देते हुए मैंने उस बटमोगरेके फूलको अपने जेबके रुमालमें धीरेसे रख दिया और समारोहके कार्यमें निमग्न हो गया।

उस दिन पुरानी मधुर स्मृतियोंकी सुगंधसे मेरा मन पद-पदपर भर रहा था। और मनके विविध भावोंको प्रकट करना जब असंभव हो जाता, तो हर बार मेरा हाथ जेबकी ओर जाता था, उसमेंसे वह उस बटमोगरेके फूलको धीरेसे बाहर निकालता था और जिस तरह किसी नन्हे बच्चेका कोमलतासे चुम्बन ले, उस प्रकार उस प्रिय फूलकी सुगंध लेनेके बाद, मेरा हाथ उसे पुनः जेबमें ले जाकर रख देता था।

बटमोगरेके उस फूलके साथ चल रही मेरी इस निरंतर खिलवाड़को यदि कोई देख लेता, तो वह कहता, — यह मनुष्य बटमोगरेका फूल जीवनमें पहली बार ही देख रहा है! पहले पहलका आकर्षण कुछ अलग ही होता है। कहावत ही है न! — पहला बच्चा, पहला फूल और पहला चुम्बन — पहलेकी मिठास दूसरेमें नहीं होती!

मैं उस महाशयको उत्तर देता, — आपके ये सुभाषित मानव-जातिके द्वारा पाले गये मधुर असत्य हैं। इससे पहले मैंने सैकड़ों बार बटमोगरेके फूल देखे हैं, उनकी सुगंध ली है। यही नहीं, बल्कि उन्हें सिरहाने रखकर उनके सुगंधमय स्वप्नोंसे एकरस होते हुए मैं निद्राके आधीन हुआ हूँ। इसके बावजूद, आज बटमोगरा हाथमें आते ही उसने मुझे पागल कर दिया, इसमें जरूर कोई शक नहीं। सूर्योदय, सूर्यास्त, चाँदनी, वर्षा, इन्द्रधनुष, समुद्र, आधी रात — किसी भी सुंदर दृश्यको लीजिये, हर बार वह मनुष्यके मनको मोहित करता है। इन सबकी पहले बारकी मिठास दूसरी बार ही क्या, पर हज़ारवीं अनुभूतिके समय भी बनी रहती है। किंबहुना वह हर बार बढ़ती ही जाती है। चौदह वर्षके बाद भगवान् रामचंद्र दण्डकारण्यमें लौटकर आते हैं और पूर्वस्मृतिसे व्याकुल होकर बेहोश हो जाते हैं। तब सीताजी अपने क्षणिक स्पर्शसे उनकी बेहोशी दूर कर देती हैं। भवभूतीने जो यह लिखा है उससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि पहले

चुम्बनकी अपेक्षा सहवासमे प्रियतम बने व्यक्तिका मामूली स्पर्श भी संजीवनी होता है?

और बच्चोंकी बात क्या फूलोंसे भिन्न है?

पितृपद और मातृपद प्राप्त करा देनेवाले पहले बच्चेके विषयमें माता-पिताको एक प्रकारका अभिमान और आनन्द होता है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु उन्हें शीघ्र ही यह कल्पना हो जाती है कि उनका सारा अभिमान और आनन्द अधूरा है। कम-से-कम मुझे तो वह हुई।

मझधरेको पादाक्रान्त करनेके लिये छटपटानेवाले अविनाशकी बाल-क्रीड़ाओंमें खोये होते हुए भी मेरे मनमें विचार उठा करते —

यह सच है कि दहेज देना पडता है इसलिये प्रत्येक हिन्दु माता-पिताको यह लगता है कि उनकी पहली सन्तान लड़का ही हो। परन्तु केवल पुत्र-प्रेमसे ही मनुष्यके वात्सल्यकी तृप्ति नहीं होती। चौबीस घंटे यदि सूर्य ही प्रकाशित होता रहता, तो लोग उससे ऊब जाते। वह शामको अस्त हो जाता है और अमृतमधुर चन्द्रिकाका उदय होता है। इसीलिये दिन और रात अपनी अपनी तरहसे मनुष्यो-को रमणीय लगते हैं। सिर्फ फलोंसे लदे हुए वृक्षोंकी पंक्तियोंको देखकर हमारी आँखोंको संतोष नहीं होता। वे विविध रंगों और आकारोंके फूलोंसे सजी हुई लताएँ भी देखना चाहती हैं। वात्सल्यकी भी यही बात है। संतान-प्रेम केवल पुत्र प्रेम नहीं है किंवा केवल कन्या-प्रेम भी नहीं है। वह इन दोनों प्रेमोंका संगम है! कई एक परिवारोंको सिर्फ पुत्रोंका अथवा सिर्फ पुत्रियोंका वरदान होता है। इसका परिणाम अंतमें यह होता है कि, ऐसे माँ-बाप जिन्हें लड़केके बाद लड़के होते रहते हैं, अपने छोटे लडकेके बालोंको लड़कीकी तरह बढ़ने देते हैं और लड़कीकी तरह ही उसे शृंगारित कर अपने कन्या-प्रेमकी प्यास बुझाते हैं। इसके विपरीत लड़कीके बाद लड़की होते रहनेके कारण अपनी एकाध लड़कीको लड़केकी तरह सजानेवाले और 'मनुबाई' को 'मन्याबापू' कहकर पुकारने-वाले माता-पिता भी दिखायी देते हैं। दूसरोंको उनका यह व्यवहार पागलपन-सा मालूम होता है। परतु क्या पागलपन और क्या विकृति – दोनोंका जन्म अतृप्तिके गर्भसे हीं हुआ करता है।

पहली संतानके समय पति-पत्नीके मनपर उत्सुकताके साथ ही भयकी भी छाया फैली रहती है। 'जचगी यानी स्त्रीका पुनर्जन्म' – यह पुराना वाक्य

रह-रहकर उन्हें डरा देता है। परतु संतान-प्राप्तिसे स्त्रीका ही नहीं, किन्तु पुरुषका भी मानसिक पुनर्जन्म होता है। उस एक क्षणमें पत्नी माताकी हैसियतसे जन्म लेती है और पतिका रूपान्तर पितामें हो जाता है। यह बात अनुभवसे ज्ञात हो जानेके कारण दूसरी संतानके समय पति-पत्नीके मनमें भयकी अपेक्षा कुतूहल ही अधिक प्रभावी होता है। गृह-राज्यमें 'अब लड़का होगा या लड़की?' इस प्रश्नको 'युद्ध होगा या सन्धि होगी?' प्रश्नके बराबर महत्त्वका स्वरूप इसी समय प्राप्त होता है। जिनकी पहली सतान लड़का होती है उन्हें यही लगता है कि उसकी पीठपर लड़की हो। मैं भी इस नियमका अपवाद न था। पर एक बात जरूर थी। पत्नीका मज़ाक करनेके लिये, ज्योतिषपर मेरा विश्वास न होते हुए भी, किसीके द्वारा बहुत पहले बनायी गयी अपनी कुंडलीको दिखाकर, उससे पुनः पुनः यह कहनेमें कि तुम्हें फिरसे लड़का ही होगा, मुझे बड़ा मजा आता था, यह बात झूठ नहीं है। बहुत बार उसने इसे मजाक ही समझा। परतु पतिका यह छल असह्य होनेपर उसने एक बार उत्तर दिया – 'सभी भविष्य कोई सच नहीं निकला करते!'

महाडकर* से लेकर म्हापणकर तक किन किन ज्योतिषियोंके कौन कौनसे भविष्य सच निकले, इस विषयमें मुझसे कुछ भी कहते नहीं बनता था इसलिये मुझे थोड़ी देरके लिये सफलतापूर्वक पीछे हट जाना पड़ा। परतु युद्धमे एक शस्त्र निकम्मा हो जानेसे ही कोई शूर सैनिक प्रतिपक्षीकी शरण नहीं चला जाता। पति-पत्नीके प्रेम-कलहमें भी यही होता है। यह निश्चित हो जानेपर कि ज्योतिष-शास्त्र भरोसेका आसामी नहीं है, मैंने आनुवंशिक शास्त्रका सहारा लिया। हम तीनों भाई ही थे। बचपनमें यह इच्छा होते हुए भी कि भैया-दूजके दिन एक बहन चाहिए, वह मुझे कभी न मिली थी। पिछली पीढ़ीका यह प्रमाण पत्नीको यों ही डरानेके काममें थोड़ा बहुत उपयोगी हुआ सही! परतु मनमें जरूर मैं निरतर कह रहा था – 'यह कहनेकी हमारे यहाँ प्रथा है कि विवाह एक लॉटरी होती है। परतु विवाहकी अपेक्षा संतान-प्राप्तिको ही यह उपमा अधिक शोभा देगी।'

मनमें इस प्रकारके विचार उठते रहनेके कारण इस बातका फैसला जिस दिन हुआ वह अमावस होते हुए भी मुझे पूनोकी तरह लगा। क्योंकि फैसला हमारे अनुकूल ही हुआ था। अविनाशको बहन हुई थी।

शीघ्र ही गृह-राज्यकी कौंसिलमें एक प्रश्नकी ज़ोरशोरसे चर्चा होने लगी। लड़की-

* ज्योतिषियोंके नाम

का नाम क्या रखा जाय ? किसीने चटसे 'छाया' नाम सुझाया। नाम छोटा सा था, चिलचिलाते हुए जीवनको शीतलता प्रदान करनेका स्त्री हृदयका जो धर्म है, वह उस नाममें प्रतिबिंबित भी हुआ था। साथ ही 'छाया' नामक चित्र पटकी कथाके लिये मुझे उसी समय सुवर्ण-पदक मिला था।

लड़कीका 'छाया' नाम रखनेके मोहमें मैं पड़ गया। परन्तु स्त्री जीवनके सौन्दर्य, वात्सल्य, त्याग इत्यादि सर्व गुणोंको प्रकट करनेवाला नाम मैं चाहता था। 'छाया' नाम काव्यमय था, पर इस दृष्टिसे वह मुझे पूर्ण संतोष न दे सका।

मन-ही मनमें अनेक नामोंका चुनाव करने लगा। देवी-देवताओं और नदियोंके नाम मेरी आँखोंके सामने खड़े हो गये। परतु देवी-देवताओंके स्वरूपकी कल्पना करने तथा उन्हे सँवारनेमें हमारे पूर्वजोंकी जैसी कल्पकता दिखायी देती है, वह उनके नामोंमें सहसा नहीं मिलती। सरस्वतीका ही उदाहरण लीजिये! आजकलके कुछ चित्रकारोंने उसे बिलकुल आधुनिक अभिनेत्री बना दिया हो फिर भी —

'या कुंदेंदुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदंडमंडितकरा या शुभ्रपद्मासना।'

इन दो मधुर चरणोंमें प्राचीन कविद्वारा चित्रित किया गया सरस्वतीका स्वरूप कितना सुंदर और गंभीर है! सरस्वती जगमें पवित्रताका प्रकाश फैलानेवाली ज्योति है — मानवी मनकी मलिनताको नष्ट करनेवाली देवी है — ऐसी देवीकी अंगकान्ति शुभ्र होनी चाहिए, उसके वस्त्र शुभ्र होने चाहिए और उसका आसन भी शुभ्र ही हो! प्रतीककी दृष्टिसे देखिये अथवा रंगसंगतिकी दृष्टिसे देखिये, इस काव्य-चित्रकी कल्पकता कितनी कोमल और मनोरम लगती है! सरस्वतीके हाथमें वीणा देनेमें और मयूरको ही उसका वाहन बनानेकी कल्पनामें भी कितना काव्य भरा हुआ है

परंतु 'सरस्वती' नाम इस काव्यकी तुलनामें बहुत ही रूखा लगता है इसमें भी यह नाम यदि किसी लड़कीको दिया जाय, तो लघुताकी दृष्टिसे उसका 'सरू' में रूपान्तर हुआ ही समझिये। लड़की यदि ऊँचे कदकी हुई तो आगे चलकर लोग इस 'सरू' को 'सुरूं' कहकर पुकारनेमें भी कम न करेंगे।

मैंने मनमें कहा — छिः! सरस्वतीके प्रति मुझे कितना भी आदर क्यों न हो फिर भी अपनी लड़कीका वह नाम रखनेमें कोई अर्थ नहीं है।

बचपनमें मुझे स्वर्गीय श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर* के नाटक बहुत पसंद थे। इन

* मराठीके प्रसिद्ध नाटककार।

नाटकोंकी सारी नायिकाओं और उप नायिकाओंकी पल्टन मैंने देखी — शालिनी, मालिनी, सरोजिनी, नंदिनी, सौदामिनी, चन्द्रिका, इंदिरा, मोहिनी, त्रिवेणी — ये नाम नाटकमें मधुर लगते हैं, यह सच्च है। परन्तु प्रत्यक्ष व्यवहारमें वे अनेक दृष्टिसे अड्चनके होते हैं। सौदामिनीको क्या 'सौदा' कहकर पुकारे इसमें तो उसे 'मिनी' ही कहना अच्छा!

नाटकों और उपन्यासोंके नाम, रियासतोंमें दरबारके लिये पहनी जानेवाली पोशाककी तरह मनको परकीय और विचित्र लगते हैं। इसलिये उनका नाम ही मैंने छोड़ दिया। परन्तु कुछ भी हो, लडकीको शोभा देनेवाला एक नाम खोजना मेरे लिये परम आवश्यक था। स्वय अपनी लड़कीका 'नाम' रखना दूसरोंकी लड़कीयोंको 'नाम' रखनेकी तरह आसान नहीं है, यह मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया!

बारहवाँ दिन नजदीक आ रहा था और मुझे तो कोई भी नाम पसन्द नहीं आ रहा था। चार-पाँच दिनके बाद मुझे इस नाम-अन्वेषणसे भय लगने लगा। जिस तरह आई० सी० एस० पतिकी चाहमें अडकर बैठनेवाली सुशिक्षिता सम्पन्न लड़कियोंको अन्तमें अविवाहित रहना पडता है, अथवा बचे हुए किसी पुरुषके गलेमें वरमाला पहनानी पड़ती है, उसी तरह समर्पक नामकी खोजके मेरे इस पागलपनके कारण, कहीं मुझपर लड़कीकी 'बेनाम' बारहवी मनानेका मौका तो नहीं आता, अथवा ठकू, ठमी, चिमी, रगी जैसा तुक मिलनेवाला कोई नाम अकल्पित रीतिसे तो उसके साथ नहीं चिपक जाता, इस विषयमें मैं मनमें साशंक हो गया। परंतु एक बात जरूर हुई और वह यह कि सकटके कारण मनुष्यकी कल्पना-शक्ति पल्लवित होती है, इसका अनुभव भी बारहवींके पहले दस दिनोंके भीतर मुझे पूर्ण रूपसे हो गया।

लड़कीके लिये योग्य नाम मुझे मिल नहीं रहा था। पर जैसे जैसे मै नामका विचार करने लगा, वैसे वैसे प्राचीन कालके स्त्री-जीवनके विविध और मनोरम चित्र मेरी आँखोंके सामने नाचने लगे। दुर्बलताके कारण पतिकी लाते खाते रहनेवाली लाचार पतिव्रताको आजका जग नहीं चाहता, यह सच्च है। परतु मधुर प्रेम-पुष्पोंसे पतिको पूजनेवाली और उसके वन जानेपर प्रसन्न मुखसे उसके चरणों-पर चरण रखकर जानेवाली सीतादेवी — पति-प्रेमके इस उच्च और उज्ज्वल आदर्शको जग हमेशा ही चाहेगा, और यमराजको मात देकर पतिके प्राणोंको

यापस प्राप्त कर लेनेवाली चतुर सावित्री — उसके दिव्य प्रेमको दुनिया कभी भी नहीं भुला सकेगी। पति चुन लेनेके बाद, यह पता लगनेपर कि वह अल्पायु है, वह डरकर पीछे नहीं हटी। प्रत्युत अपने पुण्य-प्रभावसे मैं कालको भी जीत लूँगी, यही स्पर्धाकी वृत्ति उसने अपने मनमें पालकर रखी। प्रेम स्त्रीको कितना साहस दे सकता है इसका चित्रण करनेवाली यह अमर कथा —

पर एक बात है। उत्कट प्रेम करना स्त्री-हृदयका धर्म हो, फिर भी वह प्रेम यदि अंधा है तो किसी कामका नहीं होता। अपने पति या अपने पुत्रकी हैसियत-से किसी पुरुषपर प्राणोंसे भी अधिक प्रेम करके स्त्रीका कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता। पति अथवा पुत्रने जीवनके सच्चे मूल्योंको भुला दिया है, इसकी परवाह न करके कि पराक्रम ही पुरुषका प्राण है, वह कीटकवत् जीवन बिताने लगा है तो उसका विरोध करना, यही स्त्रीका धर्म निश्चित होता है। पराभूत होकर अपने किलेको लौट आये हुए जसवंतसिंहको उसकी पत्नी रानी चन्द्रावतीने भीतर कदम नहीं रखने दिया और समर-भूमिको पीठ दिखाकर लौटे हुए संजयको उसकी माता विदुलाने उपदेश देकर, पुनः युद्धके लिये प्रवृत्त किया — ये आदर्श आजकी स्त्रियोंके लिये ही नहीं बल्कि आगेकी स्त्रियोंके लिये भी मार्ग-दर्शक होंगे।

सीता, सावित्री, चन्द्रावती, विदुला, जिजाबाई इत्यादि स्त्री-रत्नोंके नाम इतिहास-पुराणोंमें चमक सके। परंतु जो रत्न जौहरी-बाजारतक नहीं पहुँचते, जो किसी खदानके भीतर धूलमें पड़े रहते हैं वे तेजस्वी नहीं होते, यह कौन कहेगा! पीढ़ियोंसे घर-घरमें माता, पत्नी, कन्या और भगिनीके रूपमें — अनेक नातोंके द्वारा स्त्रियाँ मानव-जातिकी सेवा करती आयी हैं, इसका माहात्म्य कौन अस्वीकार करेगा?

दुनियामें लिखी जानेवाली कथाओंकी अपेक्षा न लिखी जानेवाली कथाएँ ही अधिक सरस होती हैं। बचपनमें देखी हुई एक रसोईदारिनकी मुझे आज भी याद आती है। उसे उपन्यासकी नायिका बनानेका साहस हम मराठी लेखकोंमें नहीं है, यह बात अलग है। परंतु सोलह वर्षकी उम्रमें ही सिरपर वैधव्यका पहाड़ टूट जानेपर और सगे-संबंधियों किंवा रुपये-पैसोंका तिनका-भर भी आधार न होते हुए उसने स्वयं अपनी हिम्मतपर अपने दो पुत्रोंका लालन-पालन किया — उन्हें शिक्षा दी। उनका जीवन वीरान मरुभूमि बननेवाला था, परंतु उसने उसे नंदन-वन बना दिया!

अपने आपको भूलकर दूसरोंके लिये जीवित रहनेमें स्त्रीको जो उदात्त आनंद

होता है, प्रेमके लिये प्रसन्न मुखसे सर्वस्वका त्याग करनेमे उसे जो अभिमान अनुभव होता है, उसके कारण ही पुरुषका जीवन रस-पूर्ण होता है, उसके पराक्रमको उत्साह मिलता है और दुनियाका कदम आगे बढ़ता है।

गॉर्कीके 'मॉ' उपन्यासकी मॉ जितनी गॅवार उतनी ही दरिद्री है। उसका बेटा जिस आन्दोलनमें भाग लेता है, उसका स्वरूप वह पहले पहल बिलकुल ही नहीं समझ पाती। वह शंकित मनसे उस आन्दोलनको देखती है। परतु स्त्री कितनी भी अशिक्षित हो, प्रेम उसे बातकी बातमे शिक्षित बना देता है। वह कितनी भी ग़रीब हो, फिर भी उसके अन्तःकरणकी भावनाओके भण्डारमे इतनी सामर्थ्य होती है कि वह कुबेरको भी खरीद सकता है। और फिर किसी फ्रॉक पहननेवाली लडकीकी तरह लिखना पढना सीखकर, वह अपने पुत्रके आन्दोलनसे एकजीव हो जाती है। दीन-दुखियो और दलितोके उद्धारके लिये हो रही लड़ाईमे लढते हुए ही उसे वीर-गति प्राप्त होती है।

स्त्री-हृदयका यह उदात्त माहात्म्य गॉर्कीकी तरह कवि ताबेजीको भी जॅच गया था। इसीलिये 'भयचकित नमावें तुज रमणी'* जैसे उद्‌गार उनके मुॅहसे निकले।

ताबेजीकी इस सुंदर कविताको मै हर रोज मन-ही-मन गुनगुनाता था, स्त्री-जीवनके विविध आदर्श मेरी ऑखोके सामने रोज खड़े होते थे, परतु जो नाम मै चाहता था वह अवश्य किसी भी तरह मुझे सूझता न था। अन्तमे दसवें दिन रातको सोते समय मैने निश्चय किया कि इन्हींमेंसे अच्छे मालूम हुए दो-तीन नाम चुनकर अलग अलग चिट्ठियोंमे लिख लूॅ और उन चिट्ठियोमेंसे अविनाश जिस नामकी चिट्ठी उठायेगा उसी नामको चुन लूॅ। इस कल्पनासे कि अपने कजूस पिताने कहीं न कहीं धन गाड़कर रखा है, ज़मीन खोदते रहनेवाले मनुष्यकी तरह मेरा नाम खोजनेका यह काम चल रहा था। मन-ही-मन यह कहते हुए कि कलसे यह काम बद कर दूॅगा मैं निद्रा-देवीकी आराधना करने लगा।

स्मृति और विस्मृतिकी सीमा-रेखापर मेरा मन चक्कर काट रहा था तब मुझे लगा—बचपनमे जब मै किसी श्लोकका अर्थ नहीं समझ पाता था, तो मै चिढ़ जाता था। परतु उस समय मुझे एक विलक्षण अनुभव होता था। लोनपाटके खेलमे किसी कोनेमें अटक जाऍ, प्रतिपक्षीको खूब चकमे दे परतु किसी भी तरह अपना छुटकारा न हो, और उस कोनेसे निकलनेकी कोई आशा न रहनेपर बिलकुल

*'हे रमणी, भयचकित हो कर तुझे प्रणाम करना चाहिए।'

सहजमें छुटकारा मिल जाय– ठीक इसी तरह उस न समझमें आनेवाले श्लोक का अर्थ, दूसरे दिन सुबह, मेरी समझमें आ जाता था। मैं उस समय हँसते हँसते मन-ही-मन कहा करता, – ‘किसी देवीकी कृपा है मुझपर। वह रातको धीरेसे मेरे कमरेमें आती है और मेरे मस्तकपर वरदहस्त रखकर चली जाती है। बचपनकी वह देवी आज भी मेरी सहायता करने दौड़ आवे, तो क्या ही मजा आ जाये?’ इस प्रकार पुटपुटाते हुए मेरी आँखें लग गयीं।

पर एक बात थी। मेरी नींद शान्तिमय न थी। स्वप्नके बाद स्वप्न दीख रहे थे मुझको। चित्रपटमे एक आकृति लुप्त होकर उसकी जगह दूसरी दीखने लगती है, इसी तरहकी एक रील मेरी नजरोके सामनेसे फुर्तीसे गुजर रही थी। पहला चित्र शून्य दृष्टिसे कहीं भी देखनेवाली हालहीमे जन्मी बालिका! बातकी बातमें वह बडी हो जाती है और कोई उसके गालको हाथ लगाता है तो उसकी मुद्रापर स्मितकी कोमल छटा चमकने लगती है। शीघ्र ही वह बडी शानसे ज़मीनपर बैठकर ‘सिर दे’ कहनेपर कहनेवाले व्यक्तिके सिरपर अपना सिर जा कर टटल देती है।

उससे बोलते न बनता हो फिर भी अपने सुकुमार दाएँ हाथकी एक अँगुली बाएँ हाथपर नचाकर ‘इयें इये बैस रे मोरा’* नाट्य-गीतका मूक अभिनय करके दिखाती है।

इसके आगेका चित्र – यह बालिका तीन सालकी हो गयी है। उसकी गर्दनके दोनो तरफ दो छोटी छोटी वेणियाँ नाच रही हैं। छोटी शाखाओंमे सुदर फूल लगे उस तरह उन वेणियोंके सिरोंमे बंधे हुए फीते शोभा दे रहे हैं। बालिका मन-ही-मन गुनगुना रही है – ‘भालत हमाला प्याला —’

गरमीके दिन। दोपहरका समय है। भोजन हो चुके हैं और घरके सब लोग ‘हुश! हुश!’ करते बैठे हुए हैं। परतु वह बालिका छोटा-सा चूल्हा और छोटे-छोटे बरतन लेकर कहींसे लाये हुए घूँट-भर पानीकी चाय बना रही है। और वह सबको पेट-भर पिला रही है।

बालिका एकदम तेरह-चौदह वर्षकी हो जाती है। अब उसकी वेणियाँ पीठपर लहराती हैं। वह पाँच गजी साड़ी पहने हुए है। उसे देखकर हरिणीकी ही याद

*‘आ मोर, यहाँ आकर बैठ जा।’

किसीको भी आ सकती है। उसकी गति और दृष्टि दोनोंमे हरिणीकी मधुर चॅचलता चमक रही है।

बालिका और बडी हो जाती है। छिः! अब उसे बालिका कहना यानी – उसे तरुणी ही कहना चाहिए। वह तरुणी एक दिन संधि-प्रकाशमे लताकुंजमें किसी तरुणसे गर्दनके इशारेसे ही कुछ कहती है – उसी क्षण स्वर्ग पृथ्वीपर उतर आता है।

मै एकदम जाग उठा। कही एक छोटा बच्चा रो रहा था। मुझे क्षणभर उसके रोनेपर बड़ा क्रोध आया। पर दुसरे ही क्षण मुझे खुद अपने आपपर हॅसी आयी। स्वप्न-सृष्टिमे मेरी लडकी 'ससुरालके नाम' तक पहुँच गयी थी। परतु सत्य-सृष्टिमें अवश्य उसके मायकेका नाम भी अभीतक पक्का नही हुआ था।

अस्वस्थ मनसे मै कमरेके बाहर आया। वह सावनकी रात थी। वर्षाके झले नही आ रहे थे। फिर भी इस कल्पनासे कि आकाशमें अँधेरा छाया होगा मैंने ऑगनमे कदम रखा। मै चकित हो गया। आकाशमे एक भी काला बादल न था। तारिकाएँ चम-चम चमक रही थी और वह आकाश-गगाका पट्टा —

पृथ्वीके पेटमे हीरे कैसे तैयार होते हैं? – मनुष्यके मनमे कल्पनाएँ भी उसी तरह स्फुरित होती हैं क्या?

वह स्वर्ग-गगा दीख रही थी। कुछ समय पहले मेरे स्वप्नमे स्वर्ग पृथ्वीपर उतर आया था। एकदम मुझे एक शब्दका स्मरण हुआ — 'मदाकिनी'।

मुझे लगा कि स्त्री-जीवनका सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब इस शब्दमे व्यक्त हो गया है। मदाकिनी गगाका स्वर्गका नाम है। परतु गगा स्वर्गके सौन्दर्य और विलासोमे खोकर वहीं नहीं बनी रही। पृथ्वीपर उतरकर उसने उसे सम्पन्नता दी। यही नहीं बल्कि कपिल ऋषिके शापसे पातालमे दग्ध होकर पड़े हुए सगरके पुत्रोका उद्धार भी उसीने ही किया।

मदाकिनी नाम कितना अर्थ पूर्ण है इस विषयमे उस समय मेरे मनमे जो कल्पनाएँ आयी थी, उन्हें मैं स्मरण करनेकी कोशिश कर रहा था —

इसी समय पॉच सालकी मूर्तिमान मन्दाकिनी मेरी ओर दौडती हुई आयी। उसके हाथमे एक गुड़िया थी। मेरा हाथ खीचकर मुझे मेरी जगहसे करीब करीब उठाते हुए वह बोली, – 'चलिये, भाऊ!'

'कहाँ?'

'मेरी गुड़ियाके विवाहमे!'

'आजकल विवाह रजिस्टर पद्धतिसे होते हैं। उसके लिये सिर्फ दो गवाहोंकी जरूरत होती है। एक तुम हो और दूसरी लता हो जायगी।'

मेरी रजिस्टर-पद्धति विवाहकी बात वह क्या समझती? वह दुलारसे मुझे खींचे जा रही थी।

'चलो भई, नहीं तो मुहूरत टल जायगा!'

'छोड, मुझे लिखना है री!'

'क्या लिखना है? कहानी?'

'हॉ' मैने किसी तरह छुटकारा पाया। बच्चोको लेखनके एक ही प्रकारका ज्ञान होता है—कहानी।

'मुझे सुनाईये न आपकी कहानी!'—मंदाने हठ पकड़ लिया।

मुझे तो लिखनेकी जल्दी थी। मैने कहा—'सुनो हॅऽ! एक था गीदड़—'

मेरे मुँहपर हाथ रखती हुई वह बोली,—'मुझे ऐसी कहानी नहीं सुनाना।'

'तो फिर कैसी कहानी चाहती है?'

'लड़ाईकी। अवी कहता है कि कल हमारे घरपर बम गिरनेवाले हैं।'

क्षण-भर मै स्तब्ध रह गया। परतु मदाको लगा कि उससे कहानी न कहनी पडे इसलिये मै कोई बहाना ढूॅढ रहा हूॅ। मेरे गलेमे बाहे डालकर लटकती हुई वह बोली,—'लडाईकी एक बहुत सुदर कहानी सुनाईये।'

लडाईकी कहानी और बहुत सुदर? अब इस छोकरीसे क्या कहा जाय?

मै बिल्कुल चकरा गया। परतु इस टैक्सको चुकाये बिना मेरी गाड़ीका आगे बढ़ना सभव न था। कुछ समय पहले किसी अखबारमें पढी हुई एक रूसी स्त्रीकी कहानी मै उसे सुनाने लगा—

'एक रूसी गॉव था। उसे जर्मनोने जीत लिया था। कुछ जर्मन अधिकारियोने उन गॉववालोसे जर्मनीकी जय बुलवानेका निश्चय किया। इसके लिये उन्होने उस गॉवकी एक प्रमुख रूसी स्त्रीको एक भाषण लिखकर दे दिया। उसमें लिखा था—'हमे रूसके राज्यकी अपेक्षा जर्मनीका राज्य ही अधिक पसद है।' बाकी मजमून भी इसी अर्थका था। उस महिलाको जर्मन भाषाका थोडा भी ज्ञान न होते हुए भी उसने वह भाषण मुखाग्र कर लिया। इससे उन जर्मन अधिकारियोको बडी खुशी हुई। उन्होंने एक बडा समारोह किया और उसमे अपनेसे बड़े जर्मन अधिकारियोंको निमत्रित

किया। उस महिलाका भाषण ही उस समारोहका मुख्य कार्यक्रम था।

समारोहमें पूरा गॉव उपस्थित था। वह महिला भाषण देनेके लिये खड़ी हुई। उसे पढ़ानेवाले जर्मन अधिकारियोकी ऑखे आनदसे चमकने लगीं।

परंतु उस महिलाके मुॅहसे जो शब्द निकले, वे जर्मन शब्द न थे, वे रूसी शब्द थे। अपनी मातृभाषामें वह अपने गॉववालोंसे कह रही थी– 'रूस हमारी मातृभूमि है। चाहे प्राण चले जायें पर हमें उससे बेईमानी न करनी चाहिए। आज हम भले ही हार गये हैं, पर कल हमारी जीत निश्चित है।'

उस वीर महिलाने दॉव उल्टा दिया। मियॉकी जूती मियॉके ही सिरपर मार दी। परंतु इस देशभक्तिके लिये उसे एकदम जर्मनोकी गोलीका शिकार होकर अपनी जानसे हाथ धो बैठना पड़ा।'

मै एकदम ठिठक गया। मुझे लगा बाल-मनका विचार न कर मै मंदासे कुछ का कुछ कह चला।

जीवनमें जितना सौन्दर्य होता है उतना ही सामर्थ्य भी होता है, यह विचार निरतर मनमे घुलते रहनेके कारण ही मुझे इस कहानीको सुनानेकी इच्छा हुई होगी।

मैंने मन्दाकी ओर देखा। उसने सारी कहानी बड़ी आतुरतासे सुनी थी। इस कल्पनासे कि मैं और कुछ कहूॅगा, वह बिलकुल चुप बैठी हुई थी।

मैंने कहा, – 'कहानी पूरी हो गयी।'

फिर भी वह न उठती थी।

उसे चिढ़ानेके लिये मैंने कहा–'जा, तेरी गुड़ियाके विवाहका मुहूरत टल जायगा न?'

'मुझे गुड़िया नहीं चाहिए।'–हाथमे रखी गुड़ियाको दूर फेकती हुई वह बोली।

'फिर क्या चाहिए?'

'बंदूक!'

और मेरे उत्तरकी प्रतीक्षा न कर कोनेमें रखी मेरी छड़ीको अपने कॅधेपर रखकर 'लेफ्ट-राइट' करती हुई वह कमरेके बाहर चल दी।

●●●

६

खिड़की

'छिः!' अनजाने मेरे मुँहसे उद्‌गार निकल गया। कल्पनातक न हो और बन्दूककी गोली कानके पाससे 'सूँ' करती निकल जाये, उस तरह उस घरमालिककी स्थिति हो गयी! वह मेरी ओर देखता ही रहा।

जब घर देखने आया, तब द्वारपर ही मैंने उससे कह दिया था, – 'विवाह करना और घर बनाना, ये दोनो काम खुद करके ही देखना चाहिये' – यह कहावत अब बहुत पुरानी हो गयी है। अब तो विवाह करनेकी अपेक्षा गृहस्थी करना ही सौ गुना कठिन हो गया है!'

'और घर बनानेकी अपेक्षा?' उसने बड़ी उत्सुकतासे प्रश्न किया था।

'मनके लायक़ घर खोज निकालना। किरायेके घरोको देखते देखते मैं इतना उकता गया हूँ कि मुझे लगने लगा है कि इस झंझटसे तो बिना किरायेके मकानमे जाकर रहना ही अच्छा है!'

यह तो मेरी किस्मत थी कि उपर्युक्त घर-मालिक किसी समाचार-पत्रका सँवाददाता न था। वरना दूसरे ही दिन यह समाचार छप जाता कि 'मैं सत्याग्रह करके जेल जानेवाला हूँ!'

हँसते हँसते उसने मुझे घर दिखाना शुरू किया। पहला और दूसरा तला

देखकर तो मै बिलकुल खुश हो गया। काफी जगह, विपुल प्रकाश, दीवारोपर दिया गया फीका नीला रग—मै जैसा चाहता था उसी तरहका मकान था वह। सिर्फ एक ही बातकी कमी थी। मुझे लिखने-पढनेके लिये एक शान्त कमरा कही भी नहीं दीखता था।

जब घर-मालिकने मुझसे कहा कि तीसरे तलेपर ऐसा एक कमरा जान बूझकर बनाया गया है, तब मेरे हर्षकी सीमा न रही। मै दौड़ता हुआ ही जीना चढ गया।

कमरा वास्तवमे बडा सुंदर था। प्रथम दर्शनमे वह मुझे ऐसा लगा जैसे किसी ॲगूठीमे एक छोटा-सा हीरा जड़ा हो।

फिर कुशल दृष्टिसे मैंने उसके अन्तरगका निरीक्षण किया और तुरत ही मेरे मुँहसे उद्‌गार निकल गया—'छि.!'

मेरी और टकटकी लगाकर देखनेवाले उस घर-मालिकके लिये इस एकाक्षरी उद्‌गारपर भाष्य करना आवश्यक था, इसलिये मैंने कहा,—'वैसे कमरा तो अच्छा है, साहब! पर—'

'पर क्या?'

'इसमे एक ही छोटी खिड़की है और वह भी सडककी तरफ नहीं है।'

'इस सडकपर भयंकर यातायात रहती है। इसलिये जान बूझकर ही मैंने इस तरफ खिड़की नहीं रखी।'

मैंने मनमें कहा,—'कैसा अरसिक आदमी है यह! खिड़कीमें कितना काव्य होता है इसका बेचारेने कभी भी अनुभव न किया होगा। खिडकी याने मूर्ति-मान सौन्दर्य—खिड़की याने मूर्तिमान जीवन—खिड़की याने ॲधेरी कोठरीके कैदीके लिये आनदकी किरण दिखानेवाली देवी!

रेलगाड़ीमें सवार होते ही छोटे बच्चे एकदम खिड़कीके पास दौड़ पड़ते हैं, सो क्या यों ही? व्याख्यानके लिये आये हुए लोगोमें खिड़कीके पास बैठा हुआ श्रोता बहुत कम उकताता है, यह अनुभव किसे नहीं है?

शालामे पढते समय मुझे हमेशा ऐसा लगता कि मेरा पहला नबर रहे। उसका मुख्य कारण यही होना चाहिए कि पहले नंबरकी जगहके पास एक बडी खिड़की थी। जब जब मेरा नबर नीचे खिसकता, तब तब मुझे बड़ा दुख होता। सारे साथी कहा करते,—'तुम बड़े कोमल मनवाले हो, भई! इस महीनेमे यदि

तुम्हारा नंबर नीचे आ गया, तो दूसरे महीनेमें फिर ऊपर चला जायगा। इसमें इतना रंज करनेकी क्या बात है?' मुझे नंबर जानेका दुख न होकर खिडकीके पासकी जगह निकल जानेके कारण दुख हो रहा है, इसपर किसी तरह उनका विश्वास ही नहीं होता था। सबको यही लगता कि अपमान छिपानेके लिये मैं एक बहाना कर रहा हूँ।

जिसका घर मैं देखने आया था, वह घर-मालिक भी मेरी शालाके साथियोंका ही अवतार था। अन्य सब बातें पसंद होते हुए भी खुद अपने बैठकके कमरेमें खिडकी नहीं है, सिर्फ इसीलिये घर न लेनेवाला मनुष्य पागल ही होना चाहिए—यह अभिप्राय उसकी मुद्रापर स्पष्ट रूपसे अंकित था।

कमरेसे बाहर निकलते वक्त मैंने उससे कह दिया कि 'यह घर मुझे नहीं चाहिए।'

मेरा नकार सुनकर उसे विलक्षण आश्चर्य हुआ। इससे कुछ समय पहले मैं जो घर देख आया था, उसकी अपेक्षा उसने अपने घरका चार रुपया कम किराया बताया था। परंतु—

उसका यह विश्वास हो गया होगा कि लेखक केवल सनकी ही नहीं होते, किन्तु थोड़े-बहुत पागल भी होते हैं!

मुझे लगता है कि मेरा यह खिड़कीका पागलपन किरायेके चार रुपये बचानेवाली व्यावहारिक बुद्धिमानीकी अपेक्षा अधिक सुंदर और जीवन-संवर्धक है। खिड़कियोंवाले कमरेमें आँखोंको दीखनेवाला प्रकाश तो आता ही है, परन्तु हमारे मनके भीतरका अँधकार भी अनायास मिटता जाता है। खिड़कियोंमेंसे शरीरको सुखदायक लगनेवाली हवा ही आती हो यह बात नहीं है। कुम्हलाये हुए मनको प्रफुल्लित करनेवाली जीवन लहरें भी उन्हींके द्वारा आकर भीतरतक पहुँचती हैं।

घंटों निश्चित स्थानको न छोड़कर काम करनेवाला मनुष्य एक प्रकारका कैदी ही होता है। वह बारबार उकता जाता है। कितनी ही बार वह अपने निश्चित साँचेमें ढले जीवनसे ऊब उठता है। ऐसे समय उसे यदि किसी खिड़कीके नजदीक जानेका अवसर मिल जाय, तो शीघ्र ही उसके मनमें नये कोंपल निकलने लगते हैं। खिड़कीमेंसे अनंत आकाश उसे अपनी ओर बुलाता है। नीली-सी हँस रहीं टेकड़ियाँ अपना मूक संदेश उसे सुनाती हैं। वर्षाकालके द्वारा धरतीपर हो रहे अभिषेकको देखकर उसका मन प्रसन्न होता है। उस अभिषेकके समय वृक्षोंके

पेंवर झुलानेवाले दृश्यको देखते ही वह भी उनकी तरह झूमने लगता है। जाड़ेके दिनोंमे किसी शनिवारको बाहर कुहरा फैला हुआ देखकर उसे भ्रम होता है जैसे प्रकृति उसे ऑखमिचौनी खेलनेके लिये बुला रही है।

खिड़कीसे दीखनेवाले निर्जीव निसर्गसे एकरस होते ही मनुष्यकी जीवन-शक्ति-के सागरमे ज्वारकी लहरें आने लगती हैं। फिर खिड़कीके पास खड़े रहने पर क्षण-क्षणमें मानवताका जो सुंदर और सजीव दर्शन होता है, उसके कारण मनुष्य यदि अपना दुख भूल जाता हो, तो आश्चर्य ही क्या है?

मैंने यह अनुभव अनेक बार किया है कि खिड़कीके पास खड़े रहना मनकी उदासीनताकी रामबाण औषधि है। दो-पहरको खिडकीमेंसे सड़ककी ओर नजर दौड़ायें तो जीवन-संघर्षकी तीव्रता तुरत मनको जॅच जाती है। बाहरकी चिल-चिलाती धूपमे कोई श्रमिक पत्थर फोड़ता हुआ दिखायी देता है। छोटे बच्चेको सम्पूर्ण रूपसे ढॉक सके इतनी भी जिसकी लंबाई और चौड़ाई नहीं होती, ऐसी साड़ीका टुकड़ा पहने हुए भिखारिन घर घर रोटीके एक टुकड़ेके लिये चिल्लाती हुई दिखायी पड़ती है। और फिर स्वय अपनी मामूली कठिनाइयोको हौआ समझ कर दुखी होनेवाले अपने मनपर स्वयं हमें ही शर्म आने लगती है।

सायकालके समय खिड़कीमेंसे यातायातवाली सड़ककी ओर देखिये, तो 'शाला छूटी, स्लेट टूटी' वाला अक्षर-साहित्यका अभिजात शिशु-गीत जोर ज़ोरसे चिल्लाते हुए घरकी ओर दौड़े जा रहे छोटे-छोटे बच्चे हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेते हैं, फूटबॉल अथवा क्रिकेटके खेलकी सामग्री हाथमें लिये हुए तावके साथ बातें करते जा रहे चौदह-पन्द्रह सालके लड़के हमें उल्लसित करते हैं, बन-ठनकर बुलावेमें जा रहीं स्त्रियोंके भी हमें बीच-बीचमें दर्शन हो जाते हैं और देवालयको जा रही वृद्धाओंके साथ चल रहे उनके नाती-पोतियोंको सम्हालनेमें उनकी परेशानी देखकर तो हमारे मनमे वात्सल्य और हास्य-दोनों रसोंका विल-क्षण मधुर संगम हो जाता है। अपने कमरेके ओर अपने वैयक्तिक जीवनके संचित पानीमें खिड़कीके ज़रिये भीतर आनेवाली जीवन-सागरकी लहरें बातकी बातमें नये चैतन्यका निर्माण कर देती हैं।

और इसीलिये जिस कमरेमें विपुल खिड़कियाँ नहीं होतीं, वह फिर कितना भी सुंदर क्यों न हो, कम-से-कम मुझे तो पसंद नहीं आता। हम यह कभी नहीं देखते कि हमारे मित्रका नाक-नक्शा सुडौल है या नहीं। परंतु जिसके होंठ

हँसनेके लिये कभी नहीं खुलते और जिसके हास्यसे अंतरंगकी मधुर भावनाओंका दर्शन कभी नहीं होता, ऐसे मनुष्यसे क्या कोई भी मित्रता करेगा? बिना खिड़कियोंवाला कमरा मुझे इस प्रकारके रूखे और भावना-शून्य मनुष्यकी तरह ही लगता है।

यह सिद्ध करनेके लिये कि दुनिया तरक्की कर रही है आजकलके बहुतसे विद्वान बडे बड़े प्रमाण पेश करते हैं, तब मुझे हँसी आती है। मैं मनमें कहता हूं - 'कौन बेटा कहता है कि यह असत्य है!' इस एक ही बातसे कि लोग पहलेकी अपेक्षा घरोंमें अधिक खिड़कियाँ रखने लगे हैं, इस सिद्धान्तकी सत्यता किसीको भी जँच जायगी।

● ● ●

७

गुप्त कागज़

मेरी लाइब्रेरीके कोनेमें रखी वह छोटी अलमारी—उसे अलमारी कहूँ या कोई दूसरा नाम दूँ, यह मेरे सामने एक विकट प्रश्न है। कई बरसोंसे वह मेरी ओर भाव-शून्य दृष्टिसे देखती आयी है। मैं पहले अपने गुप्त कागज उसके खनोंमें रखता था, इसीलिये उसे अलमारी कहना चाहिए। वरना उसकी कारीगरी कबूतरखानेसे कोई अधिक ऊँचे दर्जेकी नहीं है। जिससे मैंने यह छोटी अलमारी खरीदी थी, उसने इसी बातके लिये उसकी सिफारिश की थी। और उसके तालेका वर्णन करते समय तो वह शख्स बिल्कुल रंगमें आ गया था! कितने दूरका समय लगता है वह अब! मैं हालहींमें लन्दन आया था। साहित्य-क्षेत्रमें विलक्षण सनसनी मचा देनेकी—टेम्स नदीमें आग लगा देनेकी—कल्पनाएँ मेरे मनमें अहोरात्र स्फुरित हो रही थी।

उस समय ऐसी मनःस्थितिमें ही मैंने यह अलमारी खरीदी थी।

परंतु शीघ्र ही मैं उसकी ताली गुमा बैठा। एक बटनके आकड़ेसे मैंने उस तालेको खोलनेके एक दो अधूरे प्रयत्न किये। परंतु उसकी अलौकिक शक्तिके बारेमें उसके मालिकने जो साक्षी दी थी, उसमें तिलमात्र भी अतिशयोक्ति न थी। जब मुझे यह अनुभव हुआ तब यह कहकर मुझे अपने मनको संतोष देना

पडा कि यह अलमारी मेरे उपयोगकी चीज नहीं है, बल्कि शोभाकी वस्तु है। घर बदलते समय हर बार शोभाकी वस्तुकी हैसियतसे ही मै उसे नये घरमे प्रतिष्ठित किया करता था। परतु सौदर्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो इसमे आकर्षक कुछ भी नही है, इस बातको खुद मै भी महसूस करता था। मेरे अनेक मित्रोने उसे हमेशाके लिये छुट्टी दे देनेकी मुझे बार बार सलाह दी। परतु हर बार मैने उस सलाहको सिर्फ एक ही महत्त्वपूर्ण कारणसे साभार अस्वीकार कर दिया। वह कारण यह था कि उसमे मेरे पुराने और महत्त्वपूर्ण कागजात रखे हुए थे। मै हमेशा कहा करता,—'कभी भी मै एक लुहारको बुलाकर, इस अल्मारीको खुलवाऊँगा और फिर — फिर क्या? हाथ कगनको आरसीकी क्या जरूरत? आपको क्या क्या देखनेको मिलेगा, वह फिर दीख ही जायेगा!'

लडाई शुरू होतेतक मुझे लुहारको बुलानेका अवकाश ही न मिला। आगे मै लड़ाईपर चल दिया।

लड़ाई बद होनेपर मै घर वापस आया। लाइब्रेरीमे मैने बडी उत्सुकतासे कदम रखा। मै अपनी मेजके पास जाकर बैठ गया। मै मनमे कह रहा था,—लेखककी हैसियतसे सारे लन्दन शहरमे खलबली मचा देनेका—टेम्समे आग लगा देनेका—समय अभी भी कोई निकल नहीं गया है! किसी विषयपर एक सनसनीखेज लेख लिख दिया कि—अरे! ऐसा सनसनीखेज लेख किस विषयपर लिखूँ, यह पहली जरूर किसी भी तरह मुझसे हल नहीं होती थी। एकदम कोनेमे रखी अल्मारीकी ओर मेरी दृष्टि गयी। मै उठकर उसके पास गया और उसके खनोको खोलनेकी कोशिश करने लगा। अब कहीं मेरे ध्यानमे आया कि उसमे ताला लगा है। उस बन्द अलमारीपर मुझे बड़ा क्रोध आया। उसके खनोको खोलनेका मेरा प्रयत्न जैसे जैसे निष्फल होने लगा, वैसे वैसे मेरे क्रोधका पारा ऊपर चढ़ने लगा, अन्तमे वह इतना चढा कि मैने बड़े तावके साथ उस अलमारीसे कहा,—'अगर तू इसी तरह मग़रूर बनी रही तो पिस्तौलसे गोली चलाकर तेरी जान ले लूँगा!' (नायिकाको खल-नायक जिस जगह कैद करके रखता है, उस जगह ऐन मौकेपर प्रवेश करते समय, नाटकका नायक इसी लहजेसे बोला करता है। मुझे बचपनसे इस नायकसे बड़ी ईर्षा रही है।)

परतु उस अलमारीको शरणमे लानेके लिये मुझे अपने पिस्तौलको काममे लानेकी आवश्यकता ही न पड़ी! थोडीसी उछल-कूद करनेके बाद, लोहेकी

छड़के आगे उस तालेने हार मान ली। सत्रह बरसोंके बाद मेरे गुप्त कागज पुनः मुझे दिखायी दिये। मैंने एक बुभुक्षितकी तरह उन्हे कितनी बार उलट-पुलटकर देखा होगा, पाठक इसकी आसानीसे कल्पना कर सकते हैं।

सत्रह वर्ष पहले मुझे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लगनेवाले सटर-पटर कागजोंका यह सग्रह एक अजायब-घर ही था। उनमे एक नृत्यके कार्य क्रमका कागज था। उसपर जो नाम दीख रहे थे, उन्होंने किसी समय मेरे मनकी कितनी ही मधुर कल्पनाओंको जगाया होगा! परतु उन सब नामोंको पढकर अब मेरे अन्तःकरणको किसी भी सुखद सवेदनाका क्षण-भर भी बोध न हुआ। उन कागजोंमेसे मैंने एक दूसरा टुकड़ा उठाया। वह केम्ब्रिजके एक दरजीके बिलकी रसीद थी। शायद केम्ब्रिजका वह मेरा अन्तिम बिल रहा होगा, और मुझे स्मरण रहे कि मै ऋण-मुक्त हो गया हूँ, कदाचित् इसीलिये मैंने उसे इतना सुरक्षित रखा होगा।

इन कागजोंमे कहानियोंकी प्रतियोगिताका एक विज्ञापन था। उसमे यह स्पष्ट लिखा था कि कहानी पॉच हजार शब्दोंसे बडी न होनी चाहिए। दूसरा एक विज्ञापन छोटे शब्द-चित्रोंकी प्रतियोगिताका था। शब्द-चित्र बारह सौ शब्दोंसे बड़े न हो, यह धोखेकी सूचना इस विज्ञापनमे भी थी। इन दो विज्ञापनोंसे यह स्पष्ट हो रहा था कि उस समय अपने प्रिय पाठकोंके लिये कुछ भी लिखनेको मै तैयार था। मुझे अपने ऐतिहासिक कागजोंमे इन विज्ञापनोंके पास ही एक प्रसिद्ध व्यक्तिका ऑटोग्राफ मिला। एक पोस्ट-कार्डपर—'मै आपका अत्यन्त आभारी हूँ।'—शब्दोंके नीचे उस व्यक्तिके हस्ताक्षर दीख रहे थे। शायद मैंने उसे किसी समय 'आपकी सुंदर भाषाशैलीका मैं एक नम्र भक्त हूँ'—लिखकर भेजा होगा। उस समय उसे मैंने जो पत्र भेजा था उसमे शायद यह भी लिख दिया हो कि—'मै आपको अपना साहित्यगुरु मानता हूँ'। अथवा यह भी हो सकता है कि उस वक्त उसकी कोई नयी पुस्तक प्रकाशित हुई हो और उसकी एक प्रति मैंने खरीद ली हो! या—मैने उसे क्या लिखा था, सो भगवान ही जाने! उसने उत्तरमें मुझे आभार प्रदर्शक पत्र भेजा था इसमे संदेह नहीं।

इन गुप्त कागजोंमे अनेक सम्पादकोंके पत्र थे, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। इन सम्पादकोंमेके कई मेरे अब मित्र हो गये हैं। परतु उस प्राचीन कालमे वे मुझे 'प्रिय' लिखकर भी संबोधित नहीं करते थे! वे मुझे सिर्फ़ 'नमस्ते' ही किया करते थे। उनके विविध पत्रोंमे एक ही प्रकारका मजमून रहा करता था।

वे हमेशा लिखा करते, – 'हमे खेद है, कि आपके द्वारा भेजे गये लेखका उपयोग करनेमे हम असमर्थ हैं। पर चूँकि लेख लौटा दिया गया है। इसलिये आपको निराश नहीं होना चाहिए। आप लिखनेका उत्साह न छोडें!'

मैने वह बिलकुल न छोड़ा। पत्रके अन्तमे 'आपका' लिखकर मुझे लगन-के साथ लिखते रहनेका उपदेश करनेवाले इन सब लोगोंकी सलाहका मैने बिलकुल अनादर नहीं किया और शायद इसी वजहसे अन्तमे उनके मनमे मेरे प्रति सचमुच अपनत्वका भाव उत्पन्न हो गया। कितने भिन्न भिन्न स्थानोसे और दूर दूरके शहरोसे मेरे सग्रहके ये पत्र आये थे! एक बड़े सम्पादकने 'सप्रेम नमस्कार' सिरनामा लिखकर एक पत्र भेजा था जिसे जीवनकी अमूल्य धरोहरकी तरह मैने तुरन्त ही इस अल्मारीमे पूरे प्रबन्धके साथ रख दिया था! और कल ही उस बडे सम्पादककी पीठपर धौल मारकर मैने उसके साथ पूरे घंटे-भर गप्पे ठोकी।

अत्यन्त महत्त्वके इन कागजोमें मेरे द्वारा प्रथम ही प्रकाशनके लिये भेजे गये पन्द्रह लेखोकी एक सूची थी। इन पन्द्रहमेसे तीन स्वीकृत हो गये। इन तीनमेसे दो, एक समाचारपत्रमे प्रकाशित हुए ही थे कि उसका दिवाला निकल गया। पन्द्रहवे लेखके लिये मुझे पन्द्रह शिलिंग पारिश्रमिक मिला होगा, ऐसा एक कागजसे मालूम होता है। टेम्स नदीको आग लगा देनेकी महत्त्वाकाक्षा रखनेवाले साहित्यिकको एक लेखके लिये एक शिलिंग पारिश्रमिक — पाठक ही इस अन्याय-का विचार करें!

इन सब लेखोके शीर्षक पढकर जरूर मुझे बिलकुल आश्चर्य न हुआ। एक लेखका नाम, वह लेनेमे भी मुझे थोड़ी शर्म आती है – 'एक लेखककी डायरी' है। साहित्य-क्षेत्रमे कदम रखनेवाला प्रत्येक नया प्राणी इसी तरहका लम्बा चौडा शीर्षक देकर कुछ भी घसीटा करता है! ठीक कहता हूँ न? ऐसा कोई विषय जो सम्पादकके लिये बिलकुल पुराना हो गया हो, फिर भी उसे जरूर वह बिलकुल नया, बिलकुल कोरा लगता रहता है!

लेखकको उत्साहित करनेवाला एक भी अक्षर न लिखकर, मैने सैकड़ो लेख बिना किसी हिचकिचाहटके लौटा दिये हैं। यह तो अच्छा था कि उन्हे लौटाते समय मैं यह बिलकुल भूल गया था कि अपनी साहित्य-सेवा मैंने भी इसी तरह आरभ की थी। और आज इतने बरसोंके बाद इस अलमारीका यह ताला यदि न खुलता, तो मुझे इस यथार्थका ज़िंदगी-भर पता भी न चलता!

अलमारीके कागजोकी छान-बीन करते समय अन्तमे मुझे एक लेख मिला। उन पन्द्रह लेखोमेंसे ही वह एक था। परतु एक सम्पादकसे दूसरे सम्पादकके पास और दूसरेसे तीसरेकी ओर लम्बी सफर करके वह सभवतः थक गया होगा! विश्रान्तिके लिये - यानी पुनः सुधारकर सम्पादकके पास भेजनेके लिये आवश्यक अवकाश प्राप्त होतेतक—मैंने उसे अलग रख दिया होगा। चू चू! उस समय मै सचमुच ही आशावादिताका मूर्तिमान पुतला था। कहते हैं कि यौवन और आशाकी जोडी अभग होती है, यह बिलकुल झूठ नही। सारा लन्दन शहरको अपने लेखोसे चकित कर देनेके—किबहुना अपनी प्रतिभासे टेम्स नदीमे आग लगा देनेके—जो मनसूबे मैंने उस समय बाँधे थे उन्हे अगर किसीका आधार था तो सिर्फ इस जोड़ीका ही!

यह सब सच हो फिर भी सत्रह वर्ष पहले मैं हरएक सम्पादकको तुच्छताकी दृष्टिसे देखा करता था। उस समय मेरा यह निश्चित मत हो गया था कि अपनी पार्टीके बाहरके लेखकको आगे बढनेका वे कभी भी मौका नही देते। उस समय मुझे यह विश्वास हो गया था कि नयी नयी कल्पनाएँ करनेवाले तरुण लेखकोका ये सम्पादक लोग यो ही उत्साह-भंग कर देते हैं। परतु अब, जब सत्रह वर्ष पूर्वके अपने लेखोको देखता हूँ और उन विषयोके सम्पादकोके मतोको पुनः पढता हूँ, तो मुझे सपादकोके प्रति तिरस्कारके बजाय आदर होने लगता है। और रह-रहकर एक बातका आश्चर्य भी होता है। मुझे यह सलाह देनेके योग्य कि मै लिखनेका अभ्यास न छोड़ूँ इन लेखोमे उन्हे क्या मिला, यह वे ही जानें!

यह छोटी अलमारी बहुत पुरानी हो गयी है। लोहेकी छड़से खोलनेके कारण उसका ताला बेकार हो गया है। फिर भी, मै इस अलमारीका साथ, कुछ भी हो, कभी नही छोड़ूँगा। यह सच है कि अब वह गुप्त कागजोको रखनेके कामकी नही रह गयी है। फिर भी वह मेरी लाइब्रेरीमे जहाँ है, वहीं रहनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि इस कोनेमे बैठी हुई वह मेरे अहंकारको रोकनेका काम निरन्तर करती रहेगी।

८

हरा रंग

पत्नीके पीछे पीछे कपडेकी दूकानमे प्रवेश करते समय मै स्वयं अपने आप-पर ही हँस रहा था।

कहते हैं दासबाबूको चटसे ताला खोलते नहीं बनता था। उनका बडप्पन मुझमे न हो, फिर भी छोटी-छोटी बातोमे मै बिलकुल उनकी तरह घबड़ा जाता हूँ। चार घटेमे दस पृष्ठकी कहानी लिखनी हो, तो इसकी मुझे कोई चिन्ता नही होती। परतु किसीके पैरमे चुभे कॉटेको निकालना हो तो जरूर मेरे होश उड़ जाते हैं। लगता है – हम कॉटा निकालने लगे और उस मनुष्यके पैरमे कहीं सूजी ही टूट जाय तो? हॉ, हवन करते हाथ जलनेकी नौबत आ जाय! किसी सभाके सामने घटा-भर अस्खलित भाषण देनेका मुझे जितना भय नहीं लगता, उतना स्टोवपर चाय बनानेका लगता है। जहाँ स्टोवके पास बैठा कि पिछले साल बंबईके अखबारोंमे हररोज़ आनेवाली दुर्घटनाओके समाचार, साड़ी पहननेवाली गुजराती स्त्रियॉ, कॉरोनर आठवलेसाहबके फैसले आदि बाते ऑखोंके सामने खडी हो जाती हैं। और फिर पिन करते समय और पम्प मारते वक्त मुझे ऐसा भ्रम होने लगता है जैसे हम अक्षरशः आगके साथ खेल रहे हैं।

व्यवहारकी बिलकुल मामूली बातोंमें जो इस तरह गड़बड़ा जाता है, उसकी

अक्ल कपडेकी दूकानमे कहॉतक चलेगी? असली और नकली जरीका अन्तर पहचाननेके लिये कोई एक हजार रुपयेका इनाम रखे फिर भी वह मुझे इस जन्ममे न मिलेगा, यह मै विश्वासपूर्वक कहता हूॅ। कपडेकी दूकानमे मेरे मनके घबड़ा जानेका और भी एक कारण है। किसी सुंदर बागमे जाकर वहॉका सिर्फ एक ही फूल तोड़नेके लिये कहा जाय तो मनुष्यका कितना विरस हो जायगा, कपडेकी दूकानमे मेरी ठीक वही दशा हो जाती है। इतनी अड़चनोंके बाद एकाध सुदर वस्त्र चुन भी लिया तो उसपर जो व्यापारी ऑकडा लिखा रहता है, उसे देखते ही—

मुझे ऐसे समय एक ही बात सूझती है। अपने प्रिय लेखोंमे बडे बडे तत्त्वोको विषद करके बतानेवाले लेखकोके पोले अन्तरगोका पता जिस तरह श्रद्धालु पाठकोको नही लगता, उसी तरह व्यापारी ऑकडोकी सच्ची कीमत ब्रह्माजीको भी मालूम होना सभव नही है।

इन सब विचारोके बावजूद मै पत्नीके साथ गया। इसका एक ही कारण था। वह था उसका हठ। हाइ कोर्टके फैसलेपर कम-से-कम सुप्रीम कोर्टमे अपील की जा सकती है। पर पत्नीके फैसलेपर ?. . नही – अब्रह्मण्यम्!

उसकी इच्छा थीकि जो साड़ी वह खरीदना चाहती थी, उसीको मै पसद करूॅ।

यह कहकर कि साड़ियॉ और आइनस्टाइनके सापेक्षताके सिद्धान्त इन दोनो विषयोमे मुझे एक-सा ही ज्ञान है, मै उसके साथ बाजार जाना टालने लगा। तब वह बोली, – 'परसो आपकी कमीजके लिये कपड़ा मैने पसद किया था। इसलिये आजकी मेरी साडी आप ही —'

मै चुपचाप बाजार जानेके लिये तैयार हो गया। मै जान गया कि यह प्रश्न बुद्धिका नही, भावनाका है। सुखी गृहस्थीका रहस्य यही है कि पति पत्नीकी ऑखोसे देखे और पत्नी पतिकी ऑखोंसे निरीक्षण करे। इसे कौन अस्वीकार करेगा? उसके साथ साडी खरीदने जाते समय निरतर मेरे मनमे आ रहा था— हमारे समाजके विवाहोमे एक पुरानी प्रथा है कि पति अपने हाथसे पत्नीको और पत्नी अपने हाथसे पतिको एक-दो कौर खिलायें। क्या, उसमे भी इसी प्रकारका कोई गहरा अर्थ होगा? दोनो दो भिन्न भिन्न थालियोंमें खायें, यह बात अलग है, और एक-दूसरा एक दूसरेको अपने हाथसे खिलायें, यह बात दूसरी है। पहला व्यवहार है और दूसरा काव्य है। और जिसे हम सुख सुख कहते हैं उसका सच्चा स्वरूप एक ही है — काव्य-दृष्टिसे जगकी ओर देखनेकी शक्ति।

कपड़ेकी दूकानमे मेरी पत्नीके आसपास विविध रगोकी, भिन्न भिन्न किनारियोकी सुदर सुदर साड़ियॉ आकर गिरने लगी । उनकी ओर देखते देखते मेरे मनमें आया – काश मैं चित्रकार होता, तो इस दृश्यको देखकर 'सध्या-देवी' नामक एक चित्र अवश्य ही बना डालता ।

मै सुनने लगा । मेरी 'सध्या-देवी' काव्यको ताकमें रखकर दूकानदारसे पूछ रही थी, –'यह अच्छी लंबी-चौड़ी है न?', 'और इसका रग?', 'कहीं ऐसा न हो एक-दो बार धोनेसे ही उड़ जाय!', 'इसके क्या दाम है?', 'वाजवी बताइएगा!'

साडियोको बारीकीसे देखनेमे वह इतनी खो गयी थी कुछ न पूछिये । यह देखकर मुझे एक विचित्र कल्पना सूझी – द्रौपदी वस्त्र-हरण महाभारतका बडा करुण प्रसग माना जाता है । परतु सूक्ष्म दृष्टिसे देखे तो वह वैसा नहीं है । कृष्ण द्वारा दिये गये विविध वस्त्रोंकी राशियाँ जब आसपास दीखने लगी होगी, तब द्रौपदी भी अपना दुख भूल गयी होगी । कदाचित् उन राशियोका एकाध सालू हाथमे लेकर उसने दुःशासनसे पूछा भी हो –'इसके क्या दाम हैं?' और फिर —

पत्नीके प्रश्नसे मैं अपनी इस विचित्र तद्रासे जागा । वह कह रही थी, – 'इनमेसे कौनसी लूँ?' उसने एक आसमानी और एक गुलाबी रगकी दो सुंदर साडियॉ चुन ली थीं ।

परतु मेरी नजर दूसरी तरफ पड़ी हुई एक हरी साड़ीकी ओर गयी । मैने कहा, –'वह हरी ही ले लो न?'

'हुत! परसाल इसी रगकी तो ले चुकी हूँ एक ।'

मै कह गया, –'मनुष्य हरे रगसे कभी नहीं ऊबता ।'

मै अपने स्थानमे उठा और उस हरे रगकी साड़ीको हाथमे लेकर देखने लगा। मुझे भ्रम हुआ कि उस सुंदर रगमें ससारकी सारी आशाऍ एकत्रित हो गयी हैं सारे हास्य हाथमें हाथ डाले नाच रहे हैं ।

पत्नीका विरस न हो इसलिये उसकी पसदकी आसमानी रगकी साडी भी खरीद लेनेके लिये मैने उससे कहा । घर लौटते समय मैने धीरेसे कहा, – 'आज मुझे पता चला कि स्त्रियॉ अपने पतियोंको कपड़ेकी दूकानमे अपने साथ क्यों ले जाती हैं? अनायास एकके बदले दो साड़ियॉ उन्हें मिल जाती हैं । एक पतिकी पसंदकी और एक स्वय उनकी पसदकी ।'

'पर हरा रग ही आपको क्यो इतना पसद है?'

उसके इस प्रश्नका मैने कोई उत्तर न दिया। मन-ही-मन जो बात जॅच जाती है, उसकी चर्चा क्या कोई रास्तेमे करता है?

यह बात नही कि आसमानका फीका नीला रंग मुझे पसद नही है। उसे देखता हूॅ तो यूरोपियन बालकोकी नीली-सी ऑखोका मुझे स्मरण हो आता है। क्षितिज-के निकट समुद्रकी काली-सी तरगोपर टिके हुए आकाशकी नीलिमाको देखता हूॅ तो मुझे यह कल्पना होती है कि उन बालकोंकी ऑखोमे यदि काजल लगा दिया जाय तो वे कितनी मोहक दिखेगी? परतु इसके बावजूद नीले रगका विलक्षण आकर्षण मुझे कभी भी नहीं लगता।

सूर्यसे लेकर खादीतक किसी भी पदार्थकी ओर देखे, तो हमे आसानीसे मालूम हो सकता है कि सफेद रगका पवित्रताके साथ कितना निकट सबध है। सबेरे जब दिशाएँ प्रकाशित होने लगती हैं, उस समय निश्चेष्ट पड़े हुए मनुष्य-को धीरे धीरे होशमे आनेका जो सुदर आभास होता है, उसका आनद भी मैंने अनेक बार लूटा है। परतु यह सब होते हुए भी सफेद रगके प्रति किसी भी तरह मेरे मनमे विशेष प्रेम नही जागता।

लाल रग देखता हूॅ, तो ऐसे अनेक महात्माओंकी मूर्त्तियॉ मेरी ऑखोके सामने खडी हो जाती है जिन्होने स्वदेशके लिये समरभूमिमे अपना रक्त बहाया है अथवा समाजके लिये अपने स्वार्थ और सुखको हॅसते हॅसते आग लगा दी है। पीला रग अपने बडप्पनको यद्यपि इस पद्धतिसे सिद्ध न कर सके, फिर भी सिर्फ़ यही एक बात कि वह स्वर्णका रग है उसकी वर्तमान लोकप्रियताको दर्शानेके लिये पर्याप्त है।

यह देखनेके लिये कि काले रगमे कितना गूढ और मोहक काव्य भरा हुआ है, मै अमावसकी रातको टेकडीपर अकेला ही जाकर बैठा हूॅ। कोई पतंग जिस तरह उडती हुई ऊॅची जाकर अदृश्य-सी हो जावे, उस प्रकार उस उदास रम्य वातावरणमे मै स्वय अपनेसे कितनी दूर चला गया था, इसकी याद मै अभी-तक नहीं भूला हूॅ। परतु इसके बावजूद मुझे यह जरूर कभी न लगा कि काला रग मेरा प्रिय रग है।

हरा रग यदि सर्वश्रेष्ठ न होता, तो घर-घरमे क्या तोतोके पिजडे लटकते हुए दिखायी देते?

हमारे घरके पिछवाड़े एक छोटे घरके छोटेसे ऑगनमें केलेके पेड़ लगाये गये हैं। उद्दण्ड हवा उन केलेके पत्तोकी धज्जियॉ कर देती है। उनकी इतनी दुर्दशा हो गयी है कि ऐसा फलक भी पेडोपर नहीं मिलेगा जो छोटे बच्चेके भोजनके लिये पत्तलके रूपमे उपयोगी हो सके। फिर भी उन पेड़ोको उखाड़ कर फेक देनेकी घर-मालिकको इच्छा नहीं होती। मुझे लगता है कि उसका कारण एक ही है. उन पत्तोका सौम्य सुदर हरा रग।

हरा रग जीवनका रग है। यह बात जिन्हे असत्य लगती हो उन्हे अपने समाजकी एक रूढिपर अवश्य ध्यान देना चाहिए। पहलौटीको सातवे महीनेमे जो प्रीति-भोज दिया जाता है उस समय भावी माताको हरे रगकी साडी पहनाते हैं, हरे रगकी चोली पहनाते हैं और उसे जो चूडियॉ पहनाई जाती हैं वे भी हरे रगकी ही होती हैं।

परतु पुरानी प्रथाओपर जिनकी श्रद्धा नहीं है उन्हें यह कैसे जॅचाया जाय? उनसे मै एक ही बिनती करता हूॅ– कृपा कर मेरे घर आइयेगा। मेरे घरके पिछवाडे ही बगीचेका मैदान है। गरमीके दिनोमे इस मैदानमे लडके बहुतसे खेल खेलते रहते हैं। जिस समय वहॉ लडके नही होते उस समय तो उस मैदानकी ओर देखातक नही जाता। जहॉ तहॉ मिट्टी ही मिट्टी दिखायी देती है और ऑधी चली कि निरतर धूलके गुब्बारे उठते रहते हैं। परतु ग्रीष्म-के इस शून्य मैदानकी ओर झॉककर भी न देखनेवाला मै अब उसके निर्जन होते हुए भी घटो उसकी ओर देखता हुआ खडा रहता हूॅ। 'मैदान' यह शब्द भी उसके विपयमे अब अजीब-सा लगता है मुझे। कम-से-कम 'पन्ने' का मैदान कहूॅगा मै उसे। कही भी देखिये– हरियाली ही हरियाली फैली हुई नजर आयेगी। जैसे वर्षादेवीके नृत्यके लिये धरणीने सुरक्षित रखा हुआ अपना गलीचा ही फैला दिया है!

सादी हरियाली है यह। उसमे लताकी तरह फूल नहीं आते अथवा पेडोकी तरह फल नहीं लगते। परतु इस हरे रगके बित्ता-भर गहरे समुद्रको देखनेसे मन कैसा प्रसन्न हो जाता है! नीदके बाद शरीरको जैसा उल्लास मालूम होता है, उस तरह इस हरियालीकी ओर देखते रहें तो हृदय उल्लसित होता है। किसीको बीज बोनेकी जरूरत नही, किसीको उसे जोतनेकी जरूरत नही, यह भी आवश्यक नही कि भूमि उर्वरा हो– किसीकी आवश्यकता नहीं। थोडी-सी कहीं

नमी मिल गयी कि हरियाली जमीनसे अपना सिर ऊपर उठा लेती है। मनुष्यकी उत्कट जीवनेच्छाका इतना सुदर प्रतीक क्या दूसरी जगह कहीं भी मिलेगा ?

और इसीलिये मुझे लगता है—जिस तरह पत्नीके साथ दूकानमें जाकर मैंने उसे हरी साड़ी खरीदनेकी सलाह दी, उस तरह रूसकी क्रान्तिके समय किसी-को लेनिनसे एक प्रार्थना करनी चाहिये थी—'आप अपना झण्डा लाल रगका न रखे, हरे रगका रखे। 'रेड आर्मी'को 'ग्रीन आर्मी' होने दें। क्योकि यद्यपि यह बात सच है कि क्रान्तिको निरुपाय होकर अपने हाथ रगना पड़ते है, फिर भी उसकी ऑखोमे नये जीवनका तेज ही नृत्य करता रहता है। क्रान्ति यह कठोर-कृत्या नहीं, वह ममतामयी माता है।'

●●●

१

विरोध

मन-ही-मन चिढकर ही मै ॲंगीठीको हवा दे रहा था। परतु किसी भी तरह कोयले आग नहीं पकड़ रहे थे। देशमे सर्वत्र आन्दोलनका दावानल फैल जाय, फिर भी रावसाहब, रावबहादुर और उन्हींकी जातिके असख्य लोग अपनी आराम कुर्सियोमे शान्तिसे पड़े रहे – ठीक उसी तरह लगे वे कोयले मुझे!

मै अधिक जोरसे हवा करने लगा। परतु उस हवासे ॲंगीठीके कोयलोके बजाय मन-ही-मन धुॅंधवा रहा मेरा क्रोध अवश्य भड़कने लगा।

कहते हैं शाम होते ही शराबी बेचैन हो जाता है! चायबाजकी सुबह हूबहू वही स्थिति हो जानेपर भी अभीतक कोई उपन्यासकार उसका वर्णन क्यो नहीं करता, यह मेरी समझमे नही आता!

चायकी अतृप्त तलफ मेरी अस्वस्थताका एक कारण तो थी ही। परतु उसमे सूक्ष्म मत्सर भी मिल जानेके कारण आजका मेरा चायका मसला कुछ और ही हो गया था। दूसरे लोग चाय पी चुके थे – उनकी मुद्राओपर ‘चायानद’ झलक रहा था और मै अकेला —

अकेला फूॅंक रहा हूॅं यहॉं —

साथके सब लडके पास हो गये हैं और परीक्षामे अकेला मै ही फेल हो गया हूॅ–इस ख़्यालसे तड़पनेवाले लड़केकी तरह अस्वस्थ हो गया था मै! पहली चाय भूलसे कम पड गयी थी और परोसनेका काम मेरे ही सुपुर्द होनेके कारण शिष्टाचारका पालन करनेके लिये मुझे तृषित रहना पड़ा था। जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी मेरी चाय तैयार हो जाये इसलिये मैने ॲगीठीमे भरपूर कोयले डाले और उन्हे जलाने लगा। पर यही सच है कि ॲगीठी कविकी स्फूर्ति अथवा विवाहकी उम्रमे समाज-सेवाकी इच्छा रखनेवाली विदुषीकी तरह एक सनकी स्त्री है! जिस समय जरूरत हो उस समय जलती नहीं है और जब जरूरत न हो तब ऐसी धधकती है कि—

तूफानमे फॅसे नारियलके डॅठुलकी तरह हाथके पॅखेको चारो ओर हिलाते हुए महायुद्ध शुरू करनेवाले हिटलरको मैने लाखो गालियॉ दी। इस नाजी रावणने यह राक्षसी युद्ध आरभ करनेसे पहले थोडा विचार किया होता, तो आज मिट्टी-का तेल इत्रकी तरह दुर्लभ न होता और मै शानसे स्टोव जलाकर चायकी चुस्कियॉ लेता हुआ किसी हालहीमे सूझी हुई मजेदार कल्पनासे खेल सकता था। परंतु उस नाजी राक्षसने–उस फैसिस्ट दैत्यने–उस—

हिटलरको गालियॉ देनेसे ॲगीठी जल सकती तो हनुमानजीकी मनौती मान-कर यह महायुद्ध भी रोका जा सकता था!

मै चिढकर पॅखेसे ॲगीठीको जोरजोरसे हवा झलने लगा।

इसी समय दो अपरिचित व्यक्तियोने मेरे चायके कमरेमे अचानक प्रवेश किया। उनमे एक ठिगना मनुष्य था–दाढीके कुछ बाल पके हुए, बदनपर कम्बल ओढे हुए और चेहरा गाय-सा। दूसरा खूब ऊॅचा–उसे देखते ही मुझे 'शेख अख्तयार' या 'शेख मुख्तयार' नामक ऊॅचेपूरे अभिनेताकी ही याद आ गयी–अभीतक दाढीके बाल काले, बदनमे बड़ी पहने हुए, परतु शिकारी कुत्तेके चेहरे-का मनुष्य था। चायके दीर्घ विरहसे मै तड़प रहा था–अपने आपपर बिलकुल चिढ गया था। और ऊपरसे ये दोनो मनुष्य नाजी सैनिकोकी तरह किसीकी भी इजाजत न लेकर, सीधे मेरे अन्तःपुरमे घुस पड़े थे! सहज ही मेरे क्रोधका पारा मलेरियाके ज्वरकी तरह चढने लगा। मैने चिड़चिड़े स्वरमे ही उनसे पूछा,–'क्या चाहते हो तुम लोग?'

'हम ऊपर चढेगे।' – घरके छापरकी ओर अँगुली दिखाता हुआ गौकी मुद्रावाला मनुष्य बोला।

मेरे मनमे यह कल्पना आ गयी कि कही ये लोग पागलखानेसे भागे हुए कोई 'लॉरेल-हार्डी' अथवा 'चिमणराव-गुड्याभाऊ' तो नही हैं ?

इसी समय शिकारी कुत्ता गुरगुराया, 'चलिये, उठिये, हम घर छाने आये हैं!'

पिछले महीने-भर 'आलफेन्जो' और 'पायरी' आम खाते हुए भी मेरे ध्यानमे यह न आया था कि घर छानेका समय आ गया है। मै यह भी जानता था कि घरकी छवाई न हुई तो बरसातमे किसी भी कमरेमे अनायास ही 'शॉवर-बाथ' लेनेका सुभीता हो जायगा। परतु घरमालिक पूर्व-सूचना दिये बिना एकदम मजदूरोको भेज दे और ये जबरदस्ती मेरे सिरपर चढनेकी कोशिश करे, यह बात मुझे पसद न आयी।

अभीतक कोयले जले न थे। मैने गुस्सेमे ही उन मजदूरोसे कहा, –'आज तुम्हारा काम शुरू नही हो सकता!'

'क्यो ?' शिकारी कुत्ता गुर्राया।

'सारे सामानको ढॉक कर रखना पड़ेगा कि नही ?' मै कुडबुडाया।

'हॉ, तो ढॉकिये न ?' – कुत्ता भूँका।

'इसके लिये अभी मुझे फुरसत नहीं है। क्या, तुम्हे पहलेसे आकर नही बताना था हमे ?'

'आजकल डेढ रुपया मजदूरी हो गयी है! अब या तो हमे छवाई करने दीजिये वरना आपके तीन रुपये मुफ्त खर्च हो जायेंगे यह सोच लीजिये!'

पूर्व-सूचना न देकर मुझे ही डॉटनेवाले उस मजदूरपर मुझे इतना क्रोध आया कि क्या कहूँ!

उस गॅवार मज़दूरकी तरह मै भी कडे स्वरमें बातें करने लगा। उसके बराबर उद्धतता मैंने भी अपने चेहरे पर ले आया। वह दूसरा गरीब गऊके चेहरेवाला मजदूर अपने साथीको उसकी भूल समझा देनेका प्रयत्न कर रहा है, इस ओर किसी भी तरह मेरा ध्यान ही नही जाता था। अन्तमे वह ग़रीब मजदूर बीचमे पड़कर बोला,– 'साहब, आपका कहना ठीक है। हमे आपसे आकर पहले कह देना था।'

अपना साथी इस तरह पीछे हट जाय यह बात उस शिकारी कुत्तेको कैसे पसद आ सकती थी। वह गुरगुराते हुए कुछ बकने लगा।

परतु उसका साथी उसे हाथसे खीचकर ले जाता हुआ मुझसे बोला,– 'इसका स्वभाव ही ऐसा है, साहब! कल छवाईके लिये हम आयेगे, आप तैयार रहिएगा!'

छवाईके लिये आये उन दोनों मजदूरोके पृष्ठभाग अब मेरी ओर मुड़ गये थे। उनकी ओर देखते मेरे मनमे आया कि मैंने अभी 'शाकुन्तल' नाटकका ही एक दृश्य देखा। है न?

घर छानेके लिये आये हुए उन दो मजदूरोको काला अक्षर भैस बराबर होगा। उन्होंने कभी प्रातःकाल-उठकर उदय हो रहे सूर्यनारायणको अर्घ्य प्रदान न किया होगा और धर्माधर्मका विचार करनेके लिये तो उन्हे जन्म-भरमे कभी फुरसत न मिली होगी – परतु इन दो मजदूरोमें और शकुन्तलाको दुष्यन्तके घर पहुँचानेके लिये कण्वके जो दो शिष्य गये थे उनमे कितना विलक्षण साम्य है?

गटे 'शाकुन्तल' को सिरपर लेकर नाचा। वह इसलिये कि उसमे कालिदासने शकुन्तला सरीखी अव्याज-मनोहर वन-कन्याका स्वभाव-चित्र अत्यन्त हृदयगम रीतिसे खींचा है! रवीन्द्रने कविकुल-गुरुकी पूजा की, वह इसलिये कि उसमे कविने बड़ी कुशलतासे यह चित्रित किया है कि स्त्री-जीवनकी प्रणयिनी, पत्नी और माता, इन तीन सीढ़ियोको तय करते हुए शकुन्तला धीरे-धीरे धीरोदात्त कैसे होती गयी। पर मुझे लगता है कि यदि 'शाकुन्तल' मे गटेको मोहित करनेवाला काव्य और रवीन्द्रको प्राप्त हुआ तत्त्वज्ञान, सिर्फ यही दो बातें होतीं, तो केवल दो प्रकारके लोगोंने ही उसका बार-बार बड़ी प्रशसासे उल्लेख किया होता। एक तो ऐसे तरुणतरुणियोंने जिनकी उम्र अभी नौकरी करनेके योग्य नहीं हुई है, और दूसरे उन वृद्ध सज्जनोने जो पेन्शन लेकर राम-नाम जप रहे हैं।

परतु इन दोनो वर्गोमे न आनेवाले मुझ सरीखे ससारी मनुष्यको घर छानेके लिये आये मजदूरोको देखकर भी 'शाकुन्तल'का सानद स्मरण हो, तो यह कलिदास-की प्रतिभाकी बड़ी विजय है। क्या साहित्य और क्या जीवन – दोनोमें काव्य और तत्त्वज्ञानके साथ साथ जब सच्चा लोकव्यवहार प्रतिबिबित हो, तभी उसमे सर्व-स्पर्शी आकर्षणका सामर्थ्य निर्मित होता है।

विलक्षण कल्पकता प्राप्त होते हुए भी कालिदास लोक-व्यवहारसे भलीभाँति

परिचित है। यही नहीं, बल्कि वह उस व्यवहारकी 'आत्मा' विरोधको कुशलतासे चित्रित भी करता है। इसीलिये हम उसे महाकवि मानते हैं। आश्रमकी भूमि कितनी भी पवित्र हो, फिर भी यौवनके उच्छृंखल चरण वहाँ भी प्रगट हुए बिना नहीं रहते, यह दिग्दर्शित करनेके लिये ही उसने सीदी-साधी अनुसूयाके साथ साथ नटखट प्रियंवदाका निर्माण किया। शकुन्तलाकी चोली तंग हो गयी थी। उसकी शिकायत करके उसकी गाँठको ढीली करनेके लिये वह इस नटखट छोकरीसे कहती है। तब वह जो उत्तर देती है गनीमत है वह काव्य मराठीमें नही है! नही तो कालिदास भी कृष्णराव मराठेकी फटकारसे सही-सलामत न छूटता। प्रियंवदा कहती है, – 'इसमें चोलीका क्या दोष है, सखी? तेरे उरोभागको उन्नत करनेवाले यौवनका दोष है यह!'

तारुण्यकी सीमा-रेखा पर खड़ी हुई प्रियवदाका यह नटखट विनोद जितना गुदगुदी करनेवाला है, उतने ही ससुराल जा रही शकुन्तलाको विदा देते समय, कण्वके उद्गार हृदयस्पर्शी हैं! तपस्या और सयमको छोड़कर अन्य बातोंको देखने-की वन-भूमिको आदत न हो, फिर भी एक ब्रह्मचारी महर्षिकी आँखोसे पितृ-वात्सल्यके कारण बह रहे आँसुओको अपनी अँजलीमे धारण करनेमे, उसे भी कृतार्थता मालूम होती है, यह दिखानेमे कालिदासने कितना चातुर्य प्रकट किया है!

कण्व-शिष्य शार्ङ्गरव और शारद्वतकी जोडीका चित्रण करते समय प्रकट हुआ, उसका स्वभाव-निरीक्षण भी इसी तरह अत्यन्त मार्मिक है। दोनों एक ही गुरुके शिष्य है। एक ही आश्रममे बढे हैं। एक ही दरबारमे गये हुए थे। परतु उन दोनोके स्वभावोमे सूक्ष्म विरोध है ही। एकको राजमहलके सुख-लोलुप लोग सोये हुए-से लगते हैं, तो दूसरेको उस दरबारी भीड़को देखकर भ्रम होता है, जैसे आग लग गयी है, और वह वहाँसे भागना चाहता है। शकुन्तलाको इंगित कर दुष्यन्तके यह कहते ही कि 'यह मेरी पत्नी नही है', एक दुःखसे मूक हो जाता है। परतु दूसरा क्रोधसे उबलकर राजासे उसके मुँहपर बिना झिझकके कह देता है, – 'तुम झूठे हो – महा ठग हो!'

उपन्यास अथवा फिल्मको सुखान्त करनेके लिये कथाके अन्तमे जितने विवाह संभव होते हैं, उतने करा देनेका आधुनिक तंत्र कालिदासको मालूम न था, यही सच है! वरना वह 'शाकुन्तल'का सातवाँ परदा गिराते समय शान्त वृत्तिके शारद्वतका अनुसूयासे और क्रोधी शार्ङ्गरवका प्रियंवदासे विवाह करा देता!

अनुसूया और प्रियवदा अथवा शार्ङ्गरव और शारद्वत्त सरीखे द्वितीय दरजेके पात्रोके स्वभावके सूक्ष्म पर सहज-सुदर विरोधका चित्रण कालिदासकी प्रतिभाकी एक उपेक्षित विशेषता है, इसमे सदेह नही। सन १९१४ मे कॉलेजमे डॉ० गुणेके द्वारा पढ़ाये गये 'शाकुन्तल'से लेकर वी० शान्ताराम द्वारा दिग्दर्शित किये गये 'शकुन्तला' चित्रपटतक किसीने भी इस सूक्ष्म विरोधको विशेष महत्त्व दिया हो, यह मैंने नही देखा। परतु हमारी और आपकी दैनिक गृहस्थी ऐसे विरोधोकी एक माला ही होती है! इन विरोधोको जो चटसे जान सकता है, जिसको उनकी स्वाभाविकता और अपरिहार्यता सहजमे ध्यानमे आ जाती है, वही जीवनमे सुखी हो सकता है। विरोधके बिना निसर्ग नही, विरोधके बिना मानवी जीवन नही।

मेरे ही अनुभवोको देखिये न। मेरे पिताजी – उन्हे मै 'दादा' कहा करता था – जितने भावुक उतने ही क्रोधी थे। मेरे बाल-मनको उनका क्रोध ज्वाला-मुखीका विस्फोट ही लगता था। मेरे दादा भी – जिन्हे मै 'बाबाकाका' कहता था – पिताजीकी तरह ही भावुक थे। परतु उनका स्वभाव कितना शान्त था, जैसे हिमालय ही हो। वे क्रोधसे भी कुछ बोलते, तो उनके शब्द गगाकी तरगकी भाँति शीतल लगते।

अंग्रेजी स्कूलमें ऐसे सिर्फ़ दो शिक्षक थे जो मुझे विशेष रूपसे अच्छे लगते थे। एक थे शकरशास्त्री केलकर और दूसरे थे हणमन्तराव मुद्गल। परतु इन दोनोमे आकृतिसे लेकर स्वभावतक इतना अन्तर था कि कुछ न पूछिये! शंकर-शास्त्री अच्छे ऊँचे-पूरे थे। उनकी तुलनामे मुद्गल मास्टर कुछ ठेगने थे। शकर-शास्त्रीकी बातोमे एक प्रकारकी वक्तृत्वकी शान रहा करती। मुद्गलजीकी बाते बिल्कुल यात्रिक लगती। शकरशास्त्री शान्त और गभीर चेहरेके थे, तो मुद्गल साहब चिड़चिड़ी मुद्राके थे। उस समय केलकरने 'तोतयाचे बड'* नाटक लिखा न होगा और स्कूलोके स्नेह-सम्मेलनोमे खेले जानेवाले नाटकोमे शिक्षकोके पार्ट लेनेकी प्रथा भी उन दिनोमे न थी! परंतु हमारे उस समयके शिक्षकोने यदि 'तोतयाचें बंड' नाटक खेलनेका निश्चय किया होता, तो 'नाना फड़नवीस' का काम शंकरशास्त्रीको ही मिलता, इसमे सदेह नही! और मुद्गलमास्टरको? बेचारेको

* लो० तिलकजीके एक साथी और मराठीके प्रसिद्ध लेखक स्व० नरसिंह चिन्तामण केलकरने लिखा हुआ मराठी नाटक।

'बगभट'का काम भी न मिलता। 'चिकटभट' या 'पिकटटभ'के कामपर ही उन्हे तमल्ली करनी पड़ती!

इस प्रकारके विविध विरोधोके कारण ही समारमे लज्जत आ जाती है और जीवनके नाटकपर रग चढता है। खाली सपाट मैदानमे, मद गतिसे नाककी सीधमे मीलो चले जानेमे, प्रवासका आनद नही आता। छोटी-बड़ी टेकडियोके चढ़ने-उतरनेमे, कँटीली झाड़ियोंसे छिपे करोंदोको खोजकर मुँह खट्टा-मीठा करनेमे और कहीं बीचमे ही पैर फिसलकर गिर पडनेके कारण यदि खरोंच लग जाय, तो उस खूनको जल्दी जल्दी पोछकर आगे बढते जानेमे ही प्रवासका सच्चा आनद है। दस-ग्यारह वर्ष पहलेकी बात है। मुझे एक छोटे जहरीले साँपने डस लिया था। तब लोग दुख प्रकट करके उस विचित्र दैवयोगकी निन्दा करने लगे। उनकी बाते सुनकर मैने कहा,–'ऐसा कुछ अवश्य होना चाहिए था।' मेरे वे शब्द उस समय सभीको चमत्कारिक लगे। कई लोगोने अपने मनमे उस समय यह भी तर्क किया होगा कि शराबकी तरह जहरका भी जब नशा चढ जाता है, तब मनुष्य मनमाना बकने लगता है। परतु मेरे उन शब्दोमे जरा गहरा अर्थ भरा था। पिछले दिन ही मैने 'उल्का'* लिखकर पूरा किया था। उस उपन्यासको लिखते हुए मेरे बीस दिन इतने अनिर्वचनीय आनदमे बीते थे कि उस आनंदके बाद तत्काल ही यदि कोई बड़ा दुख आता, तो मेरा यह प्रिय तत्त्वज्ञान कि, विरोध निसर्ग और इसीलिये मानवी जीवनका एक आवश्यक भाग है, असत्य सिद्ध हो जाता!

इस तत्त्वज्ञानपर इतनी श्रद्धा होनेके कारण छवैयोंकी उस ग़रीब और झगड़ालू जोड़ीको देखकर, उनमेंके कलह-प्रिय व्यक्तिसे हुज्जत करनेके बजाय मुझे स्वय अपना मनोरजन कर लेना चाहिए था। परतु वह मुझसे न हो सका। उस आधुनिक शार्ङ्गरवके जरा तानाशाहीसे बाते करते ही, बचपनमे रॉयल रीडरमे पढी हुई यह बात कि, क्रोध आते ही मनुष्यको दसतक गिनती गिनना चाहिए, मै भूल गया और जीवनमे उसका उपयोग हो इसलिये स्मृतिमे बद कर रखी हुई यह बात भी मुझे याद न आयी। यही नहीं, बल्कि बुद्धकी इस शिक्षापर कि 'अक्रोधेन

* मराठी उपन्यास जिसके हिंदी, गुजराथी और तमिल अनुवादके सस्करण भी प्रकाशित हुए हैं।

जयते क्रोधम्', कुछ दिन पहले, मैंने जो सुंदर भाषण दिया था, उसका एक शब्द भी मुझे स्मरण न हुआ। इस हालतमे यदि गाधीवादपर मेरे सकल्पित ग्रथोका एक अक्षर भी उस समय मेरी मददके लिये न दौड़ा, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

ऐसा क्यो होना चाहिए, यह समस्या जरूर मुझसे हल करते नही बनती थी। मेरे मनमे यह चिन्ता हो गयी कि उन अनाड़ियोपर मै व्यर्थ ही गुस्सा हुआ।

मेरे मनमे आया—प्रत्येक विद्वान मनुष्य महाभारतके कर्ण सरीखा अभागा होता है। संकटके समय उसकी विद्या उसके काम नही आती।

अपने मनको यह संतोष देते हुए कि विद्वान मनुष्य एक शापित प्राणी है, मै अँगीठीकी ओर मुडा—

मुझे विश्वास हो गया कि मनुष्यको प्राप्त हुए अनेक अभिशाप उसीके द्वारा निर्मित किये हुए होते हैं।

अँगीठी धधक रही थी। उसपर रखा पानी उबल रहा था। मानो मुझसे कह रहा था—दुनिया शुक्राचार्यके जमानेसे जानती है कि मनुष्य व्यसनोमे फँसकर अपनी विद्या गँवा बैठता है। कुछ समय पहले तेरी चायकी तलफ बुझी न थी, इसीलिये तू उन मजदूरोपर इतना नाराज हुआ!

विद्या और व्यसन! कैसी विचित्र जोड़ी है यह? शुक्राचार्यकी तरह मुझे भी अपनी व्यसनासक्तिके लिये पश्चात्ताप होने लगा। मै मनमे प्रतिज्ञा करने लगा—

कल—हाँ कल ही—

छवाईके लिये वे मजदूर आयें उससे पहले ही मैं अपनी चाय पी लूँगा जिससे कि उस शिकारी कुत्तेका भी मै प्रसन्न-मुखसे स्वागत कर सकूँगा!

• • •

१०

संकल्प

कागज़ोसे भरे हुए उन देवदारके बक्सोको देखकर, मुझे अपने पर ही आश्चर्य हुआ। मनुष्यके मनकी तरह उसके घरमे भी कितनी चित्र-विचित्र चीजे छिपी रहती हैं! मै उन बक्सोको गिनने लगा। एक-दो-तीन-चार —

मेरी पत्नी तो उस अद्भुत दृश्यको देखकर चकित ही हो गयी होगी! शहरमे प्लेगकी गड़बड़ी शुरू हो जानेके कारण हमारे घरकी रद्दी सामानवाली अटारीको साफ करनेके लिये कई दिनोंके बाद वह वहॉ चढी थी। यह सिद्ध करनेके लिये कि आधुनिक पुरुष अपनी पत्नीको दासी नही मानता, बल्कि वह उसे अपनी मित्रानी समझता है, मैंने भी हाथमे झाड़ू लेकर, उसके साथ अपने घरके इस स्वर्ग-लोकमे कई वर्षोंके बाद प्रवेश किया था। भीतर कदम रखते ही हम दोनोंकी नजर सामने पंक्तिसे रचकर रखे हुए देवदारके बक्सोंपर गयी। इन बक्सोमे जाने कहॉ कहॉकी स्वर्गवासी हुई चीजे भरकर रखी गयी हैं इसकी मैं कल्पना ही नहीं कर सकता था। परतु पुरुष जन्मसे ही स्त्रीका आलोचक होनेके कारण मैंने धीरेसे कहा, —'मुझे तो इन बक्सोमें स्टोवके पुराने लाइटर, स्पिरिटकी खाली बोतलें, हैंडिल टूटे हुए कप — आदि सटर-पटर चीजे ही ठसाठस भरी हुई दीख रही हैं। कहते हैं कि स्त्रियोंको पुरानी चीज़ोंसे अधिक प्रेम होता है, यह

बिलकुल सच है। किसी भी सुधारमे उनकी तरफसे जो रुकावट आती रहती है, उसका कारण यही है।'

मेरे इस छोटे-से व्याख्यानका एक भी शब्दसे प्रत्युत्तर न देकर, वह आगे बढी और दो-तीन बक्सोके ढक्कन उठाकर, उनमेसे छोटे-बड़े कुछ कागजोके टुकडे जल्दी जल्दी उठाती हुई बोली, – 'ये देखे आपने मेरे स्टोवके पुराने लाइटर, स्पिरिटकी खाली बोतले और ये रहे बिना हैंडिलके कप!'

मैने उन कागजोंपरसे नजर दौडाई। अरे बाप रे! अपने पिताजीके भूतको देखकर, हैम्लेट भी इतना न चौका होगा। वे सब मेरे ही कागज थे। टिप्पणियाँ, सूचियाँ, नोट्स, कटिंग्ज —

मेरी पत्नीने कहा, – 'आजकल रद्दीका अच्छा भाव है। ये सात-आठ बक्से कागजोसे ठसाठस भरे हुए है। इन सबको मै बेचे देती हूँ।'

उसकी बात ठीक तरहसे मेरी समझमे न आयी। मेरे हाथमे जो कागज था उसपर बारह वर्ष पहले मुझे जो एक कहानी सूझी थी, उसकी टिप्पणियाँ थी। उन्हे पढनेमे मै बिलकुल तल्लीन हो गया था। इस कागजको बक्सेमे रखकर, मैने दूसरे कागजोको उठाया। एक सकल्पित उपन्यासकी रूपरेखा मेरी दृष्टिके सम्मुख नाचने लगी। मैने पत्नीकी ओर देखते हुए कहा, – 'इन कागजोको सम्हालकर रखना होगा। बड़े कामके हैं ये। दस-बारह बरसोंके मेरे ये लेखनके संकल्प है।'

वह कुछ न बोली। पर हँसी जरूर। उसकी हँसीका अर्थ स्पष्ट था। ये देवदारके बक्से पिछले चौबीस वर्षोंमे मैंने लिखनेके जो सैकड़ो सकल्प किये थे, उनके सग्रहालय ही थे। परतु उन सकल्पोमेसे एक भी सत्य-सृष्टिमे न उतरनेके कारण यदि मेरी पत्नीकी यह कल्पना हो गयी कि ये सग्रहालय मेरे सकल्पोकी समाधि ही है, तो यह स्वाभाविक था। और, उसका यह मत एक दृष्टिसे ठीक भी था। क्योकि इन सकल्पोकी धुँधली सी याद भी मुझे न रही थी। इसलिये उन्हे देखते ही उनके विषयमे मुझे जो प्रेमका आवेग आया उसे देखकर यदि उसे हँसी आ गयी, तो आश्चर्य ही क्या है!

क्या, मैं यह नही जानता कि आजकल यदि मेरा एक मन कोई नया संकल्प करता है, तो दूसरा मन उसपर मन-ही-मन हँसने लगता है। ऐसे समय मुझे कोल्हटकरके 'सहचारिणी' नाटककी याद आ जाती है। उस नाटकका नायक रगराव पहली पत्नीसे कोई सन्तान न होनेके कारण दूसरा विवाह कर लेता है।

शीघ्र ही सौतोमे बच्चे पैदा करनेकी स्पर्धा शुरू हो जाती है। पहलीके एक लड़का हुआ, तो जैसे उसे हरानेकी ईर्षासे ही दूसरीके जुड़वॉ बच्चे होते हैं। परतु इस पराभवसे पहली पत्नी हताश नही होती। दूसरी जचकीमे, दूसरीके जब एक ही बच्चा होता है, तो उसे जुड़वॉ होते हैं। इस तरह रगराव इतने बच्चोंका बाप हो जाता है कि यह देखनेके लिये कि घरमे सब सुरक्षित हैं या नहीं, उसे स्कूलकी तरह एक हाजिरीका रजिस्टर रखना पड़ता है। फिर भी वह चेहरेसे सबको पहचान लेता हो, यह बात नही। एक बार वह अपनी एक लडकीसे दूसरी लडकी चिमीके बारेमे पूछता है कि वह कहॉ है। तब वह लड़की जवाब देती है, 'पिताजी, उसे मरे तो तीन साल हो गये!' ऐसी स्थितिमे बेचारा रगराव ऑसू पोछनेके सिवा और क्या कर सकता है?

मुझे ऐसा लगता है कि रगरावके इन बच्चोकी तरह ही मनुष्योके सकल्पोकी स्थिति होती है। कम-से कम मेरा गत चालीस सालका अनुभव तो ऐसा ही है। जब मै अग्रेजी शालामे गया, तब हमारे ड्रिल-मास्टरसाहबने मेरी पिलपिली बॉह पकड़कर, मेरा मजाक उडाया। उनकी बात मुझे लग गयी और मेरे भीतरका 'रामशास्त्री' जाग उठा! तुरत ही भीष्मप्रतिज्ञा करके अपने शरीरको बलिष्ठ बनानेका मैंने सकल्प किया। कुछ दिनोतक मै एक पहलवानके अभिनिवेषसे अखाडेमे जाया करता था। उस समय सिगल-बार करते समय मेरी ॲगुलियोमें जो घट्टे पड गये थे उन्हे मै उस सकल्पके गवाहकी हैसियतसे आज भी दिखा सकता हूॅ। परतु आगे चलकर, क्या बहाना मिल गया कौन जाने! मलखमकी अपेक्षा उपन्यास मुझे अधिक अच्छे लगनेके कारण हो अथवा और किसी कारणसे हो, व्यायामकी देवीने एक दिन रुष्ट होकर मुझसे जो मुॅह मोडा, सो सदाके लिये ही!

मुझे कागज़ोको तरतीबसे रखना बिलकुल नही आता था! आगे चलकर मैं एक स्कूलका हेडमास्टर हुआ। तब मुझे कागजोको तरतीबसे रखनेकी आवश्यकता हुई और मैने इसे सीखनेका सकल्प किया। वैसे देखा जाय तो मै स्वभावसे आलसी नही हूॅ। लिखने या पढ़नेमे मै घटों खोया रहता हूॅ। यह परिश्रम मुझे महसूस ही नहीं होता। किसी प्रिय अथवा ज़िम्मेदारीके कामको करते हुए भूख और प्यासको भूल जानेमे जो विलक्षण आनद होता है, उसका भी मैने यथेच्छ अनुभव किया है। परतु हिसाबको व्यवस्थित रूपसे लिखना अथवा भिन्न भिन्न

कामोके कागजोको समयपर तरतीबसे रखना ये बाते किसी भी तरह आज भी मुझसे नही होतीं! यह सकल्प किये कि इस विषयमें मैं आदर्श मनुष्य बनूँगा, पचीस वर्ष हो गये। परतु – शायद किसी ग्रहकी वक्र-दृष्टिके कारण हो वह संकल्प आजतक सिद्ध नहीं हुआ है, यह मुझे मंजूर करना ही होगा। हर वर्ष इन्शोरेन्स कपनीकी पिछली रसीदोकी जरूरत पड़नेपर मेरे कमरेको बात-की-बातमें, 'भारत इतिहास-अन्वेषक मडल'का स्वरूप प्राप्त हो जाता है और दो-चार दिन अन्वेषण करनेपर भी इच्छित कागज प्राप्त न हुआ तो मै राजमहलकी अपेक्षा भी अधिक सनकसे घरमे बर्ताव करने लगता हूँ। मेरे अनेक पुराने लेखोकी कतरनें मेरे पास कही न कही जरूर होनी चाहिए, यह मै अदालतमें हलफ उठाकर कह सकता हूँ। परतु कभी कभी सारा घर ढूँढकर भी वे मुझे मिलती ही नहीं हैं। ऐसी हालतमे मुझे विरक्ति-सी हो जाती है और मुझे लगता है कि इन न मिलनेवाली कतरनोको ढूँढनेके लिये सिधे जाकर सी० आइ० डी० की मदद मॉगू अथवा थोडेसे इनामकी लालच दिखाकर उनके बारेमे समाचार-पत्रमें विज्ञापन दे दूँ जिससे कि गुमे हुए लडकेके साथ उन्हे भी कोई ढूँढता रहेगा!

आजकलका मेरा बड़ा सकल्प स्वय अपनी जीभको कब्जेमे रखनेका है! खानेकी दृष्टिसे नहीं, बोलनेकी। मै स्वभावसे ही बातूनी हूँ, या कि शिरोड़ा जैसे गॉवमें दिन-भर काम करके थक जानेपर गप्प हॉकनेके सिवा मनोरजनका दूसरा कोई साधन उपलब्ध न होनेके कारण बातूनी हो गया हूँ, यह मै नहीं कह सकता, परतु मेरा गत चालीस वर्षका अनुभव यह है कि गडकरी*ने शराबके बारेमे जो लिखा है वह गप्पोपर भी पूर्ण रूपसे लागू होता है। दोनोंका नशा मनुष्यपर बहुत जल्दी चढ़ जाता है। शराब पीये बगैर शराबी बकबक नही करता। परतु गप्पीदास पहलेसे ही बड़बडाता रहता है। इसके कारण उसे उन्मादावस्था जल्द प्राप्त हो जाती है। इस अवस्थाके दुष्परिणामका बोध होते ही मैं गप्पे न हॉकनेका – कम-से-कम जितनी कम हो सके उतनी उन्हे कम करनेका – सकल्प करता आया हूँ। जब कोई दूसरा मनुष्य मुझसे मिलने आता है, तब पहले पाँच मिनटतक तो मुझे इस संकल्पकी पूरी याद रहती है। तुरत ही मै अभय-दान न देनेवाले देवताकी तरह घुन्ना होकर उस मनुष्यकी ओर देखता रहता हूँ। परतु, यदि वह मेरा कोई प्रिय विषय छेड़ दे अथवा कोई ऐसा वाक्य कह दे जो रसात्मक हो, तो इतना क्लोरोफॉर्म मुझे काफ़ी हो जाता है और

* मराठी भाषाके प्रसिद्ध नाटककार और कवि स्व राम गणेश गडकरी।

बिजलीका प्रवाह रुक जानेके कारण बद हुई फिल्म, उस प्रवाहके लौटते ही जिस तरह चालू हो जाती है, उसी तरह मेरी बकबक शुरू हो जाती है! मेरे आलोचक ही नही, बल्कि मेरे मित्र भी मेरी इस आदतका मजाक उडाते हैं। प्रॉमिसरी नोटकी अवधि पूरी होनेपर जिस तरह फिरसे नयी करा लेते हैं, उसी तरह मै भी अपने सकल्पका हर तीन सालके बाद फिरसे उच्चारण करके, उसे निश्चयपूर्वक सिद्ध करनेका —

खैर, छोड़िये इस बातको! सच तो यही है कि किसी भी सकल्पका सच्चा आनंद सकल्प करनेमे है, उसे सिद्ध करनेमे नही। पुत्र-जन्मका सच्चा आनंद बिस्तर-पर पत्नीके साथ सोये हुए एक नन्हे बालकको ध्यानसे देखनेमे है, वह सुदर सुकुमार बच्चा खडे होनेका प्रयत्न करने लगा कि उसकी नन्ही नन्ही प्यारी अँगुलि-योंको हाथोंमे पकडकर, इसकी परवाह न करते हुए कि युद्धके कारण सुवर्ण कितना महँगा हो गया है, ' चाल चाल बाळा, तुझ्या पायात सोन्याचा वाळा '* कहनेमें है। परतु जब वही लड़का बड़ा हो जाता है तो अपने माँ-बापकी परवाह नहीं करता — उनकी इच्छाके विरुद्ध बर्ताव करने लगता है। वक्त मौकेपर उनसे लड़ भी पड़ता है। इस लडाईमे आनंद कहाँसे आयेगा? बड़े बड़े कवियोंने बचपनको रमणीय कहा है तो क्या यों ही? संकल्प मनुष्यकी इच्छाकी बाल्यावस्था है और स्वाभाविक रीतिसे ही सिद्धि उस इच्छाकी वृद्धावस्था निश्चित होती है। अब यदि मनुष्यको बचपन और वृद्धावस्थामेंसे किसी एकको चुकनेका मौका आया, तो यह बतानेके लिये कि मनुष्य इन दोनोंमेसे क्या माँगेगा, किसी ज्योतिषीकी जरूरत नही होती! आनेवाले दिनकी क्षण-भर भी चिन्ता न कर पक्षीकी तरह स्वच्छन्दतासे खेलनेवाले सुखकी अपेक्षा पहली तारीखको पेन्शनकी रकम गिननेमें अधिक आनद माननेवाला प्राणी इस दुनियामे दवाके लिये भी न मिलेगा!

साधारण मनुष्यका जीवन सहाराकी मरुभूमिकी तरह होता है। इस मरुभूमिमे सिद्धिके मृगजल प्रवासियोंको बार बार मोहित करते हैं। परंतु जो उस मृगजलके पीछे गया, तो निश्चित रूपसे समझ लीजिये कि वह अपनी जानसे हाथ धो बैठा। बालूकी प्रचण्ड आँधीमें दम घुटनेके सिवाय उसे दूसरी गति ही नही रह जाती। परंतु हमारे सकल्प अवश्य सहारा की हरी-भूमिकी तरह होते हैं! ये स्थान चाहे छोटे रहें, फिर भी क्षण-भरके लिये ही क्यों न हो, वे मनुष्यको विलक्षण ठंड़क देते हैं।

* ' चल बेटा ' चल। तेरे पैरमें सोनेका कडा है।'

मानवी जीवनमे सिद्धिकी अपेक्षा सकल्पका ही महत्त्व अधिक है, यह बात मुझे बचपनसे जँच गयी है। मै शायद मराठी तीसरी या चौथीमे था। हमारी पाठ्य पुस्तकमे शेख चिल्लीकी कहानीका एक पाठ था। कक्षामे शेख चिल्लीके बारेमे चर्चा छिड़ी। सब लड़कोने उसकी मूर्खोमे गिनती की। मास्टर-साहबने भी कहानीके सारके रूपमें यही बात हमसे कही। परतु यह सब सुनते हुए मेरा मन रह-रहकर कह रहा था – 'शेख चिल्लीपर सचमुच यह बड़ा अन्याय हो रहा है। वह मूर्ख नहीं है। वह हम जैसा ही एक मनुष्य है। मनुष्यकी तरह बर्ताव करना मनुष्योके लिये कोई अपराध नहीं होता। अपनी कक्षाके हरएक विद्यार्थीकी यह इच्छा होती है कि अध्ययन न करके परीक्षामे उसे पहला नबर प्राप्त हो। शेख चिल्ली उन सबका ही प्रतिनिधि है, है कि नही? गरमीमे पाठ्य-पुस्तकको पेटपर रखकर सोये हुए हरएक विद्यार्थीको जो स्वप्न दीखते हैं, उनमे परीक्षामे पहला नबर आनेका, कम-से-कम उत्तीर्ण होनेका एक दृश्य तो जरूर होता ही है। शेख चिल्ली भी इससे अधिक और क्या करता है? कॉचके सामानसे भरा हुआ झाबा सामने रखकर वह अपनी दूकानमे बैठा था। एक भी ग्राहक न आनेके कारण ऊबकर दोपहरके समय उसने ऑखे मूँद ली होगी। तरुण मनुष्य हमेशा ही स्वय अपने विवाहकी बात सोचा करता है। इसलिये तद्रामे उसकी उस सुप्त इच्छाने जोर पकड़ा और उसे सकल्पका स्वरूप प्राप्त हो गया। उसने एकदम वजीरकी लडकीसे विवाह करनेका निश्चय किया। तुरत ही वह लड़की एकदम उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। यह देखकर कि वजीरकी लड़की उसके पास आप-ही-आप चली आयी है उसे लगा कि सभव है कि कुछ क्षणोके बाद राजकन्या भी हाथमे वरमाला लेकर उसके सामने आकर खड़ी हो जाय और उसने उस वजीरकी लडकी-को पैरसे ठुकरा दिया। गरीबीके कारण बिलकुल तंग जगहमे उसे अपनी दूकान न लगानी पड़ती, तो कॉचके सामानसे भरा वह झाबा वह अपने पैताने न रखता और फिर इस लातके लगनेसे उसकी जो हानि हुई वह न हुई होती। उसके कॉच-के बरतन फूट गये, यह इस कहानीमे केवल सयोगकी बात है। सिर्फ इतनेसे यह बिलकुल सिद्ध नही होता कि मनोराज करना अथवा सकल्पोमे खो जाना कोई ग़लत बात है!

शालामे रहते समय मुझे ये सब बाते बिलकुल इसी तरहसे सूझी थी या नहीं, यह मै नहीं कह सकता। परंतु उस समय मै पूर्ण रूपसे शेख चिल्लीके पक्षमे था,

इसमें सन्देह नही ! छत्तीस साल बीत गये। परतु उस समयका मेरा वह मत आज भी बना हुआ है। प्रत्येक मनुष्यकी बडे बननेकी जो सुप्त इच्छा होती है, वह सिर्फ मनोराजमे ही तृप्त हो सकती है। हरएक व्यक्तिको कुछ नया कर दिखानेकी जो भूख होती है, वह भी सकल्पके कारण ही अंशतः शान्त होती है। मनुष्य अनुभवसे दुनियासे ऊब उठता है। परंतु वह आशापर जीता रहता है और आशा तो सकल्पकी बड़ी बहन है!

मेरी यह श्रद्धा होनेके कारण ही कि संकल्पोमे एक प्रकारका जीवन-सौन्दर्य भरा हुआ है, सिद्धिकी ओर जरा भी ध्यान न देकर मैं हमेशा नये नये संकल्प करता रहता हूँ। हम चार-पॉच घनिष्ट मित्र जब एक जगह बैठ जाते हैं तो ऐसा कभी नही हुआ कि हम लोगोने एकाध लंबे सफरका ब्योरेबार कार्य-क्रम न बनाया हो। अगर दिवालीमे हम लोग मिले तो दिसबरमे सफर करनेका निश्चय करते हैं। हम लोग यदि दिसबरमे इकट्ठे हुए, तो आगामी ग्रीष्ममे ऊटकमंड जैसे ठड़ी जल-वायुके स्थानमे जानेका निश्चय करते हैं। और यदि गरमीके दिनोंमे हम लोग मिले, तो जानकारोकी यह सलाह ध्यानमे रखकर कि दिवालीके समय उत्तर प्रदेश-की आब-हवा अच्छी होती है, हम ताजमहलपर चढ़ाई करनेका सकल्प करते हैं। गत दस वर्षोके ऐसे अनेक संकल्पोकी सहायतासे हमने हिंदुस्तानके भिन्न भिन्न प्रान्तोका प्रवास घर बैठे ही पूरा कर डाला है! इसलिये हम लोग आगामी ग्रीष्ममें जब मिलेगे, तब विदेश-यात्राका सकल्प ही हमें करना होगा। और रायगढ, गिर-सप्पाका जल-प्रपात, अजठाकी मूर्तियॉ इत्यादि दर्शनीय स्थानोको यद्यपि हममेसे किसीने भी आजतक न देखा हो, फिर भी पृथ्वी-पर्यटनके मेरे इस सकल्पका मेरे सब मित्र हृदयसे समर्थन करेगे, इसमे मुझे जरा भी सदेह नही मालूम होता। किसी भी संकल्पके सुलभ और सात्त्विक उन्मादको खो दे, ऐसा अभागा प्राणी कम-से-कम मेरे मित्रोंमे तो कोई नहीं है!

प्रवासकी तरह लिखनेके सकल्प करनेमें भी मैने बड़ी प्रवीणता प्राप्त की है। चार-पॉच वर्षके पहले, हर महीनेमे मै किसी दीर्घ कहानी अथवा उपन्यासका कथासूत्र जब अपने मित्रोसे कहा करता, तब उन सबको यह लगता कि मै अब जल्द ही वह कहानी या उपन्यास लिखना शुरू कर रहा हूँ। मुझे भी चार-पॉच दिनतक यही त्रास हुआ करता। परंतु उस कथासूत्रकी पूर्वतैयारीमे मुश्किलसे एकाध सप्ताह बीन पाता कि उसी समय कोई दूसरी नयी कल्पना मुझे सूझ जाती

और पहला सकल्प आप ही आप ठडे बस्तेमे दब जाता ! इस अनुभवके कारण मेरे मित्र अब चतुर हो गये हैं । मै जब उन्हें कोई नया कथा-सूत्र सुनाना आरभ करता हूँ, तो वे मेरी ओर व्यंग्य-भरी दृष्टिसे देखने लगते हैं, और कभी कभी आपसमे एक दूसरेकी ओर देखकर ऑखें भी मिचका देते हैं ! उनकी इस हॅसीपर मुझे जरा भी क्रोध नहीं आता। उनकी मुद्राओंपर 'जो गरजता है, वह बरसता नहीं' भाव अंकित दीखता है, तो भी मैं उसकी फिक्र नही करता। कर्म करनेकी तरह संकल्प करनेमे भी एक प्रकारका अलौकिक उन्माद है, यह न समझनेवाले लोगोपर मुझे दया आती है ! परतु इन निराशावादियोको यह विश्वास दिलानेके लिये कि ऐसे विलक्षण उन्मादके असख्य क्षण मेरे जीवनमे आ चुके हैं, रद्दी सामानकी अटारीपरके इन सात-आठ देवदारके बक्सोको मुझे सुरक्षित रखना ही चाहिये। आज इन बक्सोके कागज निर्माल्यकी तरह भले ही हो गये हो, पर यह भूल जानेवाला मनुष्य कि आजके सूखे हुए फूल पिछले दिनके ताजे फूल होते हैं, अत्यंत अरसिक है, ऐसा मुझे लगता है।

मेरी पत्नीने यह नम्र आदेश दिया था कि आजकल रद्दीका अच्छा भाव है। इसलिये इन बक्सोंको खाली कर सब कागजात बेच डालना चाहिए । उसे सतुष्ट करनेके लिये मैंने उससे कहा, —'लिखनेके मेरे ये संकल्प मेरे मनकी खिली हुई कलियॉ हैं। न खिलकर ही वे मुरझा गयी हैं, यह बात दूसरी है ! अब उनमे रग नहीं, सुगध नहीं—यह मैं भी जानता हूँ। परतु निर्माल्य दूसरे दिन तुलसी-वृदावनमे ही डाला जाता है, यह तुम न भूलो ! यह तो तुम भी नहीं चाहोगी कि मेरी उत्कृष्ट कहानियोकी टिप्पणियोमे दूकानदार पादा-नमक या हल्दी-मिरचा आदिकी पुड़ियॉ बॉधे। यह सिद्ध करके दिखानेके लिये कि देवदारके वे बक्से कितने संग्रहणीय हैं, मैंने उनमेसे एक मोटी नोट-बुक उठाकर उसके हाथमे दे दी। उस नोट-बुकका पहला ही पृष्ठ पढ़कर बड़ी कठिनाईसे अपनी हॅसीको रोकते हुए उसने पूछा, –'यह क्या है?'

उस नोट-बुकको हाथमे लेकर, मैंने पढ़ना शुरू ही किया था कि मेरी घिग्घी बॅध गयी। ऑखे उठाकर पत्नीकी ओर देखनेकी हिम्मत ही न होती थी मुझे। मै यह भूल ही गया था कि पिछले दस वर्षोंके लेखनके अगणित संकल्पोंकी तरह कॉलेजमे रहते हुए मैंने जो हर प्रकारका लेखन किया था, उसकी नोट-बुकें भी इन्ही गड्ढोमे पडी हुई हैं ! उस समयकी एक नोट-बुक भूलसे मैंने उसके हाथमे

दे दी थी। उस नोट-बुकके पहले ही पृष्ठपर मैंने लिखा था—'तारीख १९ फरवरी १९१५—आज माननीय गोखलेकी प्रेत-यात्राके साथ गया था। लोकमान्य तिलक सिंहगढ़से आकर इस यात्रामें शामिल हुए। वह प्रसग अत्यंत हृदयद्रावक था। तिलकका श्मशान-भूमिका भाषण भी अच्छा रहा। उन्होंने तरुणोंको गोखलेका आदर्श अपने सामने रखनेको कहा। बस! मैंने निश्चय कर लिया। कविता और नाटक लिखनेका शौक छोड़ देना चाहिए। ब्रह्मचारी रहकर जन्मभर देश-सेवा करूँगा—यही है मेरा आजका संकल्प।'

उस नोट-बुकको बक्सेमे वापस फेककर, मैंने पत्नीसे कहा,—'इनमेके सभी कागज महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। यदि थोड़ीसी छान-बीन की जाय, तो दो-चार बक्सोकी रद्दी निकाली जा सकती है।'

वह बोली,—'तो कर डालिये न एक दिन यह काम। मुझे भी खाली बक्से मिल जाये, तो नीचे मेरे काम आयेंगे। मुझे उनकी जरूरत है ही!'

मैंने चटसे उत्तर दिया, 'वे खाली बक्से तुम्हें नहीं मिलेंगे! मेरी अल्मारीमे देखती नहीं हो, टिप्पणियाँ, नोट्स और कतरनोकी कैसी भीड़ लगी हुई है? ये सब कागज मै उन खाली बक्सोमे रखूँगा!'

'तो फिर अल्मारी खाली हो जायगी। मेरा काम उससे भी चल जायगा। वही मुझे दे देना!'

'अजी, अल्मारीमे तो मुझे आजकलके नये कागज रखना है। परसो सगमेश्वरसे लौटनेपर सभाजीपर लिखे जानेवाले उपन्यासकी मैंने एक टिप्पणी तैयार की है न? आजकलकी इस तरहकी सारी टिप्पणियाँ मेरे सामने रखी होनी चाहिए! ऐसा बढिया उपन्यास बनेगा कि देखती ही रह जाओगी। बस! निश्चय हो गया। आगामी सप्ताहसे लिखना आरभ कर दूँगा!'

अगले सप्ताहमे सभाजीपर लिखे जानेवाले उपन्यासका पहला प्रकरण भी मुझसे नहीं लिखा जायगा, यह सच है! परतु इस आनंदमे कि मै उसे लिखनेवाला हूँ, चालू सप्ताह बड़े मजेमे बीतेगा, इस विषयमे अवश्य मै बिलकुल निश्चिन्त हूँ।

●●●

११

मौन व्रत

मनुष्य आत्म-पूजक है या आत्म-वंचक है, इस विषयमे मानस-शास्त्रज्ञोका क्या मत है, यह मैं नहीं जानता। परतु जिस तरह दर्पणमे अपनी छबि देखते हुए कुब्जा भी नही ऊबती, उसी तरह कर्कश आवाजको निरंतर सुननेमे जो आनद है उससे मनुष्यको कभी अरुचि नही होती।

परसोका मेरा ही उदाहरण लीजिये न।

मुझसे मिलनेवाला प्रत्येक व्यक्ति मेरी बाते सुनकर, मेरी ओर चमत्कारिक दृष्टिसे देखने लगता। परतु इसका कारण बहुत देरके बाद मेरी समझमे आया। पहले पहल मुझे लगा, आज सबकी नजरे ही बिगड़ी हुई दिखायी देती हैं! कपड़ेके व्यापारियोकी तरह नेत्र-डॉक्टरोके पेटमे भी आजकल शनिमहाराज बिराजे होंगे! बहुत देरके बाद मुझे यह आभास हुआ कि आज बोलनेमे मुझे कुछ कष्ट हो रहा है। मेरा गला भी थोड़ा घरघरा रहा है! मैने मनमे कहा,— 'गला घरघरानेका मतलब यह नहीं होता कि मुझे घटसर्प हो गया है। रातको सोते समय दूधमे हलदी और शक्कर मिलाकर पी लूँगा, तो सब ठीक हो जायेगा।'

परन्तु शामको हमारे डॉक्टर-साहब सहजभावसे हमारे घर पधारे। मेरी

आवाज सुनकर, वे स्तंभित हो गये। गनीमत थी कि मैं उनके सामने ही बैठ-कर बातें कर रहा था। वरना उन्हें विश्वास ही न होता कि वह आवाज मेरी है!

सरकार और डॉक्टर – यह जोड़ी कब किसे कौनसा हुक्म दे दें, इसका कोई ठिकाना नहीं! डॉक्टरने मेरी आवाज सुनकर एकदम मुझपर भाषण-बंदीका नोटीस जारी कर दिया। तब सहज ही मै अपनी आवाजके बारेमे विशेष रूपसे विचार करने लगा। अब मेरे ध्यानमे आया कि उसमे कोई भयंकर क्रान्ति हो गयी है।

अरे बाप रे!

बिल्लीकी म्याऊँ-म्याऊँकी जगह अब घर्र घर्रने ले ली थी! यदि शूद्रकका शकार मेरी इस खास आवाजको सुन लेता, तो उसे खट्टा दही-भात खाकर मोटाये हुए बिलौटेकी याद आ जाती। क्षणार्धमें मुझे विश्वास हो गया कि तूफानी हवामे कहीं दूरका रेडिओ स्टेशन लगानेपर जो असंख्य कर्कश और चित्रविचित्र आवाजें सुनायी पडती हैं, उनका आज मेरे गलेमे कोई सम्मेलन हो रहा है।

डॉक्टरने सलाह दी – 'कल दिन-भर आप गलेको पूरा विश्राम दीजिये!'

'यह हो नहीं सकता!'

'क्यों, कल क्या कहीं जाकर भाषण देना है?' डॉक्टरने पूछा।

मैंने गर्दन हिलाकर नकार दर्शाया।

मेरी पत्नीने हँसकर कहा, – 'भाषण देनेके लिये घरसे बाहर जानेकी क्या ज़रूरत है? घरमे सुबहसे शामतक वही तो होता रहता है! मदद माँगने कोई विद्यार्थी आवे, अथवा प्रस्तावना लिखवाने कोई लेखक आवे! मुझसे कहेंगे – सिर्फ दो शब्द बोलता हूँ। परंतु कहते हैं न, कि ब्रह्माजीका एक दिन मनुष्योंका एक युग होता है। उसी तरह होते हैं उनके वे दो शब्द! यदि कोई अत्यन्त प्रिय व्यक्ति आ जाये, तब फिर पूछना ही क्या है? ओ, भूल हो गयी! लगातार बोलते ही रहते हैं। मुझे लगता है जैसे घरमे 'वसन्त-व्याख्यान-माला' आरंभ हो गयी है!'

भारत संरक्षक-कानूनके अन्तर्गत निकला हुआ गिरफ्तारीका वॉरंट एक बार रोका जा सकता है। परंतु जिसे पतिकी आलोचना करनेका मौका मिल जाय, उस पत्नीका मुँह! छिः! उसे रोकना असम्भव होता है इसीलिये तो विष्णु भगवानने क्षीरसागर और शंकरजीने कैलास पकड़ा। दोनोंने मनमे पूरी तरह विचार कर लिया

होगा'– चार आदमियोंके बीच तो कम-से-कम बेइज्जती न हो। सारे नेपथ्यपाठो-को एकान्तमे सुनना ही अच्छा !

फिर भी यह बात नहीं है कि जो पहले न हुआ, वह आगे भी न होगा। इसलिये मैंने बीचहीमे पत्नीसे कहा, –'माना कि मै घरमे वसंत-व्याख्यान-माला शुरू करता हूँ। परतु जानती हो किसलिये? इसलिये कि उसके इस प्रकार उप-सहार करनेका सम्मान तुम्हें प्राप्त हो!'

वह मनसे हँसी, डॉक्टर भी हँसे!

मैं भी मनसे हँसता हुआ डॉक्टरसे बोला, –'किसी भी काव्यको निर्दोष करने-के लिये कविके साथ हमेशा एक आलोचक रहना चाहिए! गृहस्थीमे यह सयोग सहजहीमें पूरा हो जाता है। क्यों, है कि नहीं, डॉक्टर-साहब?'

मुझे बीचहीमे रोककर वह बोली, –'डॉक्टर, गाड़ी अब दूसरी पॉतपर जा रही है! आपने जो पथ्य बताया है, उसका यदि ये कल पालन कर ले, तो—' उसके स्वरसे दीख रहा था जैसे वह लाख रुपयेकी होड़ लगानेके लिये तैयार हो। ऐसी दशामे कौन पति पीछे हटेगा?

मैने कहा, –'डॉक्टरकी सलाह माननेमें मुश्किल क्या है? आखिर पन्द्रह पन्द्रह दिनतक गाधीजी मौनव्रत पालन करते ही हैं कि नही!'

मुझे लगा कि मैं कुछ अप्रस्तुत कह गया, इसलिये भयसे एकदम मैंने चीभ चबायी। पर नज़रमें ऐसी अकड़ रखी कि डॉक्टर यदि पन्द्रह दिनतक मौन धारण करनेके लिये कहे, फिर भी मैं उसका हँसते हुए पालन करूँगा।

मेरी पत्नीने कहा, –'हॉ, तो अब निश्चित हो गया न? कल—'

'दिन-भर हमारा मौनव्रत!' घनघोर प्रतिज्ञा करनेवाले नाटकके नायककी तरह अभिनय करता हुआ मै बोला। परतु मनमे मैं इसापके दुम-कटे गीदड़की तरह कह रहा था, गनीमत हुई जो श्रीमतीजीने एक ही दिनकी शर्त की है! ग्यारसका व्रत करनेवाला पेटू व्यक्ति क्या उस दिन प्याजकी पकोड़ियॉ खाता होगा? उसी तरह मै अपनी जीभ कब्जेमे रखूँगा।

राजा हरिश्चन्द्रने स्वप्नमे जब राज्य-दान कर दिया तब उसके बाद उसे नींद आयी या नहीं, इसका वर्णन किसी भी कविने नहीं किया है। परतु मुझे लगता है कि मनुष्यको प्रतिज्ञा करनेके फंदमे सहसा न पड़ना चाहिए। नींदपर यानी कुल स्वास्थ्यपर और इसलिये अपने जीवनपर उसका बहुत बुरा परिणाम होता है

वैसे देखा जाय तो कल सुबहसे सिर्फ एक दिन मौन रहनेकी प्रतिज्ञा मैने की थी। इन चौबीस घंटोंके सात-आठ घटे अनायास नीदमे ही निकल जानेवाले थे। नीदमे बड़बड़ानेकी मेरी आदत न होनेके कारण उन सात-आठ घटोमे व्रत-भग होनेका बिलकुल ही भय न था! हॉ, पर बचे हुए समयमे जरूर— रातको जब मैं बिस्तरपर सोया तब इस विचारके कारण किसी भी तरह मुझे नीद नहीं आती थी – मन चिन्तित होने लगा। यह कल्पना कि कल मेरी दुर्दशा होगी यो ही उसके आसपास चक्कर काटने लगी। पुराणोंमे ऐसा कभी घटा ही नहीं कि कोई ऋषि उग्र तपस्या करने बैठा हो ओर उसका तपोभग करनेके लिये इन्द्रने अप्सराओंका तॉता रवाना न किया हो। मुझे विश्वास हो गया कि कल मेरा चोला भी इसी प्रकारका एक विश्वामित्र बनेगा। कोई नया प्रकाशक एकाध पुस्तक मॉगनेके लिये कल ही मेरे पास आ गया, तो? अथवा इन्दौर या ग्वालियर जैसे दूरके शहरसे कोई घनिष्ठ मित्र मुझसे मिलने आ गया और उसे कल ही लौट जाना हो, तो? उसके सामने जा कर क्या सोठ सा मुँह बनाकर बैठा रहूँ? छिः! मौनीबाबाका यह स्वॉग पूरा करना बड़ा कठिन काम है। यदि सौभाग्यसे कोई दूरका मित्र प्रगट न हुआ, फिर भी इस मईके महीनेमे ऑटोग्राफ लेनेके लिये मेरे घर आनेवालोंकी सख्या भी तो कोई कम नही होती! उनकी नोट-बुकोंमें सिर्फ हस्ताक्षर करके उनके सामनेसे चुपचाप चल देना क्या सभ्यता होगी? इन लोगोंमें लड़कियॉ भी बहुत होती हैं। ऑटोग्राफ लेनेके बाद यदि कोई लड़की सदेशके लिये हठ पकड़ ले, तो उसे तो सतोष देना ही होगा! आखिर स्त्री-दाक्षिण्य नामकी भी तो कोई चीज है कि नहीं इस सुधरी हुई दुनियामे? वह सदेशके लिये सत्याग्रह शुरू कर दे और मै नॉदिया बैलकी तरह सिर्फ गर्दन हिलाकर नकार दर्शाने लगा, तो?

यह विचित्र कल्पना-चित्र मुझसे देखा नहीं जाता था।

पत्नीसे मिथ्या विवाद करते समय मैने ऐसा रोब गॉठा था कि गाधीजीकी तरह मौनव्रत पालन करना अत्यन्त सहज है। परतु इस एक विषयमे गाधीजीके पन्द्रहवॉ अंश होनेकी कल्पनासे ही मुझे लगने लगा कि कहीं मैं पागल न हो जाऊँ?

मौनका महत्त्व मनको जॅच जाय, इसलिये रद्दी सामानके कमरेमे पड़ी हुई अपनी सारी विद्वत्ताको मैं खोजने लगा। पहले सस्कृत भाषाका ‘मौन सर्वार्थ-साधनम्’ वाक्य मेरे हाथ लगा। इसके बाद ही अंग्रेजीका सुभाषित ‘Silence

is Golden' मुझे मिला। देव-भाषा और राज-भाषा दोनोके आधारसे मेरा मन क्षण-भर स्थिर हुआ। परतु दूसरे ही क्षण किसी लँगडे व्यक्तिकी दोनो बैसाखियाँ छूटकर गिर पड़े, वैसी मेरी दशा हो गयी। इन दोनो वाक्योसे सिर्फ एक ही अर्थ ध्वनित होता था और वह यह कि व्यवहारमे तिजोरीकी तरह मुँहपर भी ताला लगाना लाभदायक होता है।

परतु मेरा मौनव्रत व्यावहारिक न था। वह तात्त्विक था। इसके अतिरिक्त, मुझे चौबीस घटे अपने मुँहपर ताला लगाना था। यह कोई घंटे दो घटेका क्षुद्र प्रश्न न था। महायुद्ध और मुहल्लेकी मार-पीटमे जो फर्क होता है, उतना फर्क था इन दो मौनोंमे!

यह देखनेके लिये कि मेरी तरह ही मौनव्रतके सकटमे फँसे हुए व्यक्तियोंके चरित्रोसे क्या मुझे कोई स्फूर्ति मिल सकेगी, मै उनके चरित्रोका स्मरण करने लगा। 'मूक नायक'* नाटक एकदम मेरी नजरोके सामने खडा हो गया। इस नाटकका नायक विक्रान्त अपनी भावी पत्नीका प्रत्यक्ष रूपसे परिचय प्राप्त कर लेनेके इरादेसे गूँगेका स्वाँग लेकर उसके भाईके घर नौकरकी हैसियतसे रहता है! इस ख़्यालसे कि कम-से-कम कलके लिये मुझे यह उत्कृष्ट गुरु मिल गया है, मैं आनंदित हो उठा। इसी आनंदमे मग्न मैने अलमारीसे 'मूकनायक' निकाला और जल्दी जल्दी उसके पन्ने पलटने लगा। परतु मेरे भ्रमका गुब्बारा बात-की-बातमें 'फट्' हो गया। यह नाटक जहाँ तहाँ गूँगे विक्रान्तके भाषणोंसे भरा हुआ है। अपनी बहन और भावी पत्नीसे बाते करते समय उसने कहीं भी अपनी जीभको लगाम नहीं लगायी है। मुझे तो अपनी पत्नीसे बिलकुल ही न बोलना था! मैने 'मूक नायक' गुस्सेसे फेंक दिया।

अब दूसरा योग्य गुरु कहाँ खोजूँ? एक तरफ़ी पडी हुई मासिक-पत्रिकाओंके पन्ने मैं यों ही उलटने लगा। बबईमे कुछ समय पहले महिला परिषदका एक अधिवेशन हुआ था। उसके वृत्तान्तकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट हो गया। इस परिषदमें सरोजिनी नायडू उपस्थित थीं। परतु सरकारी निबधनके कारण वे उसमे एक शब्द-से भी भाग न ले सकीं। अन्तमे वे माइक्रोफोनके सामने आकर खड़ी हुई और अभिनय करके उन्होंने यह दिखाया कि उनके मुँहपर ताला पड़ा है और यह अभिनय उनके अद्वितीय वक्तृत्वसे भी अधिक परिणामकारी हुआ। यह पढ़कर मेरा

* मराठीके प्रसिद्ध लेखक स्व० श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकरका मराठी नाटक।

जी ठण्डा हुआ। इस आनदमे कि महात्मा गाधी और सरोजिनी नायडू जैसे महान व्यक्तियोके चरण-चिन्होपर चरण रखकर, कल मै अपनी पत्नीका पूर्ण पराभव करूँगा, मेरी ऑख कब लग गयी, इसका स्वय मुझे ही कोई पता न चला!

सुबह पत्नीके मीठे शब्द 'चाय तैयार है', सुनकर ही मै जागा। हमेशाकी तरह 'आ रहा हूँ' शब्द एकदम मेरी जिव्हापर आ गये। परतु पगहाको खीचकर जिस तरह बदमाश बैलको रोकते हैं अथवा उतारपर मोटरको एकदम ब्रेक लगाते हैं, उस तरह मैने उन्हे पीछे खीच लिया!

पूरे तीन मिनटतक किसीसे एक शब्द भी न बोलकर, मै चुपचाप चाय पीने लगा। मेरी पत्नी मेरी ओर शरारत-भरी नजरसे देख रही थी। उससे मजाक करनेकी मुझपर सनक सवार हुई। परतु मै अपने मनको निरतर जता रहा था, – 'रे मन, तीन मिनट निकल गये हैं – यह देख चौथा मिनट भी गया। अब सिर्फ तेईस घटे और पचपन मिनट बच गये हैं। इसलिये, हे सज्जन मन, —'

मुझसे चाय पी नही जाती थी। बिल्कुल फीकी लग रही थी वह। बाकी सब लोग बड़े मजेसे चाय-नाश्ता उड़ा रहे थे। मुझे शक हुआ कि मेरे मौनव्रतका भग करनेके लिये पत्नीने मेरे प्यालेमे आज जान बूझकर ही कम चीनी छोडी है। 'मुझे अभी कोई मधुमेहकी बीमारी नही हुई है!' – यह वाक्य अन्तर्मनसे सरसराता हुआ बाहर जीभपर आ गया था। परन्तु, 'अँ हँ! चुप!' – मैंने मनको चेतावनी दी, 'हम आज व्रतस्थ हैं।'

सरोजिनी नायडूके अभिनयका पुण्यस्मरण कर, मै पत्नीसे इशारोके द्वारा बाते करने लगा। यह देखकर, सब लोग खिलखिलाकर हँसने लगे। मैं मनको उपदेश दे रहा था, – 'मना श्रेष्ठ धारिष्ट जीवीं धरावें'*। अन्तमे मेरे इशारोंको देखकर पत्नीजी उठी। वे सीधी चीनीके डिब्बेके पास गयीं! मेरा आनद चायके प्यालेमे न समाता था! लम्बी सफर करनेवाला एक मील तय करनेके बाद आनंदसे जिस तरह ऑखे बन्द कर लेता है, उसी तरह मैने किया। ऑख खोलकर देखता हूँ तो मेरे प्यालेमें श्रीमतीजी क्रुशन सॉल्ट छोड रही हैं! वह डिब्बा चीनीके डिब्बेके पास ही रखा था! यह सच है कि बीचबीचमे मै क्रुशनबाबाका प्रसाद लेता रहता हूँ। परतु आज – इस समय – जब कि मुझे चीनीकी जरूरत

* अरे श्रेष्ठ मन, तू धीरज धर।

थी; उस वक्त – छिः ! मुझे विश्वास हो गया कि अभिनय करना ऐरो-गैरोका काम नही, उसके लिये गणपतराव जोशी * अथवा सरोजिनी नायडू जैसे व्यक्ति ही चाहिए!

मौनव्रत भग न हो इसलिये मै कॉखमे स्लेट और पेन्सिल दबाकर ही घरमे घूमने लगा। पत्नीने बीचहीमे कहा, – 'आज घरमे सब्जी नहीं है!' मैने स्लेटपर लिखा, – 'मैं आज बाजार नही जाऊँगा। मेरा मौनव्रत भग हो जायगा! कुँजड़िनसे हुज्जत किये बग़ैर क्या ब्रह्माको भी कभी अच्छी सब्जी मिली है?' थोडी ही देरके बाद, अवी और मन्दा लड़ते लडते सुप्रीम कोर्टके फैसलेके लिये मेरे कमरेमे दाखिल हुए! मैने स्लेटकी एक तरफ 'मन्दा महामूर्ख है' लिखकर, वह बाजू अवीको दिखायी और दूसरी तरफ 'अवी महामूर्ख है' लिखकर, मन्दाको दिखा दिया। दोनो हँसते हँसते खेलने बाहर चल दिये। इस खुशीमे कि आज मेरा व्रत सफल होगा और पत्नीकी हार होगी, मैं स्वय अपनी ही पीठ ठोकनेमे निमग्न हो गया।

इसी समय सुलभा अपने खिलौनेका तॉगा लेकर मेरे पास चली आ रही है, ऐसी आवाज मुझे सुनायी दी। मैने तर्क किया कि अब मुझे उसके तॉगेका घोडा बनना पडेगा। हमेशाकी तरह इस कामको करनेके लिये मुझे कोई आपत्ति न थी। उसका घोडा बननेसे मेरे मौनव्रतके भग होनेकी कोई सभावना न थी। बहुत ही होता, तो बीच-बीचमे मुझे हिनहिनाना पड़ता! परतु हिनहिनाना कोई बोलना नही होता।

परतु हिटलरके समय-पत्रककी तरह मेरा यह तर्क पूर्णरूपेण गलत निकल गया। सुलभा अपने पीतलके तॉगेमे घोड़ा जोतकर ही आयी थी। कमरेमे कदम रखते ही हाथमे रखी घासको दिखाते हुए उसने मुझसे पूछा, – 'भाऊ, यह घोडा घास क्यो नही खाता?'

लीजिये अब आयी आफत! इस आफतसे कैसे छूटूँ यह मेरी समझमे न आता था। स्लेटपर 'यह घोड़ा लकड़ीका है। उसमे जान नही है', इत्यादि बहुतसे वाक्य मैंने लिखे। पर तीन सालकी सुलभा उन वाक्योको पढ़ेगी कैसे? वह बार बार वही प्रश्न मुझसे पूछने लगी। यह देखकर कि आसपास कोई नहीं है, मुझे भी यह मोह उत्पन्न हुआ कि धीरेसे उससे कुछ बाते करूँ। सुबहसे मुँहपर ताला पडा रहनेके कारण मेरे मनमें कभी कभी यह चमत्कारिक शका आने

* मराठी रगभूमिके प्रसिद्ध स्वर्गवासी अभिनेता।

लगी थी कि मै कही गूँगा तो नही हो गया हूँ। उसका निरसन करनेके लिये —

इसी समय जीनेपर पैर बजे। मै भगवान बुद्धकी तरह ध्यानस्थ मुद्रा धारण करके बैठ गया!

मेरी पत्नी अटारीके पीछेवाले कमरेसे शक्कर ले जानेके लिये आयी थी। शक्करके साथ सुलभाको अपने साथ लेकर, और मुझसे बिना एक शब्द बोले ही, वह चल दी। उसकी इस चुप्पीसे मुझे बडा दुख हुआ। मेरे मनमे आया- यदि वह मुझसे दो बाते कर लेती तो क्या हर्ज था? मेरी जीभपर बन्धन है, पर मेरे कानोको पूरी स्वतंत्रता है। छिः! वह बहुधा मुझपर नाराज हो गयी होगी मैने उससे कल यह कह दिया था कि ब्लाउजके लिये जो कपडा वह लायी है, वह बहुत महँगा है! उसीका आज यह बदला लिया जा रहा होगा।

एकदम एक विलक्षण इच्छाने मेरे मनमे जोर पकड़ा। उसके पीछे पीछे नीचे जाऊँ और उससे समझाकर कह दूँ कि कल उस कपड़ेके बारेमे जो कुछ मैने कहा, वह सिर्फ परिहास था – उसमे सच्चाई बिलकुल न थी! इस भावनाके आवेशमे मै जीनेतक गया भी!

तुरत ही मेरे मनमे आया – छिः! यह तो चर्चिल जाकर हिटलरसे संधि कर ले इस तरहकी बात हो जायगी!

जड़ पैरोसे मै कमरेमे लौट आया। परंतु अब मुझसे स्वस्थ नही रहा जाता था। मै इधरसे उधर चक्कर काटने लगा। दीवारपर घडी 'टिक टिक कर रही थी। घड़ी चौबीस घंटे बडबडाती रहती है, फिर डॉक्टर उसपर मौन-व्रत पालन करनेकी सख्ती क्यो नहीं करते, यह किसी भी तरह मेरी समझमें न आता था। थोड़ी ही दूर एक कैलेंडर टँगा था। उस कैलेंडरके चित्रकी लडकी एक सुंदर कुत्तेके साथ खेल रही थी। मेरे मनमे प्रबल इच्छा हुई कि प्यारसे उस लड़कीसे कुत्तेका नाम पूछूँ। मेघके साथ अपनी पत्नीको संदेश भेजनेवाले यक्षकी मनस्थितिकी अब मुझे पूर्ण कल्पना हो गयी। नये नाट्य-शास्त्रका यह नियम कि स्वगत-भाषण न रखे जाएँ कितना ग़लत है, इसपर भी मुझे विश्वास हो गया। इस ख्यालसे कि मैं कविता बनाता हूँ इसलिये मुझे काव्यगायन आना ही चाहिए, सोलह-सत्रह वर्ष पहिले, लक्ष्मीबाई तिलक * मेरा काव्य-गायन सुननेके लिये मेरे पीछे पड़ गयी थीं। परंतु उनकी भी परवाह न करनेवाले मेरे गलेको

* मराठाके कवि स्व० रेव० नारायणराव तिलककी पत्नी।

आज अवश्य वह सनक आ गयी। जब मैंने अपने मनमें यह पक्की तरह तय कर लिया कि आज शामको घूमनेके बहाने बाहर जाऊँ और किसी शिलापर बैठकर, दो घंटे यथेच्छ काव्य-गायन करूँ, तब कहीं मुझे आभास हुआ कि मैं मनुष्योंमें आ गया हूँ।

पर वह भी क्षण-भरके लिये ही!

घड़ी एक एक मिनटसे आगे बढ़ रही थी। पर मुझे यह लगता था कि वह मिनटका काँटा नहीं—युगका काँटा है। मुझे लग रहा था जैसे सारी दुनियाने मेरा बहिष्कार कर दिया है और यह विचित्र कल्पना रह रहकर मेरे मनको सता रही थी। मेरे मनमें यह कल्पना भी चमक गयी कि काला पानीकी सजा भी इस मौनव्रतसे अच्छी है। वहाँ कम-से-कम एक कैदी दूसरे कैदीसे बात तो कर सकता होगा।

इस जबरदस्तीके मौनके सुबहसे लेकर अभीतकके छः-सात घंटे कैसे पूरे हुए, यह भगवान ही जाने! परंतु इतनी अवधिमें मैं ठाना और येरवडाके कई चक्कर काट आया। संयमकी गप्पें आसान होती हैं, परंतु उसका प्रामाणिकतासे पालन करना ऐरों-गैरोंका काम नहीं है। यह सत्य इस इक्कीस हजार छः सौ सेकंदमें पूरी तरहसे मेरी समझमें आ गया। आज मुझसे कोई मिलने क्यों नहीं आ रहा है, इसका भी मुझे आश्चर्य होने लगा। मनौतियोंपर विश्वास न होते हुए भी मैंने अंबादेवीको कुछ लालच दिखाकर प्रसन्न करनेका इरादा किया।—

इसी समय बाहरसे पुकार कानमें पड़ी—'अजी, हैं क्या घरमें?' मेरे हर्षकी सीमा न रही। आगंतुक महाशय एक समाचारपत्रके संवाददाता थे। वे हजरत उनमेंसे नहीं थे जो मेरी पत्नीकी यह गप्प सुनकर कि मैं बीमार हूँ, सीधे लौट जाते!

उन्हें साथ लेकर मेरी पत्नीको ऊपर आना ही पड़ा। मैं बीमारका पार्ट यथा-शक्ति अदा करने लगा। संवाददाता पूछने लगे,—'क्या होता है आपको, महाराज? इन्फ्ल्यूएन्जा, मलेरिया, या कि—'

मैं गर्दनके इशारेसे हरएक बीमारीके नामको नकार दर्शा रहा था। साठ-सत्तर उम्मेदवारोंको फेल कर दिया मैंने!

अन्तमें संवाददाता जल्दी जल्दी उठकर बोले,—'अरेरे! बोलनेकी भी ताकत नहीं रह गयी है इनमें। अभी—इसी समय मुझे तारसे यह समाचार भेज देना चाहिए।'

उनकी पीठ फेरते ही मेरी पत्नीने कहा, – 'हाय राम!'

खम्भेके भीतरसे प्रकट होनेवाले नारसिंहके स्वरमे मै चिल्लाया, – 'अब पढ़ लेना कल मेरी वाचा बद होनेका समाचार!'

'यह तो आपका मौनव्रत है!' – वह हॅसते हुए बोली, – 'हम भी मौनव्रत पालन करती हैं, परतु वह इस प्रकार पागलकी तरह नहीं! क्रोध आ जाय, तो उतने समयके लिये एक 'व्यक्ति' से बाते करना बंद कर देना। क्रोध निकल गया कि—'

मेरे मस्तिष्कमे एकदम जगमगाता हुआ प्रकाश पड़ा!

यह मानकर कि मौनव्रत कोई बड़ी भारी – बिलकुल युद्धकी तरह एक भयंकर बात है, मै सुबहसे अपने आप और दुनियापर क्रोधित हो उठा था। कुछ समय पहले मेरे मनमे यह विचार भी उठने लगे थे कि सन्यास ले लूँ। परतु यह मामूली बात कि, मौनव्रतका मतलब एक प्रकारका चुप रहना है, मेरी समझमे न आ सकी। मै हरिश्चन्द्रका सत्य, बुद्धकी अहिसा, भीष्मका ब्रह्मचर्य और अपना मौनव्रत – इन सबका एक सा ही मूल्य समझ रहा हूँ। पुरुष किताबी पंडित होते हैं, यही सच है। हरएक बातका वह व्यर्थ ही आडम्बर रचता है। परतु स्त्रियॉ चट उस आडम्बरकी आत्माको पहचान सकती हैं। पुरुष एक एक शब्दके लिये लड़ते हैं, स्त्रियॉ उस शुष्क पर्ण-राशिकी आड़मे जो एकाध सुगधित फूल पडा होता है, ठीक वही चुनकर निकाल लेती हैं। मेरे मनमे आया – हिटलर, टोजो, चर्चिल इत्यादि राजनीतिज्ञ पुरुषोंकी जगहमे यदि उस उस राष्ट्रकी प्रमुख स्त्रियॉ होतीं, तो यह महायुद्ध कितनी जल्दी शान्त हो जाता!—

नहीं। वह शुरू ही न होता!

●●●

१२

टॉल्सटॉयके ग्रंथ

ट्रंक पुस्तकोंसे पूरा भर गया। फिर भी मेरा भतीजा अलमारीसे पुस्तकें निकाले जा रहा था। चॉकलेटकी बरनीमें हाथ डालकर मुट्ठीभर लेनेपर भी छोटे बच्चोंका मन जिस तरह अतृप्त ही रहता है ठीक उसी तरह उसकी स्थिति हो गयी थी। मैंने मनमें कहा भी, – मनुष्य लालची प्राणी है, इसमें संदेह नहीं। थोडेसे वह कभी सतुष्ट नहीं होता। फिर वे पेडे हों, पुस्तकें हो या पैसे हों 'बस' शब्द जीवनमें उसके मुँहसे बाहर पड़ना कठिन है।

पुस्तकोंके लिये उसका यह अति लोभ देखकर मैंने मजाकमें कहा, – 'गोल्ड-स्मिथके उपन्यासके उस चित्रकी तरह तुम्हारे ट्रंककी हालत हो जायगी, समझे?'

मज़ाक गुदगुदीकी तरह होता है। परतु बधिर शरीरको गुदगुदीका ज्ञान ही नहीं होता। उसका भी वही हुआ। टोकनीमें रखी पुष्प-राशिको देखकर भान भूल जानेवाले भक्तकी भाँति उसकी दशा हो गयी थी। पुस्तकोंके परे उसे कुछ भी नहीं दिखायी देता था। मैंने फिरसे कहा, – 'उस उपन्यासका वह चित्र इतना बड़ा होता है कि, दरवाजेसे वह घरके भीतर जा ही नहीं सकता। तुम्हें भी रास्ते-में इसी तरहकी अड़चन होगी। इस भारी ट्रंकको एक मोटरसे दूसरी मोटरमे चढ़ानेके लिये एक खासे पहलवानकी ज़रूरत होगी। जब कुली इसे न उठा

सकेगा, तो इसे हल्का करनेके लिये तुम्हे इसमेसे एक एक पुस्तक निकालकर बाहर फेंक देनी पड़ेगी। ऐसा मौका न आये, इससे यदि थोड़ी कम पुस्तके ले जाओ, तो कौनसा काम बिगड जायगा ?'

वह हँसा। मुझे लगा—मेरी सलाह उसे जँच गयी। परतु अल्मारीके ऊपरी खानेमे कतारसे रखी हुई पन्द्रह-बीस पुस्तकोंकी ओर देखता हुआ वह बोला,—'टॉल्सटॉय अच्छा है ! है न ?'

टॉल्सटॉयको उड़ानेका उसका इरादा स्पष्ट दीख रहा था। परतु वह पूरा न हो इसलिये रग बदलकर टॉल्सटॉयके साहित्यकी यथेच्छ निंदा करनेके लिये मै कोई किसी साप्ताहिक पत्रका सम्पादक या उप-सम्पादक न था।

मैने कहा,—'प्रत्येक तरुणको टॉल्सटॉय अवश्य पढ़ना चाहिए !

उसे जैसे मुँह-माँगी मुराद मिल गयी। उसने टॉल्सटॉयकी सारी पुस्तकें अल-मारीसे नीचे निकाली।

उनमेकी एक-दो पुस्तकोंके सहजभावसे पन्ने उलटते हुए मैने कहा,—'ये सभी क्यो ले जा रहे हो ?'

'किसी लेखकको सम्पूर्ण पढनेमे ही मजा आता है। किसी गवैयेकी भिन्न-भिन्न रागोंकी चीजे सुनते समय जैसा आनंद होता है—' उसने जो कहा वह असत्य न था। नदीमे रह-रहकर डुबकियाँ लगानेकी अपेक्षा तैरकर उसपार पहुँच जानेमे कोई विशेष बात होती है, इसे कौन अस्वीकार करेगा ?

पर—

मैने उससे कहा,—'बीच-बीचमे मुझे भी टॉल्सटॉय पढ़नेकी सनक आ जाती है। यदि ये सभी पुस्तके तुम ले जाओगे तो—

उसने आधी पुस्तकें अपने ट्रंकमे भर लीं और आधी फिरसे अल्मारीमे रख दीं।

इस बातको तीन महीने बीत गये। एक दिन अल्मारीमे कहीं दीमक नजर आयी, इसलिये मैं सारी पुस्तकोंको साफ झटकारकर फिरसे अल्मारीमे रखने लगा। बीचहीमें टॉल्सटॉयकी वे पुस्तकें मेरे हाथ लगी। उनके पन्ने उल्टाते हुए मेरे मनमे आया,—व्यर्थ ही मैंने इन्हें अपने पास रख लिया। गत तीन महीनोंमे मैने इनका एक भी अक्षर नहीं पढा। उस दिन राजारामको इन्हें ले जाने देता तो उसने इन्हे अभीतक पढकर खत्म भी कर दिया होता।

बैलकी नादके कुत्तेकी कहानी मुझे याद आयी। उसे खुद घासकी जरूरत न थी। परतु उसे खानेके लिये जो बैल आते थे उनपर भूँकने और उन्हे भगा देनेमे जरूर उसे बड़े पुरुषार्थका अनुभव होता था। मैने मनमे कहा, – अन्तरगमे मनुष्य प्राणी भी उस कुत्तेकी तरह ही मूर्ख है। जिनका स्वय उसे कोई उपयोग नहीं है उन चीजोंका लालच उससे नही छोडा जाता। 'मनुष्यको कितनी जमीन लगती है?' इसका उत्तर अन्तमे 'अधिकसे अधिक साढे-तीन हाथ' ही है। परतु सिकन्दरसे लेकर हिटलरतक जगका इतिहास देखिये तो प्रत्येक मनुष्यकी कोशिश सारी पृथ्वीको जीत लेनेके लिये चल रही है।

और इस लोभका परिणाम?—

बम्बईकी चालोको मधु-मक्खियोंके छत्तों या दीमकके बमीठोंका स्वरूप प्राप्त होकर मलबार-हिलपर बने बडे बडे बॅगले खाली पड़े रहते हैं। सुदर सुदर वस्त्रोंसे शहरकी कपडेकी दूकाने भरी रहते हुए गॉवकी लाखों स्त्रियोको चीथड़ोसे ही अपनी लज्जा ढॉकनी पड़ती है। दवाके कारखानोंमे नये नये दवाये बनते हुए बहुतसे गरीबोंपर दवाके अभावमे चुपचाप मौतके साथ चल देनेकी बारी आती है। एक एकके बैंक-बुकमे करोड़ो रुपये होते हुए एक रुपयेके लिये – चादीके एक हीन टुकड़ेके लिये – अनेक अभागिनी स्त्रियोको अपने प्यारे बच्चेपर किवा उसीके बराबर प्रिय अपने शीलपर पानी फेरना पडता है। मनुष्यके आवश्यकतासे अधिक लोभने ही ससारके सारे दुखोंको निर्मित किया है। यह विकृत लोभ मनुष्यके अन्तर्मनमे छिपकर न बैठा होता, तो टॉलस्टॉयकी पुस्तकोको रख लेनेका मोह मुझे क्यों होता?

सन्यासीको एक गॉवमे तीन दिनसे अधिक नहीं रहना चाहिए, चौथे दिन दूसरे गॉवमे जाकर ही अपने उदरका निर्वाह करना चाहिए, इत्यादि हमारे पुराने नियमोंका कारण अब मेरी समझमे आया। त्याग सन्यासीकी आत्मा है। परतु मनुष्य एक स्थानपर तीन दिनसे अधिक समय बिताये तो उसके हृदयमे उस स्थानके प्रति अपनत्वकी भावना पैदा हो जाती है। वह उस स्थानको घर कहने लगता है। धीरे धीरे वह खाली घर उसकी ऑखोंको अजीब-सा दीखने लगता है। उसे भरनेके लिये वह भरसक कोशिश करता है। और इस कोशिशमे बाहरके हजारों लोगोंके लिये आवश्यक रहनेवाली चीजे वह अपने घरमे लाकर भरता है। अन्तमे मुहरोंसे भरे हंडेपर बैठे हुए नागकी तरह उसकी दशा हो जाती है!

मनुष्यका अँधाधुँध स्वार्थ, उसका राक्षसी लोभ, उसकी मालकी हककी विलक्षण कल्पना आदिने मुझे बिलकुल बेचैन कर दिया। धुएँसे भरे कमरेमे क़दम रखते ही जिस तरह दम घुट जाता है उसी तरह मेरे मनकी दशा हो गयी।

नीचे घंटी बजी।

मैने द्वार खोलकर देखा। डाक आयी थी। डाकिया द्वारा दिये गये पत्रोंको मैं जल्दी जल्दी देखने लगा। मेरे भतीजेका भी एक पत्र था उसमे। मुझे लगा बहुधा उसने वे बची हुई टॉल्सटॉयकी पुस्तके मँगायी होंगी। मन-ही-मन यह निश्चय करके कि आजकी डाकसे उन्हे भेज दूँगा, मैने उसका पत्र खोला। उसने लिखा था —

'आप नाराज हो जायेंगे, इसलिये इतने दिनोतक पत्र न लिखा। परतु आज मुझे खुद अपने पर शर्म आने लगी। बिलकुल न रह गया इसलिये लिख रहा हूँ।

इतनी पुस्तके मै यहाँ ले आया हूँ! परतु अभीतक उनमेकी चार भी पूरी नहीं पढी हैं। मुझे अवकाश नहीं मिलता या कि मै जन्मसे ही आलसी हूँ, कौन जाने? परतु अलमारीमे रखी आपकी ये सारी पुस्तके मेरा उपहास कर रही हैं। ऋणीके द्वारपर साहूकार धरना देकर बैठे उस तरह लग रही हैं वे मुझे! उसमे भी जब टॉल्सटॉयकी पुस्तकोंपर नजर जाती है तब मन-ही मन मै बहुत लज्जित हो जाता हूँ।

आपके पाससे मै सम्पूर्ण टॉल्सटॉय ला रहा था! नहीं लाया सो अच्छा ही हुआ। मनुष्यके लोभमे उपभोग किंवा उपभोगकी अपेक्षा स्वामित्वका ही भाग अधिक होता है। नही तो आपके पाससे लायी हुई टॉल्सटॉयकी पुस्तके मैने कम-से-कम थोडी-बहुत तो न पढी होती! उनके मेरे पास रह जानेके कारण आपको अवश्य बहुत अडचन हुई होगी। अब वहाँ जानेवाला कोई मनुष्य मिलते ही मै उन्हे लौटाये देता हूँ।'

मै अपनी हँसी न रोक सका। मनुष्य अपनेपरसे जग पहचानता है, यह कहावत सच होती तो हम दोनो यह समझ लेते कि आग्रहसे रोकी गयी या आग्रहसे लायी गयी पुस्तके कोई पढी थोड़े ही जाती हैं?

परतु यह आग्रह मनुष्य क्यों करता है? वह ऐसा हठ क्यो करता है कि जिस चीजका उपभोग वह नहीं कर सकता वह चीज उसके पास रहे? इसका कारण

एक ही है। हमे उस चीजको जब जरूरत होगी तब वह हमे मिल ही जायगी इसका उसे विश्वास नही होता। मनुष्यकी आवश्यकतासे अधिक सग्रह-बुद्धिकी जड़में आजकी विषम समाजरचना ही है। आजकल मालकी हकके बिना मनुष्य किसीका भी उपभोग नहीं ले सकता। फिर वे रेडियोके गीत हो किवा बागमे खिले हुए फूल हो ! उसकी संग्रह-बुद्धि बलवती होती जाती है इसका कारण यही है। मेरे भतीजेको, जो वहॉ शिक्षक होकर गया था, यदि यह पहले ज्ञात हो जाता कि वहॉ टॉल्सटॉयकी पुस्तके हैं और जब उसे उनकी जरूरत होगी तब वे उसे मिल सकेगी, तो उस भारी ट्रकको अधिक भारी करके ले जानेकी झझट वह भी क्यो करता ?

●●●

१२

बायाँ हाथ

लहलही और कोमल मटरकी फलियोंसे भरी हुई उस टोकनीको देखकर, मेरे मुँहमे पानी भर आया। मै एक छोटे बच्चेकी तरह बडी अधीरतासे आगे बढा। मेरे दाहिने हाथमे सब्जीमे भरे हुए दो-तीन झोले थे। इसलिये मै थोड़ा झुका और फलियोको हाथमे लेकर देखनेके लिये मै उन्हें बाये हाथसे उठानेकी कोशिश करने लगा। परतु मेरे हाथ एक भी फली न लगी। उस टोकनीकी मालकिनने मेरा हाथ पकड़कर दूर हटा दिया। अपने बच्चेको भगाकर ले जानेवाले मनुष्यपर शेरनी भी इतनी फुर्तीसे कभी न झपटती होगी। क्षणभर उसके इस बर्तावका मतलब ही मेरी समझमे न आया। परतु दूसरे ही क्षण अपनी कलाईकी ताकतको शोभा देनेवाले स्वरमे वह वीरागना बोली, – 'बोहनीके पहले बायॉ हाथ क्यो लगाते हो मेरी फलियोंमे?'

मैंने चुपचाप सब्ज़ीके झोले बायें हाथमें लिये और दाहिने हाथसे टोकनीमे रखी फलियॉ उठाई। उन्हें देखते हुए मै मनमें कह रहा था – 'बेचारी देहाती औरत! उसकी इस भोली श्रद्धाको कि, यदि पहला ग्राहक दाहिने हाथसे मेरे मालको स्पर्श करे, तो मुझे दो पैसेका अधिक लाभ हो जायगा, अस्वाभाविक कौन कहेगा? ठीक मुहूर्तपर विवाह होनेसे गृहस्थी सुखमय होती है, ज्योतिषी द्वारा

निकाले गये क्षणपर यदि चित्रपट आरभ किया जाय, तो वह लाभदायक होता है इत्यादि ढकोसलोंका जिस समाजमे आज भी खुले आम हुडदग मचा हुआ है वहॉ यदि गॉवकी एक काछिन बायें हाथको अशुभ मानकर तिरस्कारसे दूर हटा दे और उसे अछूत माने, तो आश्चर्य ही क्या है ?

परतु बाजारसे घर लौटते समय मेरा बायॉ हाथ झोले पकड़नेके लिये किसी भी तरह तैयार नही होता था । धीरे धीरे मुझे उसकी शिकायत सुनाई पडने लगी । वह पुटपुटा रहा था, – 'अभी कुछ समय पहले उस काछिनने मेरा अपमान किया, तब तुमने मेरा पक्ष लेकर उससे एक शब्द भी न कहा । सभामे इतने लम्बे लम्बे भाषण देते हो, तो उस मरकही भैसको दो बाते तो कम-से-कम सुना देते तुम ! सिर्फ बोझके वक्त ही तुम्हें मेरी याद आती है । सब्जीके झोलोंका बटवारा करते समय तो दाये और बाये हाथमे तुम कोई भेद-भाव नही करते । परतु उस सब्जीको खाते समय जरूर – कितने दिनोतक मै यह अपमान सहन करता रहॅू ? बाजार जाता हॅू, तो कोई अपने मालको हाथ नही लगाने देता । साहित्य-क्षेत्रमे जाता हॅू तो वहॉ भी लेखक लोग दाये ओर बाये हाथमे भेद-भाव करते ही हैं । लेखक कितना भी प्रगतिवादी हो, फिर भी यही लिखता है कि तानाजी शिवाजीका दाहिना हाथ था । तानाजी शिवाजीका बायॉ हाथ था, यह लिखनेकी एक भी लेखकको हिम्मत नही होती !

मेरे घर पहॅुचतेतक उसकी यह शिकायत जारी थी । परतु उसकी ओर ध्यान देनेके बजाय, मै विचारोमे खो गया । बायें हाथकी उन क्रोध-भरी बातोंको सुनकर, मेरे बचपनकी एक पाठ्य-पुस्तककी 'डाव्या हाताचा अर्ज '* इस शीर्षककी कविताका मुझे स्मरण हो आया ! यह सोचकर कि इतने रूखे नामवाली कवितामे कोई काव्य होनेकी संभावना ही नहीं है, मैने वह ठीकसे कभी भी न पढ़ी थी और इसके लिये मुझे पछतानेका मौका भी न आया था ! उस कविताके बारेमे हमारी तरह हमारे परीक्षकोका भी खराब मत था । कदाचित् इसीलिये अथवा किसी अन्य कारणसे हो, उन्होंने उसे एक बार भी हाथ नही लगाया ! कॉग्रेसकी अनुनय-विनयवाली राजनीतिके प्रति अंग्रेज सरकार जितना ध्यान देती थी, उतना ही ध्यान उस समयके परीक्षकोंने उक्त कवितापर दिया, यह कहनेमे कोई हर्ज नहीं ।

परतु बचपनमे मैंने उस कविताको ठीक तरहसे न पढ़ा, इसका मुझे अब

* 'बायें हाथकी फरियाद '।

जरूर बड़ा खेद होने लगा। ससारकी विषमताको देखकर क्षुब्ध होनेवाले कवि आजकल पैदा होते हैं, परतु तीस-पैंतीस वर्ष पहले दलितोका पक्ष लेनेकी अपेक्षा फूलोसे प्रेमालाप करने, अथवा इस जगमे जिसका अस्तित्व ही नही है उस सुन्दरीको सबोधित करके प्रणय-गीत लिखनेमे, उस समयके कवियोको अधिक आनद हुआ करता था। ऐसे समयमे 'डाव्या हाताचा अर्ज' लिखनेवाला कम-से-कम एक प्रगतिवादी साहित्यिक पैदा हुआ, यह बात —

मैं सोचने लगा — उस कवितामे उस कविने क्या क्या लिखा होगा?

प्रत्यक्ष ज्ञानके अभावमे मनुष्यकी कल्पना जाग्रत होती है अथवा नही, कौन जाने। मुझे लगता है उस फरियादमें बायाँ हाथ कह रहा है — 'जिस तरह हिन्दू समाजने मेहनत-मजदूरी करनेवाले, गदगी साफ करनेवाले और रात-दिन कडा परिश्रम करनेवाले वर्गको निरतर दरिद्रतामे रखा है, उसी तरह शरीरमे मेरी दशा हो गयी है। दाहिनेको यदि मेरा सहयोग प्राप्त न हो, तो एक भी मनुष्यका प्रणाम भगवानको न पहुँचेगा। कुल्हाड़ीसे लकड़ियाँ फाड़नी हो, चूल्हेसे भातका बरतन नीचे उतारना हो अथवा दोपहरको मैदानमे क्रिकेट खेलना हो — सब कार्योंमे दाहिने हाथको मेरे सहयोगकी जरूरत होती ही है। इतना होनेपर भी वह पवित्र, मै अपवित्र! वह शुद्ध, मै अशुद्ध! इस परम-पवित्र दाहिने हाथने कभी शस्त्रसे, कभी लेखनीसे आजतक लाखोके गले काटे होगे। झूठी गवाही और झूठे दस्तावेज बनानेमे इसी दाहिने हाथका हाथ होता है। इसके बावजूद कोई उसे अपवित्र नही मानता और मुझे जरूर —! मुझ जैसे निष्पाप व्यक्तिको 'वाम' विशेषण लगाकर, दाहिने हाथको 'दक्षिण' की उपाधि प्रदान करनेवाली संस्कृत भाषा वेद-भाषा नहीं, राक्षस-भाषा होनी चाहिए! दुनियामे आजकल सब तरफ समताके ढिढोरे पीटे जा रहे हैं। इन सारे बकवादी सुधारवादियोसे मैं कहूँगा, — 'पहले तुम अपने दायें और बायें हाथके बीच समता स्थापित करो, और फिर दुनियामे क्रान्ति करने जाओ!'

खेलमे तल्लीन लड़केको पैरमे चुभे हुए काँटेकी याद खेल समाप्त होतेतक नहीं आती। परतु थकामाँदा जब वह घर लौटकर आता है, तब जरूर उसके पैरमे दर्द होने लगता है। वही हाल मेरा भी हुआ। दिन-भरकी कार्य मग्नतामे, मै बाये हाथकी उस सुबहवाली शिकायतको बिलकुल भूल गया था। परतु शामको घूमते हुए बिलकुल एक ओरके अपने प्रिय स्थानपर जाकर जब मै बैठा, तब अनजाने मेरा

ध्यान बाये हाथकी ओर आकृष्ट हो गया। फव्वारेकी चाबीको घुमाते ही, उसमेसे जिस तरह सहस्रावधि जल-बिन्दु जोरसे ऊपर उडते है, उसी तरह मेरे मनमे कितनी ही विचार-तरगे एकदम उमड़ पड़ीं। आकाशमे कौए कॉव-कॉव करते हुए नीडोंकी ओर लौट रहे थे। परतु मुझे ऐसा भ्रम हुआ कि उनकी उस कर्णकटु आवाजमे बाये हाथकी करुण पुकार ही भरी हुई है। कहीं दूर एक झोपडीमे शाम हो जानेके कारण एक बछडा मॉके लिये रॅभा रहा था। उसके उस अस्पष्ट आर्त स्वरको सुनकर, मेरे मनमे आया कि दुनियाकी मानवता समताके वात्सल्य-भरे स्पर्शके लिये इसी तरह लालायित हो रही है – इसी तरह रॅभा रही है। इस बछडेकी मॉ और आध घटेके बाद जंगलसे लौटेगी, उसे चाटकर अपने पेटसे लगायेगी! परतु दुनियाकी मानवता आज शताब्दियोसे ऑखोंमे प्राण समेटकर समताको पुकारते हुए भी, उसे अभीतक उसके धुँधले-से दर्शन भी नहीं हुए हैं!

मैने ऊपर देखा। आकाशमे चॉदनी चमकने लगी थी। उसका वह चमकना – छिः! चमकना काहेका! अधर हिलाकर बोल रही थी। जैसे कह रही हो, – 'अरे पागल मनुष्य, समता कवियों और सतोंका एक मधुर स्वप्न है। उसका व्यवहारसे तिनका-भर भी सबध नहीं है। इस दुनियामे राजनीतिज्ञोंके स्वप्न सच होते हैं, तलवार-बहादुरोंके स्वप्न सत्य-सृष्टिमे उतरते है। शक्तिकी उपासना करने-वालोंके स्वप्न नक्शेके रगोंको बदल डालते हैं। परतु कवियों और सतोके स्वप्न खेतों और मैदानोंमे उगनेवाली छोटी घासकी तरह जहॉके तहॉ सूख जाते हैं!'

मैं चॉदनीसे पूछनेवाला था, – 'क्या तुम रूसके आकाशमें कभी नहीं चमकी?' इसी समय मेरे दाहिने हाथको किसीने ज़ोरसे काट खाया। इस शकासे कि कहीं बिच्छू न हो, मैं छटपटाता हुआ अपने स्थानसे उठा! परतु मेरे उठकर खडे होनेसे पहले ही मेरा बायॉ हाथ दाहिने हाथकी मददके लिये दौड़ पडा था। इसकी परवाह न कर कि उस हाथको दश करनेवाला प्राणी मुझे भी काट खायेगा, उसने उसे अपनी चुटकीमें पकड़ लिया था। सयोगसे वह एक चींटा ही निकला!

मैंने अपने दाहिने हाथको सबोधित करके कहा, – 'बायें हाथने सुबह जो शिकायत की थी वह बिलकुल सही है। उसपर अकारण अन्याय होता है। लोग उसे व्यर्थ ही अशुभ मानते हैं। मेरे बचपनमे एक कविने जो 'डाव्या हाताचा अर्ज' कविता लिखी थी —'

मुझे बीचहीमें रोककर, दाहिना हाथ बोला, —'उस कविने वह कविता अपने दाहिने हाथसे ही लिखी होगी। कहिये, ठीक कह रहा हूँ न?'

मै क्या उत्तर देता इस प्रश्नका?

पर दाहिने हाथको, जो अपनी झूठी प्रभुताको खोनेके लिये अप्रसन्न था, यद्यपि मैं संतोष न दे सका, फिर भी मेरा मन रह-रहकर यह कह रहा था कि क्या मनुष्य कभी भी इतना सुसस्कृत न होगा कि इस कृत्रिम विषमताको सदाके लिये समाप्त कर दे? निसर्गने मनुष्यके हृदयको बायीं ओर रखा है। हम यह भी सैकडों वर्षोंसे देखते आ रहे हैं कि शिव-पार्वती अथवा सीता-रामके चित्रोमे भगवान अपनी पत्नीको बायें हाथसे ही अपनी ओर खीचकर पास बिठाते हैं। इसके बावजूद बाये हाथपर लगा हुआ अशुभताका धब्बा अवश्य आजतक तनिक भी नहीं पोंछा गया है। इस व्याख्यासे लेकर कि 'मनुष्य समाज-प्रिय प्राणी है' इस व्याख्यातक कि 'मनुष्य युद्ध-प्रिय प्राणी है', मानवका आजतक अनेक प्रकारसे वर्णन हुआ है। परतु उसके बारेमे यह जरूर अभीतक किसीने नहीं कहा कि अपने ही द्वारा बनाये गये पिजड़ेमेंसे बाहर उड़कर जानेकी हिम्मत न रखनेवाला वह एक पॅछी है। वह रूढीका गुलाम है, दम्भका क्रीत-दास है, स्वार्थका भीरू सेवक है। यदि वह ऐसा न होता, तो आजकी दुनियाका इतिहास रूस, जर्मनी, अथवा जापान और हिन्दुस्तानके असख्य निरपराधी लोगोंके खूनसे न लिखा गया होता। बल्कि सज्जनो, वैज्ञानिको और कर्मयोगियोंके सुवर्णाक्षरोंसे वह लिखा जाता।

बिस्तरपर पीठ लगतेतक इसी तरहके चित्र-विचित्र विचार मेरे मनमे चक्कर काट रहे थ। मैंने ऑखे बंद कर बिलकुल चुपचाप पड़े रहनेका प्रयत्न किया। एकदम मेरी ऑखोंके सामने एक आकृति आकर खड़ी हो गयी। वह बायें हाथकी ही थी। भीख मॉगनेके लिये किसी भिखारी द्वारा आगे बढाये गये हाथकी तरह वह दीख रहा था। मुझे ऐसा लगा कि यह हाथ आर्त स्वरसे एक ही याचना कर रहा है, —'मुझे न्याय दीजिये! मुझे न्याय दीजिये!'

मैंने करवट बदली। मेरी कल्पना थी कि कम से-कम अब तो वह हाथ मुझे न दिखेगा। परतु क्षणार्धमें मुझे वह आकृति फिर दिखायी देने लगी। अब वह भिक्षाके लिये आगे बढा हुआ ग़रीब हाथ न था। झल्लाये हुए नागके फनकी तरह वह सीधा खड़ा था। मै टकटकी लगाकर उस हाथकी ओर देखने लगा। बात की-बातमे उस हाथकी पॉचो ॲगुलियोंसे आग धधकने लगी। उस हाथके

भीतर जो ज्वालामुखी आजतक सुप्त था कहीं वही तो नहीं जाग्रत हो गया है ? कुछ भी मेरी समझमें न आया। उस भडकनेवाली अग्नि-ज्वालाओंके कारण आसपासका काला अंधकार मुझे और भी अधिक भीषण लगने लगा। उनसे निकल रही चिनगारियाँ जैसे प्रतिशोधकी भाषामें कह रही थी – 'नहीं, इसके आगे अपनेपर होनेवाले किसी भी अन्यायको हम एक क्षणके लिये भी बरदाश्त न करेंगी !' इस तरह गर्जना करती हुई वे ज्वालाएँ तांडव-नृत्य करने लगी।

इस अद्भुत दृश्यकी ओर मैं टकटकी लगाकर देख रहा था। इसी समय ठीक बीचकी ज्वालासे धीरे धीरे एक मूर्ति प्रकट होने लगी। दूसरे ही क्षण मेरी आँखोंके सामने एक सुंदर तरुणी खडी हो गयी। इस सुदरीने अपने रूपके अनरूप केश-रचना और वेश-भूषा क्यों नहीं की, इस पहेलीको मैं किसी भी तरह हल न कर सका। उसके शरीरपर सिर्फ एक मलिन वस्त्र था। उसके खुले हुए केश मनमाने उसकी पीठपर लहरा रहे थे। कहते हैं कि स्त्रियोंको आभूषणोंका बड़ा शौक होता है। परतु उसके शरीरपर एक फूटा मणि भी नहीं दीख रहा था। भय और कुतूहल-मिश्रित स्वरमें मैंने उसका नाम पूछा।

उपहाससे हँसते हुए उसने उत्तर दिया, – 'मेरा नाम ? मेरा नाम तू नहीं जानता ? ससारके आरंभसे प्रत्येक उसे जनता है। माँकी हैसियतसे पुरुषोंने मेरी पूजा की है। पत्नीकी हैसियतसे तूने मुझसे प्रेम किया है। परतु अब मुझे यह पूर्ण रूपसे विश्वास हो चुका है कि, वह पूजा और प्रेम मुझे कैद कर रखनेवाले सुवर्णके पिंजड़े हैं। पुरुष स्त्रीको दासीके रूपमें चाहता है – अपने भोग-विलासके लिये चाहता है ! परंतु समान अधिकार उपभोगनेवाली मित्रानीके रूपमें नहीं चाहता। रामने पिताका वचन पालन करनेके लिये चौदह वर्षका बनवास स्वीकार किया ! क्या, वह अपनी सीताके लिये अपने सिंहासनको ठुकराकर फिरसे बन नहीं जा सकता था ? परतु उस समय उसे राज-धर्मकी याद आयी। कुलकी प्रतिष्ठा, स्वय अपनी महत्त्वाकाक्षा – इस प्रकारकी एक नहीं, दो नहीं बल्कि सहस्रों बातोंकी पुरुष बडी कद्र करते हैं। उन्हें परवाह नहीं होती, तो सिर्फ एक बातकी – उनके लिये सर्वस्वका बलिदान कर देनेवाले स्त्री-मनकी। उसका सुख-दुख, उसका विकास, उसका ध्येय – पुरुषोंको उसके मनकी मुँदी-मारकी कभी भी कल्पना नहीं होगी। खिला-खिलाकर अपने मनका मनोरंजन करनेवाले उसके मालिकको पिजड़ेमें बंद तोतेके दुखका कभी पता नहीं चलता। सर्कसके सिंहको क्या दुख है, यह बात घडी-भरके लिये

मनोरंजनको आये दर्शकोकी समझमे नहीं आती। पेटके लिये लिपिक बननेवाले कलाकारकी वेदनाका पता काले बाजारवाले उसके मालिकको नहीं चलता। द्रौपदी-वस्त्र-हरण आज भी दुनियामे जारी ही है। सीताका वनवास आज भी समाजमे दिखायी दे रहा है। तारामतीको आज भी डोमके घर दासी होकर कडी मेहनत-मजदूरी करनी पड रही है।'

शायद वह और भी बहुत कुछ कहना चाहती थी। परंतु कनिष्ठिकाकी ज्वालासे पैदा हुई एक नन्ही आकृतिने उसके मुँहपर हाथ रखकर उसे चुप कर दिया। वह नन्ही पर ढीठ मूर्ति किसकी थी यह मेरे ध्यानमे न आता था। इसी समय वह मूर्ति खिलखिलाकर हँसती हुई मुझसे बोली, – 'अभीतक नही पहचाना मुझे? तुमने मुझपर कितनी कविताएँ बनायी होगी। फिल्मोमे मेरे दुखोंको दिखाकर दर्शकोकी आँखोमे आँसू भी उत्पन्न किये होंगे। परतु मुझे जरूर यह बिलकुल नही लगता कि तुम मेरे सच्चे दुखको जान पाये हो। तुम लेखकको, और लेखक हमेशा कहते है कि बच्चे फूल होते हैं। फूलोके पूर्ण रूपसे खिल जानेपर यदि उन्हे भगवानपर चढाया जाय, अथवा उनसे इत्र निकालकर उसकी सुगध घर घर फैल जावे, तभी उनका जीवन वास्तवमे सार्थक होता है। परतु आजकी दुनियामे हम जैसे फूलोंकी राशियोको अग्निकुण्डमे डाला जा रहा है, कलियोको खिलनेमे पहले ही तोड़ा जा रहा है, वे मसली जा रही हैं! मनुष्य अब माली नही रहा है, वह कसाई हो गया है। हमारे विकासकी ओर, इस ओर कि हम मनुष्यकी हैसियतसे सुखसे जिन्दा रहे, इस प्रयत्नकी ओर कि हमारे गुणोंके कारण जगत् अधिक सुन्दर बने, एकका भी —'

उसीके नजदीककी दूसरी अग्नि-ज्वालासे उत्पन्न हुई आकृतिने उसे आगे बोलने ही न दिया। दाँत-होंठ चबाती हुई वह आकृति बोली, – 'हम दलित लोग युगोसे यह सुनते आये हैं कि, मनुष्यके भीतर ईश्वर सोया रहता है। हमे लगा कि यह सोया हुआ ईश्वर एक न एक दिन जागेगा। हमारी चिल्लाहटसे ही क्यो न हो, उसकी निद्रा भग होगी। परतु हमे अनुभव बिलकुल विपरीत हुआ। मनुष्य-के भीतरका राक्षस जो बीचमे सोया हुआ था, इस बीसवीं शताब्दिमें फिरसे जाग्रत हो गया है। विद्या, विज्ञान, सस्कृति इत्यादिके सुंदर नकली चेहरे पहनकर, वह राक्षस भगवानकी हैसियतसे, आजकी दुनियामे बाजे-गाजेके साथ अकड़कर घूमने-की कोशिश कर रहा है। परतु अब हम इसके आगे उसके इस मायावी रूपसे

धोखा नही खायेंगे। पानीसे भरे हुए कुएके किनारे प्याससे व्याकुल होनेवाले हिन्दुस्तानके हरिजनोसे लेकर, अमरीकामें छले जानेवाले नीग्रोतक सारे दलितोको अब यह बात मालूम हो गयी है कि आज जगमे देवताओका राज्य नही, राक्षसोका राज्य है।'

अँगूठेके नजदीकवाली अँगुलीकी अग्निज्वालासे प्रकट हुई प्रचण्ड आकृति एकदम बदलेके स्वरमे बोली, – 'ठीक! बिलकुल ठीक! किसानो, मजदूरो और श्रमिकोका यही अनुभव है। आजकी दुनियामें जहाँ तहाँ बकासुर फैले हुए हैं। वे गरीबोको एकदम नही खाते। धीरे धीरे चटखारियाँ भरते हुए उनके रक्त-माँसपर दावते उडाते रहते हैं। हीरोंकी राशिपर लोटकर भी, उनकी पैसोकी भूख क्षण-भरके लिये भी कम नही होती। अपने ही सरीखे मनुष्योसे जानवरोंकी तरह कड़ा काम लेकर भी शर्मसे उनकी गर्दन नीचे नही झुकती! यह दासता इसके आगे हम बिलकुल सहन न करेंगे। इन्हे जलाते हुए हम भी जल जायेंगे। पर —'

अँगूठेसे निकल रही अग्नि-ज्वालाकी ओर मैं चौंककर मुडा। 'यह दासता इसके आगे हम सहन नही करेंगे' – यही उद्गार उसमेंसे भी बाहर निकल रहे थे। उस ज्वालामेंकी आकृति किसी भी तरह मुझे दिखायी नही देती थी!

मै ध्यानसे देखने लगा। एकके बाद एक – इस तरह अनेक आकृतियाँ मेरी आँखोके सामनेसे सरकने लगी। यह गाधीजीकी पवित्र भारतभूमि, यह जापानसे लड़नेवाली बहादुर चीनकी भूमि, यह आजादीके लिये छटपटानेवाली छोटी-सी ग्रीसकी भूमि —

वे पाँचो अग्नि-ज्वालाएँ एकदम अन्तर्धान हो गयीं। परतु वह बायाँ हाथ जरूर अभीतक मुझे दीख रहा था। अब उसकी मुट्ठी घूँसेकी तरह मजबूत बँधी हुई थी। उन सब अग्नि-ज्वालाओंका तेज उस घूँसेमे आकर एकत्रित हो गया था। वह मजबूत घूँसा दीनताके स्वरमे 'मुझे न्याय दीजिये' कह कर भीख नही माँगता था। जैसे वह यह दृढ प्रतिज्ञा कर रहा था कि जबतक न्याय न मिलेगा, मैं झगड़ता ही रहूँगा!

● ● ●

१४

स्त्री

मैंने सार्वजनिक रसोई-घरके बारेमें किसी जगह कुछ उल्लेख किया था, उस संबंधमें एक महाशयने हालहीमें मुझे एक विद्वत्ताप्रचुर और मनोरंजक पत्र लिखा है। इस पत्रमें लेखक महाशय कहते हैं,—'पकाओ, परसो और जूठन समेटोकी घानीमें रात-दिन जुती रहनेवाली स्त्रियोंको, सार्वजनिक रसोई-घरोंके कारण, निःसन्देह छुटकारा मिल जायगा। एक रसोई-घरके पीछे, हजारों मेहनत-मजदूरी-के जीको ऊबा देनेवाले काम, और वे किस प्रकार पूरे होंगे इसकी चिन्ताएँ, रात-दिन खड़ी रहती हैं। इन सबसे मुक्त हो जानेवाली सारी स्त्रियाँ उच्च संस्कृति-की बड़े उत्साहसे उपासना नहीं करेंगी क्या?'

उक्त पत्र-पंडितके इस प्रश्नका उत्तर बिलकुल सरल है। यदि यह कहें कि, हममेंसे हरएकको किसी न किसी रीतिसे, इसका अनुभव होता ही है, तो कोई हर्ज नहीं। स्त्रियोंको चिंता-मुक्त कर देनेका कोई भी उपाय, यदि यह लेखक खोज़ निकाले, तो एक दिनमें ही, अलौकिक पुरुषके रूपमें दुनिया उसे पहचानने लगेगी! परंतु यह उपाय उतना सुलभ नहीं जितना कि ये महाशयजी समझ रहे हैं। मनुष्य-स्वभावके एक संपूर्ण रूपसे मूलभूत वैशिष्ट्यकी ओर उक्त लेखकने ध्यान नहीं दिया है, यह अत्यन्त खेदसे कहना पड़ता है। सिर्फ तात्त्विक दृष्टिसे देखा जाय, तो संसारमें चिंताओंसे मुक्त होना कौन नहीं चाहता?

चिंता यानी अनुस्वारयुक्त 'चिता' ऐसा वर्णन एक कविने किया है, वह हममेसे हरएकको पद-पदपर जॅच जाता है। परतु चिताकी झॅझटसे बचनेके लिये, मनको व्यग्र करनेवाले उद्योग-धॅधोको ही बन्द कर देना चाहिए, यह बात जरूर किसीको भी न जॅचेगी। मेरा ही उदाहरण लीजिये। इस समय यदि कोई मेरे अन्त.करणकी साक्षी ले, तो उसे यही पता चलेगा कि, इस लेखके लिखने-की झॅझटसे मुक्त होनेके लिये मैं अत्यन्त उत्सुक हो गया हूॅ। परतु इसका अर्थ यदि कोई यह लगाये कि, पत्र-पडित बननेकी झॅंझटसे कोई आकर मुझे मुक्त कर दे, तो वह मेरे विषयमे बडा अन्याय होगा। मनुष्य जिस बातको झॅंझट समझता है और जिसके लिये उसे चिता होती है, उसके प्रति उसे प्रेम होना सभव ही नही है यह किस तर्कशास्त्रसे सिद्ध होता है? वैसे देखा जाय तो वस्तुस्थिति बिल-कुल उल्टी होनी है। प्रेमके गर्भसे ही चिताका जन्म होता है। स्त्रियोको घरके काम सम्हालनेमे कष्ट होता है – त्रास होता है, यह सच है। परतु तुलनात्मक दृष्टिसे देखनेपर यह प्रतीत होगा कि, जिस स्त्रीका घरके प्रति अधिक प्रेम होता है, उसे ही ये कष्ट अधिक होते हैं। पति और बच्चोंके लिये तो स्त्रियॉ बडी चिंतित रहा करती हैं। कल यदि कोई बच्चोंके प्राण ले ले और पतियोको भगा ले जाय, तो उच्च सस्कृतिकी उपासना करनेके लिये अखिल महिला समाज स्वतत्र हो जायगा, इसमे शक नही। परतु इसका अर्थ सिर्फ इतना ही लेना चाहिए कि, सस्कृतिके विषयमे चिता करने लायक अवकाश उन्हे मिल जायगा। उच्च सस्कृति लीजिये अथवा पालनेके इरादेसे लाये हुए, पर बादमे भाग गये बिल्लीके बच्चेको लीजिये – किसी भी बातके लिये, चिंता करते रहना स्त्रियोका स्वभाव-धर्म ही होता है।

मुझे लगता है कि स्त्रियॉ, और उच्च सस्कृति प्राप्त करनेके लिये, उन्हें घरके कामोंसे मुक्त करनेकी आवश्यकता – इनके विषयका यह पाडित्य उन उच्च-वर्गीय लोगोंमे ही पैदा होता होगा जो धनधान्यसे सम्पूर्ण रूपसे सम्पन्न होते हैं। इस विषयकी एक विचित्र बात चटसे मनको खटकने लगती है। स्त्री-दाक्षिण्यका बीड़ा उठाकर, स्त्रियोंको रसोई-घरके बाहर निकालनेवाले ये सारे विद्वान, मेहनत-मज-दूरी करके निर्वाह करनेवाली करोड़ों स्त्रियोके अस्तित्वको बडी सुविधासे भूल जाते हैं। शायद सर्वसाधारण स्त्रीको वे गृहस्थीके कोल्हूमे जुता हुआ एक अभागा जीव ही समझते हैं।

ईश्वरको साक्षी करके कहना है, तो सामान्य मनुष्यका जीवन भी उसी तरह-

का होता है, यह स्वीकार करना चाहिए! प्रत्येक सामान्य पुरुष जैसे किसी मत्री-मण्डलका सभासद हैं, इस धारणाको लेकर, ये विद्वान लोग उनके विषयमे विचार किया करते हैं। उनकी बातोसे यही मालूम होता है कि, प्रत्येक पुरुष शासन करनेके लिये, पराक्रमके पर्वतके शिखरपर पहुँचनेके लिये दुनियाकी मरुभूमिमे अपने चरण-चिन्ह छोड जानेके लिये तथा इसी प्रकारके अगणित महत् कार्योंके लिये पैदा होता है! एक वर्ग विशेषके बारेमे यह बात थोडी-बहुत सच होगी। सरदारोपर बहुधा गृहस्थीके कोल्हूके बैल होनेकी बारी नही आती। पर सरदार-नियॉ भी कहॉ गोथानकी गाये होती हैं? मोटरे उड़ाना और ब्रिज खेलना ही जिस उच्च सस्कृतिके मुख्य लक्षण हैं, उसकी आराधना करनेके लिये, उच्च वर्गके पुरुषोंकी तरह, उस वर्गकी स्त्रियॉ भी, बारह महीने चौबीस घटे खाली ही रहती हैं। परतु मेहनत मजदूरी करके जिदगी बितानेवाले आजके करोडो पुरुषोका प्रतिनिधि, साधारण मनुष्य, अपनी स्त्रीकी तरह ही, ऐसी सस्कृतिसे हजारो मील दूर होता है।

सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो सामान्य पुरुषको अपने जीवनमे अपनी पत्नीके बराबर भी स्वतत्रता प्रायः नहीं मिलती। सामान्य स्त्री, बिलकुल छोटे तरकेकी भी क्यो न हो, अपने घरकी स्वामिनी होती है। वहॉ वह एक रानीकी तरह, बिना किसी हिचकिचाहटके अपना शासन चला सकती है। परतु सामान्य पुरुषसे दफ्तरमे अपने अफसरके भलेबुरे हुक्मोको नॉदिया बैलकी तरह माननेके सिवा और कोई दूसरी बात करते ही नहीं बन सकती। एक ईटपर चुपचाप दूसरी ईट रखो, हूँ या चूँ न करते हुए एक नीरस सख्यामे दूसरी नीरस संख्या मिलाओ — ये हैं उनके काम!

स्त्रीकी दुनिया कितनी ही छोटी हो, फिर भी वह उसकी मालकिन होती है। उस छोटी-सी दुनियामे वह मनमाना परिवर्तन कर सकती है। वक्त मौकेपर किरानेके दूकानदारको दो-चार बातें सुनाकर, उसकी चालाकीका आसानीसे भॅडा फोड़ देती है। परतु कोई क्लर्क अपने साहबके बारेमे यदि यही प्रयोग करे, तो उसी क्षण उसका उस दफ्तरसे 'टीनपाट' हुए बगैर न रहेगा। 'टीनपाट' शब्द-प्रयोग यदि बिलकुल दहकानी मालूम होता हो, आइये, हम यह कहें कि, उच्च सस्कृतिकी उपासनाके लिये वह स्वतत्र हो जाता है। सबसे महत्त्वकी बात यह है कि स्त्री अपने घरोदेमे जो काम करती रहती है, उसका थोड़े ही अंशमें क्यो न

हो, उसकी वैयक्तिक भावनाओ और निर्मितिकी उमगसे सबध होता है। फूलदानीमे फूल किस तरह रखे जा सकते है जिससे वे सुन्दर दीखे, अथवा बैठकखानेमे मेजो और कुर्सियोको किस आकर्षक ढगसे सजाकर रखा जाय, यह वह स्वय अपनी रुचिके अनुसार निश्चित कर सकती है। परतु यदि कोई राज स्वयं अपनी सौंदर्य-दृष्टिको खुश करनेके हेतु ईंटोको रचने लगे, तो उसकी नयी सूझ उसे, और बहुधा दूसरोंको भी, चक्करमे लाये बगैर न रहेगी। गलीचेमें पैबद लगाते समय, रगसगतिको ध्यानमे रखकर, स्त्री चाहे जो टुकडा चुन सकती है। परतु किसी दफ्तरका कोई छोकरा, पार्सलमे टिकट लगाते समय, यदि इस रगसगतिकी दृष्टिका उपयोग करे, तो काम नही चलेगा। रसोईदारिन हर समय रसोई चतुराईसे ही बनाती हो, यह बात नही है। परतु उसके मनमे आ जाय, तो कोई भी रसदार सब्जी बनाते समय वह अपना विशेष कौशल सहज ही दिखा सकती है। पर खाते-बहीमे भिन्न-भिन्न रकमोंको दर्ज करते समय, क्लर्कको यह कौशल दिखानेकी स्वतत्रता, स्वप्नमे भी न मिलेगी।

उस पत्र लेखकके मतानुसार रसोई-घरसे छुटकारा पानेपर स्त्रियॉ जिस उच्च संस्कृतिका पालन-पोषण कर सकेगी उसकी भी सच्ची दशा क्या है? इस संस्कृतिसे मै भलीभॉति परिचित हूँ। मुझे यह नहीं लगता कि उसे प्राप्त करनेके लिये किसी मनुष्यको अवकाशकी जरूरत है। निठल्ले धनिकोके जीवनपर इस सस्कृतिके इतने दुष्परिणाम हुए हैं कि करोड़पतियोंके किसी भी मनोरजनसे — जूएसे — नही, उनकी परोपकार बुद्धिसे भी वह अत्यन्त भयकर चीज है, ऐसा मेरा विश्वास हो चुका है। यदि किसीने कहा कि, वेल्जका कोई बिलकुल अप्रसिद्ध कवि ॲग्लैंडके महाकविसे श्रेष्ठ है, तो निश्चित रूपसे समझ लीजियेगा कि, ऐसा कहनेवालेकी सस्कृति उच्च है। मनुष्यके विषयकी सहानुभूतिको खो देना ही इस अत्युच्च संस्कृतिका अर्थ होगा। छुट्टी लेकर घर आये किसी खलासीसे फुटबालके मैचके विषयमे, बाइबिलके विषयमे, बीयरके विषयमे, डर्बीकी रेसके विषयमे, देशभक्तिके विषयमे किबहुना उसे जिन जिन बातोंके विषयमे गप्पे मारनेकी इच्छा है, उन उन बातोंके विषयमे बातें करनेमे असमर्थ कैसे हो, यह जरूर वह उच्च सस्कृति उत्तम रीतिसे सिखाती है। साहित्यकी ओर अति गभीर दृष्टिसे देखना भी इस गगन-चुम्बी सस्कृतिका ही एक लक्षण है। यह सस्कृति वीरान है, सस्ती है, उद्धत है, निर्दय है, सब कुछ है। उसमें सिर्फ दो ही बातोका अभाव है — प्रामाणिकता

और स्वाभाविकता। सिर्फ एक 'उच्च' शब्दसे ही उसका यथायोग्य वर्णन होता है, इसमे सदेह नही। ऐसी सस्कृतिके मृगजलके पीछे दौडकर माथापच्ची करनेके लिये स्त्रियोंको स्वतत्रता मिले, यह बात मुझे बिलकुल स्वीकार नहीं है। जिसने खाने, पीने, गाने, नाचनेका कोई सुगठित कार्यक्रम बनाया है, तो ऐसी सस्कृतिका मै अधिक सहानुभूतिसे विचार कर सकूँगा। परतु वर्तमान समयकी प्रचलित उच्च सस्कृतिके सवर्धनके लिये स्त्रियोंको स्वतत्रता देना चाहिए, ऐसा मुझे बिलकुल नहीं लगता।

परतु स्त्रियोकी वर्तमान स्थितिसे मुक्ति कैसी की जाय, इस विषयमें मैंने भी थोडा-बहुत विचार किया है। घर और घरकी सारी रचनापर आज भी स्त्रियोंकी थोड़ी-बहुत अनियत्रित सत्ता है, यह झूठ नही। मेरा यह प्रामाणिक मत है कि वह अधिक अनियत्रित की जाय। सामान्य स्त्री किसी तानाशाहकी तरह घरमें व्यवहार करती रहती है। प्रत्युत्, सामान्य पुरुषका मूल्य घरमे गुलामसे कुछ भी अधिक नहीं होता। मेरा यह विश्वास है कि इस योजनाके कारण जो सामान्य स्त्री अपने अधिकार आजसे भी अधिक स्वतत्रतासे चलाने लगेगी, वह अच्छी होनी ही चाहिए। सार्वजनिक रसोई-घरोंसे भोजन लानेके बजाय यदि स्त्री घरहीमे अपनी लहरके अनुसार हर प्रकारके पदार्थ बनाये तो यह अधिक अच्छा होगा। एक ही होटलसे एक ही निश्चित छापका ऊबा देनेवाला भोजन लानेके बजाय यदि वह हर रोज किसी नये पकवानकी खोज कर उसे तैयार करे, तो क्या ही अच्छा होगा! स्त्रीकी नव-निर्माणकी शक्तिके कम हो जानेसे समाजका कोई लाभ न होगा। हमें ऐसी ही समाजरचनाकी जरूरत है जिससे उसकी नवीन कल्पना बढ़े! और मै स्त्रीके लिये जो लगातार एकवचनका उपयोग कर रहा हूँ, यही ठीक है। सिर्फ़ धूर्त लोग ही स्त्रीके लिये एकवचनके बजाय बहुवचनका उपयोग करते हैं। यह सच है कि पुरुषका सभाषण आरभ होता है तब वह सारी पुरुष-जातिके विषयमे बोलने लगता है। परतु स्त्री और पुरुषमे मुख्य भेद यही है कि पुरुष मानवी जीवनकी लोकशाहीका प्रतिनिधि है। पर स्त्री उसके तानाशाहकी प्रतीक है।

●●●

१५
आँसू

'फिल्म बहुत अच्छी है। पर —

मनुष्य स्वभावतः कवि न होकर आलोचक होता है, इस वाक्यका स्मरण आते ही मै अपने आप हँस पड़ा। कोई बात कितनी भी पसद आ गयी हो फिर भी उसमे एक न एक दोष दिखाये बगैर मनुष्यको जैसे चैन ही नहीं पडता। नहीं तो सिर्फ इतना ही कहकर कि फिल्म बहुत अच्छी है, मेरा मित्र चुप न रह जाता!

यह देखकर कि मै कुछ भी नही बोल रहा हूँ उसने कहा—'इस फिल्मके दो-तीन सीन काट देना चाहिए थे।'

मुझे शक हुआ कि उक्त चित्रपटमे प्रेमकी रगपॅचमी कदाचित् बहुत भडकीले रगोसे मनायी गयी होगी, इसलिये मैने पूछा,—'इसमे कुछ अश्लीलता है क्या?'

'नही जी, कृष्णराव मराठे * भी शिकायत न करेंगे इतना पवित्र चित्र है यह। परतु —'

सामान्य मनुष्यका 'पर' शब्द प्राचीन कालके स्वयंवरके 'प्रण' की तरह ही त्रासदायक होता है, इस उक्तिका अनुभव हरएकको प्रतिदिन कम-से-कम पच्चीस बार तो जरूर होता ही है। उस अनुभवकी आजकी मेरी छब्बीसवी बारी

* अश्लीलताके एक टीकाकार।

नृत्य है। ठीक, मै इसे मानता हूँ। परतु वह नृत्य नर्तकीका नहीं है। शकरका है। जीवन तॉडव नृत्य है!'

क्रॉमवेल बड़ा पराक्रमी पुरुष था। परतु उसका रूप यथातथा ही था। फिर भी उसने अपने चित्र बनानेवाले चित्रकारको चेतावनी देकर कहा, — 'मै जैसा हूँ उसी तरह मेरा चित्र बनना चाहिए।' मानवी जीवन भी कलाकारोसे यही मॉगता रहता है। परतु ऐसे चित्रणमे जब करुण-रसके प्रसग आते हैं तब मेरे मित्र सरीखे दुर्बल जीव ऑखे मूँद लेते है और चिल्लाते है — 'छिः! यह हमसे बरदाश्त नही होता, भाई! रो-रोकर हमारी ऑखे फूल रही है! हम पैसा खर्च करके चित्रपट देखते है और उपन्यास खरीदते है, सो क्या छोटे बच्चोकी तरह रोते रहनेके लिये?'

ऐसे उद्गार सुनता हूँ तो मुझे पर्जन्य-वृष्टिके दृश्यका स्मरण हो आता है। वर्षामे आकाश अंधकारसे ढक जाता है। लैम्पके चारो ओर मोटा कागज लपेट देनेपर उसका प्रकाश जिस तरह बिलकुल धुँधला हो जाता है उसी तरह सूर्यके प्रकाशकी दशा हो जाती है। शालामे इन्स्पेक्टर साहबके कदम रखते ही लडके अपने अपने कमरेमे जिस तरह चुपचाप बैठ जाते हैं उसी तरह पक्षी पेडोपर अथवा घरोकी आडमे गुमशुम बैठे दिखायी देते हैं। हवा बेतहाशा भागनेवाले घोडेकी तरह जिस ओर रास्ता मिलता है उस ओर दौडती रहती है। घरकी खिड़कियॉ और दरवाजे एक दूसरेसे लडने लगते हैं। ऐसा लगता है जैसे द्रुतगामी अश्वोके टापोकी खड-बड़ हमारे कानोमे पड रही हो।

ऐसे समय प्रौढ लोग दरवाजो और खिडकियोको बद कर लेना चाहते हैं। बाहरके दृश्यसे उनका कोई मनोरजन नहीं होता। परतु लडके अवश्य वर्षाका स्वागत करनेके लिये बाहर दौड़ पडते हैं और 'बरसो राम धडाकेसे —' जैसे गीत गाने लगते हैं। रद्दी कागजोकी नावें बनाते हें और जब वर्षाकी बडी बड़ी बूँदे बदनपर पड़ने लगती हैं तो इस आनदमे खोकर कि हमपर पुष्प-वृष्टि हो रही है, वे मस्तीसे नाचनेमें निमग्न हो जाते हैं।

अन्नकी दृष्टिसे पर्जन्यका जितना महत्त्व है उतना ही आत्म-विकासकी दृष्टिसे ऑसुओंका है। परतु वर्षाके विषयमे प्रौढोके दुर्बल हुए मनकी दौड़ जिस तरह कीचड़, ठण्डी हवा और गीले छातेके परे नहीं जाती, उसी तरह ऑसूके विषय-

मे आत्म-निष्ठ मनुष्यकी कल्पना दुख, भीगे हुए रुमाल और फूली हुई ऑखोसे अलग होकर दौड़ती ही नही।

परतु ऑसू दुख है इस कल्पनामे सत्यका कितना अंश है? आज यदि हम अपने जीवनका सिहावलोकन करें तो हरएकको एक बात स्मरण हो आयेगी कि हमारे गत जीवनके अनेक आनदटायक प्रसगोका ऑसुओसे ही निकट सबध है।

बचपनमे मुझे पेडे बड़े पसद थे। पिताजीसे हठ करके मैने कितनी ही बार मॅगवाकर उन्हे खाया होगा इसकी कोई गिनती ही नहीं। उन प्रसगोमेसे एक भी मुझे अब स्मरण नहीं आता। मै ज्वरसे जल रहा था। उस समय डॉक्टरकी दवासे भी जो आराम मुझे न मिला था वह पिताजीकी ऑखोके झलकते हुए ऑसुओंने दे दिया था। यह याद मै कभी नही भूलूॅगा। गुलबकावलीसे लेकर कालिकामूर्तितक सैकडो कहानियॉ मैने बचपनमे बडी रुचिसे पढी थीं। 'भोले बाल्' की सगतिमे तो मै खिलखिलाकर हॅसा था। परतु बचपनकी उस विपुल पढाईमेसे एक ही घटना ऐसी थी जिसके बारेमे मुझे आज भी ऐसा लगता है जैसे वह कल ही घटी हो।

आधी रात जा चुकी है। बाहर गहरा अॅधेरा फैला हुआ है। घरके सब लोग नीदमे सोये सपनोमे खोये हैं। मै बिस्तरपर पडा हुआ 'गड आला पण सिह गेला'[1] उपन्यास पढ रहा हूॅ। मन-ही-मन निश्चय कर रहा हूॅ कि प्रकरणके पूरे होते ही दीया बुझाकर सो जाऊॅगा। पर गरमीमे प्रशस्त कुएमे तैरते हुए क्या मनको कभी लगता है कि –'बस, अब बहुत हो गया।' आश्विन और कार्तिककी चॉदनीमे घूमते हुए क्या किसीके मुॅहसे कभी 'बस' निकला है? हरि नारायण आपटे[2] के इस उपन्यासको पढते हुए मेरी दशा भी उसी तरहकी हो गयी है। अन्तमे उपन्यास समाप्त होता है। शेलेमे आच्छादित तानाजीके शवको देखकर शिवाजी महाराजकी ऑखोमे आये ऑसू मेरी ऑखोसे भी झरने लगते हैं।

वह क्षण मै कभी नही भूलूॅगा। ऑसुओंकी पवित्रता उस क्षण मुझे जॅची। ऑसुओके उदात्त तत्त्वकी गहन प्रचीति मुझे उस एक क्षणमे हो आयी। ऐसे ऑसुओकी माला ही, आत्म-निष्ठ मनुष्यको दुनियासे बॉधनेवाला प्रेम-पाश है। इसका धुॅधला ज्ञान उस क्षण मुझे हुआ।

१ 'गढ आया पर सिंह चला गया'। २ मराठाके आद्य स्व० उपन्यासकार।

और वह ज्ञान गत तीस वर्षोंके विविध अनुभवोंके कारण एक-सा बढ ही रहा है। परतु इन अनुभवोंके द्वारा जानी गयी एक बात मै नही भूल सकता। मित्रोंकी तरह ऑसुओंके भी अनेक प्रकार होते हैं। कुछ ऑसू स्वार्थी होते हैं। कुछ ऑसू दुर्बल होते हैं। ऐसे ऑसुओंसे आत्माका विकास नही होता। कहते हैं कि यह जानकर कि जीतनेके लिये अब दुनिया नहीं बची, सिकन्दर फूट-फूटकर रोया। परतु उस दिग्विजयी वीरके ऑसुओंकी अपेक्षा हिंगणेकी शालाकी एक शिक्षिकाके ऑसू मुझे अधिक मूल्यवान लगते हैं।

'रागिणी'के लेखक वामन मल्हार जोशी* का उनकी एक विद्यार्थिनी द्वारा बताया गया एक सस्मरण है :

'मैट्रिककी कक्षाका अंतिम दिन। अन्तिम प्रार्थनाकी अन्तिम कडी समाप्त हुई। वामनराव विद्यार्थिनीयोंको बिदा देते हुए बोले,–'मैंने तुम्हे बहुत डॉटा होगा। परतु यह सब तुम्हारी भलाईके लिये था। अब तुम यहॉसे दूर चली जाओगी। जहॉ जाओ, वहॉ सुखी रहो। मेरा तुम्हे यही आशीर्वाद है।' यह कहते हुए उनकी ऑखोंमे ऑसू भर आये।'

ऐसे ऑसुओंने ही आजतक ससारकी मानवताका पोषण किया है। बुद्धसे लेकर गाधीतक अनेक महात्माओं द्वारा बहाए गये ऑसुओंके कारण ही पाशवी मनोवृत्तिके दावानलमे जलनेवाले जगका मानवतासे विश्वास नहीं उठा। और इसीलिये मेरे अत्यन्त प्रिय कवि भी जब ऑसुओंकी फूलोंसे तुलना करने लगते हैं, तब मुझे ऐसा लगता कि चित्रपटके करुण-रसके प्रसगोंको काट देनेकी बात करनेवाले मेरे मित्रकी तरह, वे भी जीवनके प्रति अपनी अज्ञानता प्रकट करते हैं। हास्य जीवन-वृक्षका फूल है, ऑसू उसका फल।

● ● ●

* मराठीके अर्वाचीन स्वर्गवासी लेखक।

१६

दूसरे दरज़ेका सफर

स्टेशन गया और सीधे पूनाके तीसरे दरजेके डिब्बेकी ओर देखा ही था कि मुझे स्वय अपनी आँखोपर विश्वास न हुआ। एक डिब्बेमे इतने मनुष्य बैठ सकेंगे, यह स्वप्नमे भी सच मालूम न होता। परन्तु यह ध्यानमे आते ही कि बीसवी सदी स्वप्नमे सच न लगनेवाली बातोंको सत्य-सृष्टिमे देखनेका युग है, मेरी आँखे सामनेके दृश्यको चुपचाप देखने लगी। किसी पुस्तकी पडितके द्वारा अपने मस्तिष्कमे ठूँस ली गयी असंख्य कल्पनाओकी तरह डिब्बेमे भीड भाड़ लगाकर वे मनुष्य बैठे हुए दिखायी दे रहे थे। उस भीडमे घुमना प्राणोंको घुटनके बीच ले जाना था। डिब्बेके दरवाजेके पास पहाड़के बराबर सामान पडा हुआ था। इस पर्वतको लॉघकर भीतर प्रवेश पाऊँ तो 'खडा पारसी' या कमरपर हाथ रखे 'पंढरीनाथ' की मूर्तिकी तरह खड़े रहनेकी कल्पनासे मेरे रोगटे खड़े हो गये। मैं लौट पड़ा और चुपचाप दूसरे दरजेका टिकट निकाला।

गाडी छूटतेतक दूसरे दरजेके डिब्बेकी खिड़कीसे बड़ी शानके साथ मै बाहर झॉककर देख रहा था। डिब्बेमे दूसरा मुसाफिर ही न था।

'I am the monarch of all I survey,
My right there is none to dispute.'

ये पंक्तियाँ मुझे पुनः पुनः स्मरण आ रही थी। परिचित देखता तो प्लैट-फॉर्मसे जाते हुए प्रश्न करता—'कहिये कहाँ जा रहे हैं?' डिब्बेके भीतर झाँककर देखता और हँसते हुए कहता,—'यार, बड़े मजे हैं तुम्हारे। एक परिंदा भी पर नहीं मार रहा है तुम्हारे डिब्बेमे। कोल्हापुरके बाद लम्बी तान दोगे तो एकदम घोरपड़ी आनेपर ही उठोगे!'

गाडी खुलतेतक मेरा मन भी इसी कल्पनाके झूलेपर बैठकर ऊँची हिलोरे ले रहा था।

परतु गाडी छूटते ही प्रकाश लुप्त हुआ और लगा कि मैं रेलगाडीके दूसरे दरजेके डिब्बेमे नही, जेलकी अँधेरी कोठरीमे हूँ।

मैंने झटसे रोशनीका बटन दबाया। अँधेरेमे छोटे बच्चोको डरानेवाला 'हौआ' प्रकाश देखते ही भाग जाता है न? मेरे मनका वह विचित्र भास पलभरमे उसी तरह भाग गया।

पढनेके लिये मै साथमे एक पुस्तक लें आया था। दीयेके मन्द प्रकाशपर आलोचना करते हुए मैंने पुस्तक एक ओर रख दी और सामने देखा। वहाँकी बर्थका काला आच्छादन रोशनीमे जरा चमकदार लग रहा था।

मुझे लगा—यह बर्थ खाली न होती तो मुझे अधिक खुशी होती। सफरमे कम-से कम एक साथी तो होना चाहिए।

तुरन्त मैंने अपने मनको समझाया—ऐसा कोई साथी नही है इसे अपना सौभाग्य ही कहना चाहिए। दूसरे दरजेका टिकट देते समय 'मुसाफिर कितने ज़ोरसे खर्राटे भरता है?' इसके बारेमे कहीका भी स्टेशन-मास्टर पूछ-ताछ नही कर सकता। आज मेरे डिब्बेमे आनेवाला मनुष्य पहले नबरका खर्राटे लेने-वाला न निकलता इसका क्या सबूत? अपनी नींद हराम होनेका यह मौका टल गया इसके लिये भाग्यको जितने धन्यवाद दिये जाएँ उतने थोड़े ही होगे।

एकाकीपनके कारण मनको कैसा सूना सूना-सा लग रहा था। उसे समझानेके लिये मैंने यह दलील लड़ाई जरूर। परतु फिर भी दाँतोमे कोई चीज कहीं जरा-सी भी अटक जाये, तो उसके निकले बग़ैर जिस तरह चैन नहीं पड़ता, उस तरह मेरे मनकी दशा हो गयी थी।

मैं उठा और 'टॉयलेट'का दरवाज़ा खोला। सामनेके शीशेमे अपनी छवि देखते ही मेरे मनको जरा अच्छा लगा। जैसे वह मनुष्यकी आकृति देखनेके

लिये ही लालायित हो रहा था। परतु उस प्रतिबिम्बके द्वारा उत्पन्न हुआ आनद बहुत देरतक न टिका। जिससे मै बोल सकूँ, मेरी बातोके कारण जिसकी मुद्रापर भाव उमटे, इस प्रकारके मनुष्यका साथ मुझे चाहिए था।

मनकी अस्वस्थताको भुला देनेके लिये मैंने मुँह धोनेके बरतनकी ओर देखा – उसपर लिखे 'एफ० सी० एस० टी० १५०५ – ए' का अर्थ लगानेका खूब प्रयत्न किया और 'Pull handle down until water ceases' वाक्यका मराठी अनुवाद न देनेवाली रेल्वे कम्पनी देशी भाषाओकी किस प्रकार उपेक्षा कर रही है, इस विषयमे मैंने मन-ही-मन बिलकुल छोटा, पर आवेश-पूर्ण भाषण भी दे मारा!

गरमीमे ठडा पेय पीनेसे गलेको गीलापन लगता है। पर वह क्षण-भर ही। इन उपायोसे मेरी भी हूबहू वही दशा हुई।

मै चुपचाप बाहर आकर बर्थपर बैठ गया और खिडकीमेसे देखने लगा। बदनपर ओढे हुए ओढनेमेसे भी छोटे बच्चोके हाथ जिस तरह बाहर दिखायी देते हैं, उस प्रकार अँधेरेमें दूरके पेडोकी चोटियॉ दीख रही थीं। पहियोकी 'खड्-खट्-खड्-खट्' आवाजको छोडकर और कुछ भी न सुन पड़ता था। इस कर्ण-कटु आवाजसे मेरी अस्वस्थता और भी अधिक बढ गयी।

इसी समय बॉसुरीकी मधुर आवाज मेरे कानोमे पडी। मै उत्सुकतासे सुनने लगा। अँधेरेमे ही कोई गडरिया अपनी भेडोका खरका लेकर अपनी झोपड़ीको लौट रहा होगा। मेरे मनमे यह विचार आया कि यही यदि रेलगाड़ीका स्टेशन होता, तो क्या ही मजा आता?

बॉसुरीकी आवाज अब सुनायी नही पड़ रही थी। परतु उसके पीछे पीछे ही बैलोके गलेमे बँधे घुँघरू खनखनाने लगे। मैं तन्मयतासे सुनने लगा। नर्तकीके नृत्यसे भी मेरा मन कभी भी इतना मोहित नहीं हुआ था।

रेलगाड़ी तेजीसे आगे बढ़ी जा रही थी। घुँघरुओकी खनखनाहट अस्पष्ट हुई किनकिनाहट भी सुनाई नहीं देती थी। मेरे मनका अस्वस्थता फिर बढने लगी।

दूर कही एक प्रकाश टिमटिमा रहा था। वह कितनी दूर होगा कौन जाने! परतु उसकी उस मद झिलमिलीमे मुझे एक निराला ही चित्र दिखायी दिया। उस दीयेको हाथमे लेकर किसी झोपड़ीके द्वारमे एक स्त्री खडी है। उसके नन्हे नन्हे

बच्चे उसे घेरे हुए कोलाहल मचा रहे हैं और उसका घरवाला कुछ समय पहलेकी उस बैलगाडीमें झोपड़ीकी तरफ दौड़ता आ रहा है।

बातकी बातमे वह प्रकाश ओझल हो गया। बाहर ही नही, किन्तु मेरे मनमें भी पूर्ण अँधकार फैल गया। मै आँखे बन्द कर बिस्तरपर लेट गया।

परतु आँखे बद कर लेनेसे कही नीद थोड़े ही आ जाती है। हाथमे लगी फाँसकी तरह मेरे मनमे एक बात निरतर चुभ रही थी – दूसरे दरजेका टिकट लेकर मैंने बड़ी ग़लती की। गाधीजी और जवाहरलालजी तीसरे दरजेमे सफर करते हैं सो सिर्फ सादगीके कारण नही। बहुजन समाजसे वे इतने एकरूप हो गये हैं कि, लोगोंसे दूर रह कर उन्हे क्षण-भर भी अच्छा न लगता होगा। तीसरे दरजेकी भीड़से डरकर मै दूसरे दरजेमे भाग आया। परतु यहाँ मिलनेवाली शान्ति श्मशानकी शान्ति है। उसके कारण मन प्रसन्न होनेके बजाय विषण्ण ही होता है।

तीसरे दरजेकी भीडमे पहलेकी गयी यात्राओकी स्मृतियाँ मेरी आँखोके सामने खडी होने लगी। एक बार जब मै डिब्बेमे घुसा तो देखा कि भीतर कही बैठनेको भी जगह नही है। मेरा स्वभाव झगड़ालू न होनेके कारण, 'मैने भी टिकटके लिये पैसे दिये हैं, इस जगहपर जितना तुम्हारा हक है उतना मेरा भी है।' आदि तत्त्वकी बाते भीतर बैठे हुए यात्रियोको सुनानेकी झंझटमे मै न पडा।

गाडीने एक-दो स्टेशन ही पार किये थे। मैने देखा कि उस तरफकी बेंच-पर शिथिल पड़ी हुई एक बुढिया मेरी ओर टकटकी लगाकर देख रही है। मैने बहुत स्मरण किया, परतु मुझे याद न आया कि मैने उसे कही देखा है। उसके बदनपर एक फटी साडी थी। उसक केश गुँथ गये थे और उसके पैताने रखी हुई गठरी – जिसमे उसने अपना सामान बाँधकर रखा था उसके कपड़ेका साबुन-से बैर होना चाहिए, यह स्पष्ट दीख रहा था। इसलिये उसके ये शब्द कि 'इधर आओ, बाबा!' कानमें पड़ते ही मेरी समझमे न आया कि वह किसे बुला रही है।

पर वह मुझे ही बुला रही थी। चूल्हेके पास सोनेवाली बिल्ली जिस तरह अपने बदनको सिकोड़ लेती है, उस तरह उसने अपने बदनको सिकोड़ लिया और मुझे बैठनेके लिये जगह कर दी। उसके उस निःशब्द परतु प्रिय साथका मुझे आज भी स्मरण है। उसका नाम मुझे याद नहीं आता। वह फिर कभी मुझे नहीं दीखी' परतु मेरी बड़ी इच्छा है कि उस दिनकी तरह सयोगसे वह मुझे फिर मिल जाय।

इसी तरह वे वृद्ध पारसी सज्जन और उनकी वह लड़की। पिछले साल खानापुर स्टेशनपर हम मेलमे बैठे। वहाँ गाडी बहुत थोड़ी देर रुकती है। इस लिये यह देखनेके लिये कि किस डिब्बेमे जगह है, समय नही रहता। परतु डिब्बेमे प्रवेश करते ही हमने देखा कि यह बिलकुल पैक-बद था। बच्चे साथमे होनेके कारण उन्हे लेकर लगातार खडे रहना भी कठिन था। मै सोच रहा था कि क्या करूँ? इसी समय एक पारसी सज्जनने अपने पास मुझे बैठनेके लिये थोड़ी जगह बना दी। उसकी लडकीने मेरे गोदसे मन्दाको ले लिया और उससे वह टूटीफूटी मराठीमे बाते करने लगी। पॉच मिनटके भीतर हम सब दोस्त हो गये! उन वृद्ध सज्जनने मुझसे मेरा व्यवसाय, उम्र, बच्चोके नाम आदि बाते तो पूछीं ही, पर 'अविनाश', 'मन्दाकिनी', और 'कल्पलता' नामोका अर्थ भी उसने मुझसे पूछ लिया।

इन बातोका स्मरण होते ही मुझे लगता है—भीडमे ऊबकर तीसरे दरजेके मुसाफिर टिकट बदलकर जिस तरह दूसरे दरजेमे चले जाते हैं, उस तरह भीडमे जानेके लिये यदि अपना टिकट बदलकर मै तीसरे दरजेमे जा सकता तो बडा अच्छा होता। परतु अब?—पैसे वसूल करनेके लिये रद्दी फिल्म अन्ततक देखनी पड़ती है, उसी तरह यह पूरा सफर मुझे करना होगा!

गाड़ी मिरज स्टेशनपर आयी। मेरी कल्पना थी कि कम-से-कम यहॉ कोई मुसाफिर मेरे डिब्बेमे कदम रखेगा। परतु वह कल्पना ही निकली। दो-चार बार एक युवक लडकेने मेरे डिब्बेके सामनेसे चक्कर काटे। मुझे लगा कि वह मेरी ओर टकटकी लगाकर देख रहा होगा। परतु उसके पास सामान वगैरह कुछ नहीं दीख रहा था। इसलिये यह आशा कि वह मेरे डिब्बेमें आयेगा व्यर्थ थी।

मेरे डिब्बेके सामनेसे उसका पॉचवॉ चक्कर शुरू हुआ। इस भयसे कि अब गाडी छूटनेके बाद पुनः भयंकर एकान्तसे पाला पडेगा, मेरे मनमे उस लडकेसे कुछ बाते करनेकी तीव्र इच्छा हुई।

इसी समय वही मेरे पास आया। जेबसे एक 'एम्बॉस' की हुई छोटी-सी नोट-बुक निकालकर वह बोला,—'मै आपका ऑटोग्राफ चाहता हूँ।'

वैसे किसीको अपना ऑटोग्राफ़ देना मुझे अच्छा नहीं लगता। परतु इस

समग्र मैंने वह नोट-बुक बडी खुशीसे अपने हाथमे ले ली। मै नीचे सिर झुका रहा था तभी वह बोला, – 'सदेश भी दीजियेगा।'

मैंने चुपचाप लिख दिया, – 'एकान्तका सच्चा सुख भीडमे ही मिलता है।'

मेरे नोट-बुक लौटाते ही उसने उस वाक्यपर दृष्टि डाली। तुरन्त ही मेरी ओर आश्चर्यसे देखता हुआ वह बोला, – 'इस वाक्यका अर्थ मेरी समझमे नही आया।'

मै कह गया, – 'व्यक्तिका सच्चा सुख समाजके सुखमे ही होता है न? वही बात है यह।'

● ● ●

१७

पचासकी झकोर

थालीमे श्रीखड परोसा हुआ देखकर, मेहमानको आश्चर्यका एक बडा धक्का लगा ! एक तो आज कोई हिन्दू त्यौहार नहीं है यह जानने योग्य उनकी पचॉगसे जान-पहचान थी। दूसरे, पिछले साल गेहूँकी कमी हो जानेके कारण एक हाइ कोर्ट जजके घर दावतमे सिर्फ 'बेसन-भात' खाकर ही उन्हे किस तरह लौटना पड़ा था, इसका उन्होने सिर्फ पॉच मिनट पहले ही मुझसे बडा रस-पूर्ण वर्णन किया था!

थालीके श्रीखडकी ओर देखते हुए वह 'बेसन-भात' उनकी ऑखोके सामने खडा हो गया होगा। बिना दुर्लभताके किसी भी चीजके सच्चे मूल्यका पता नही चलता, इस नियमका श्रीखड भी कैसे अपवाद होगा! चौदह सालके बाद रामचद्रजीको देखनेपर भरतकी ऑखोंमे जो आनद चमकने लगा होगा, वही उनकी ऑखोंमे —

उनके आनंदमे आश्चर्य भी मिला हुआ था। हाइ कोर्ट जजकी तो बात ही छोड़िये, पर मै ऑनररी मैजिस्ट्रेट भी न था और मुझ सरीखे साधारण व्यक्तिके घरमें कोई त्यौहार न होते हुए आजकलके दिनोंमे श्रीखड बनाया जाय, यह बात ही इतनी कुतूहलजनक थी कि मेहमान यदि किसी समाचार-पत्रके सचालक होते तो उसमे कल इस समाचारको बड़े टाइपमे वे छाप देते, ऐसा मुझे उनकी

मुद्रासे लगने लगा। उनका समाधान करनेके लिये मैंने कहा, – 'किसी लडकेकी वर्ष-गॉठ होगी आज!'

मेहमानने मेरी पत्नीकी ओर देखते हुए जल्दी जल्दी लड़कोंके नाम लिये। परंतु आज उनमेंसे किसीकी भी वर्ष-गॉठ होनेकी बात सिद्ध न होती थी। तारीखसे न हो, फिर भी तिथीसे हो सकती है–ऐसा कुछ मैं कह रहा था, तभी मेरी ओर देखकर, मेरी पत्नीने कहा, –' 'इन्ही' की वर्ष-गॉठ है आज!'

'मैंने कहा था न, कि किसी लडकेकी वर्ष-गॉठ होगी आज?' मजाकमे मैं कह गया, –'घरमें सबसे बड़ा लडका मै हूॅ! क्या, हूॅ न?'

'यह आपकी कौनसी वर्ष-गॉठ है?' – मेहमानने प्रश्न किया। उन्हें जैसे कहना था – इस तर्कशास्त्रके अनुसार तो बूढे दादा भी घरके सबमें बड़े चिरजीव माने जा सकते हैं!

मेरी यह पैतालीसवी वर्ष-गॉठ थी। परंतु एक-दो वर्ष घटाकर बयालीसवी या इकतालीसवी कहनेकी विलक्षण इच्छा मेरे मनमे उत्पन्न हुई। अन्य चोरियोंकी तरह उम्र चुरानेमे भी पुरुष स्त्रियोंसे नहीं हार सकते!

मै इकतालीसवी कहने ही वाला था कि अवी चिल्ला पडा, – 'पैतालीसवी! क्यों मॉ, है न? परसो ही तो भाऊ कह रहे थे—'

ये छोटे लड़के हमेशा ऐन मौकेपर दगा दे देते हैं। लडकोंको फूल कहनेवाले लोग बहुत करके ब्रह्मचारी या निपुत्री रहे होगे। सुबहकी ही बात लीजिये। हम आपसमें बातें कर रहे थे कि घरके सामने दूध दुहकर हमे दूध देनेवाला ग्वाला भी दूधमे पानी मिलाता है, उसपर हमे नजर रखनी चाहिए। हमारी ये बाते मन्दा सुन रही थी। उसके लिये इतना काफी था। ग्वाला महाशयके घरके सामने आकर उपस्थित होते ही हमारी मन्दारानी बड़ी सभ्यतासे आगे बढी और उससे बोली – 'मॉने दूधमें थोड़ा ही पानी मिलानेके लिये कहा है!'

इन शब्दोंको सुनते ही हमारे ग्वाला राम ऐसे भड़के कि, उनकी मरकही भैंस भी उनके सामने ग़रीब गायकी तरह दीखने लगी!'

इस समय अवीने ठीक वही प्रयोग मुझपर किया था। मुझे लगा कि जब पाइलटने बड़े गर्वसे यह प्रश्न पूछा कि 'सत्य सत्य यानी क्या है?' उस समय उसके आसपास एक भी छोटा लड़का न रहा होगा! और महात्मा गाधीको 'सत्यके

प्रयोग ' लिखनेकी जो स्फूर्ति हुई वह भी इसी प्रकारके किसी विद्वान बालककी बाते सुनकर ही हुई होगी!

मुझे हमेशा यह लगता है कि सत्यका बिजलीसे बहुत नजदीकका रिश्ता है। अभीकी ही बात लीजिये न। अविनाशने सत्यका जो धक्का मुझे दिया, उसके कारण क्षण-भरके लिये मेरी जैसे वाचा ही कुंठित हो गयी। कुछ क्षण मैने अचेतावस्थामे ही बिताये। मै पूरी तरह होशमे आया मेहमानके शब्दोसे — ' आज आपकी पैतालीसवीं वर्ष-गाँठ है! अरे वाह! तो कहना चाहिए कि अब आपको पचासकी झकोर लग रही है!'

उत्तरमे मैने स्मित किया। परतु उस स्मितमे आनंदकी अपेक्षा विषादकी ही छटा अधिक होगी!

कितना बातूनी हूँ मै? परतु भोजन समाप्त होतेतक मेरे मुँहसे किसी भी विषयमे एक शब्द भी न निकला! यही नही, बल्कि श्रीखड-भक्तोमे, बाजीरावके बाद मुझे ही दूसरा नबर प्राप्त होनेकी सभावना होते हुए भी, आज मैं उसका स्वाद मनसे न ले सका। न जाने क्यो, मेहमानके ये शब्द कि ' आपको पचासकी झकोर लग गयी है ', मुझे निरतर काट रहे थे!

भोजनके बाद पान खाकर मेहमान तो चले गये। परतु उनके वे विलक्षण शब्द उनके साथ नही गये। वे पीछे ही रह गये।

भोजनके बाद थोड़ा आराम करनेके लिये मै लेटा। आँखे बन्द कर ली। परतु — रातको कमरेमे कोई चमगादड़ फँस जाये, तो फिर वह मसहरीके एक छोरसे दूसरे छोरतक लगातार फड़फडाता रहता है न? उसी तरह उस वाक्यकी कर्ण-कटु फड़फड़ाहट निद्राके आवरणमेसे मेरे अन्तर्मनको सुनाई पड़ रही थी। और जो केवल पन्द्रह मिनटमे ही मैं चौककर उठा और मेरी आँखे खुल गयीं, वह भी इसलिये कि, उस वाक्यके घनपर घन मेरे मनपर पड़ने लगे थे! पडोसीकी घड़ीके अलार्मसे हमारी गुलाबी नींद टूट जाय, परतु उस अलार्मको जाकर बंद कर देना हमारे बसकी बात न हो, ऐसी स्थितिमे मनुष्य जिस तरह चिढ जाता है, उसी तरह मै —

मेरे मनमे आया — मेहमानके हाथसे साँप मरवानेवाले यजमान प्राचीन कालमे ससारमे शायद होते होगे! परतु आजकलके मेहमान यजमानके घरमे साँप लाकर छोड़ देनेमे बडे सिद्धहस्त हुए दीखते हैं! वह मेहमान कुछ समय

पहले उस विचित्र वाक्यको न कहता, तो ? 'आपको पचासकी झकोर लग गयी है ! ' – यह बमका गोला वह न गिराता, तो क्या आजका श्रीखड और पूडियोंका भोजन उसे बिलकुल बेस्वाद लगता ? ...

मैं सोचने लगा । वह वाक्य मुझे बमके गोलेकी तरह क्यों लगना चाहिए ? मेहमानने जो कहा, क्या उसमें एक भी शब्द असत्य था ? परतु मानवी मन बडा विचित्र होता है । उसे सत्य अनेक बार बमके गोलेकी तरह नाशकारी लगता है । और असत्यों अथवा अर्ध सत्योंको सुगधित फूलोंकी तरह सूँघने तथा उन्हे शौकसे सिरपर धारण कर नाचनेमें उसे बडा आनद आता है । मै जब अपनी दाढी बना लेता हूँ और उस समय जब कोई मुझे देखकर मुझसे कहता है कि 'आप अधिकसे अधिक पैंतीसके लगते हैं', तो उसको सुनकर आज भी मुझे बडी गुदगुदी होती है । यह सिद्ध करनेके लिये कि मै पैतालीस वर्षका हूँ, अनेक गवाह मामलीकी नगर-पालिकासे लेकर बीमा कम्पनीतक सर्वत्र फैले हुए हैं । इसके बावजूद वही बात मेरे मेहमानके कहते ही मेरा मन उनपर गुस्सा होने लगा !

वैसे मै सत्यका डटकर सामना करनेमें डरनेवाला व्यक्ति नही हूँ ! मुझे लगता है कि 'पचासकी झकोर', इस शब्दप्रयोगके कारण ही मेरा मन इतना अस्वस्थ हो गया होगा ! कडुई दवाको जिस तरह शहदमें घोटकर देते हैं उसी तरह इस दुनियामें सत्यको भी मीठा बनाकर कहना पडता है – यह बात आजके मेरे मेहमानकी तरह हजारों लोगोंकी समझमें ही नही आती ! यदि मेहमान यह कहते कि आपकी छयालीसवी वर्ष-गाँठके दिन भी मै श्रीखड खानेके लिये आऊँगा, तो मुझे इतना बुरा न लगता । परतु उनके शब्द 'पचासकी झकोर', कुछ लोगोंके चेहरे देखते ही हमें लगने लगता है कि जीवन-भर उनसे हमारा कोई सबध न आये, तो अच्छा ! कुछ शब्द भी उसी तरह विचित्र होते हैं !

मैंने अपने आपसे कहा – छि. ! मुझ जैसे साहित्यिकसे यह बडा अन्याय हो रहा है । 'झकोर' शब्द कितना नाजुक, कितना कोमल और कितना काव्यमय है ! इसकी तुलनामें 'चुम्बन' शब्द भी अत्यन्त कठोर प्रतीत होगा ! और 'झकोर' का उच्चारण करते ही हमारी आँखोंके सामने जो चित्र खड़ा होता है, वह ठण्डमें कुडकुड़ा देनेवाली ठण्डी हवाका नहीं, बल्कि ग्रीष्मकी सायकालीन सौम्य-शीतल और सुखदायी मृदु मृदुल वायु-लहरीका ! मेरे बचपनमें उपन्यासोंमें

मन्द मन्द मलयानिलकी झकोरे हमेशा बहा करती थी और वे मुझे अच्छी भी लगती थी! फिर —

'मलयानिलकी झकोर' और 'पचासकी झकोर'! मेरे भीतरका आलोचक जाग्रत होकर कहने लगा, —'इतना ही है कि इन दोनोंमे 'झकोर' शब्द आता है! परतु पहले शब्द-प्रयोगको सुनते ही शरीरको रोमाच हो जाता है! और दूसरे शब्द-प्रयोगके कानमे पडते ही शरीरपर रोंगटे खडे हो जाते है! मलयानिलकी झकोरके साथ जयदेवके गीतगोविन्दकी मधुर पंक्तियोंको गुनगुनानेकी सनक आ जाती है। परतु 'पचासकी झकोर' कहा कि देवलके[1] 'शारदा'[2] नाटकका सुप्रसिद्ध गीत आँखोंके सामने खडा हो जाता है। देवल कहते हैं —

'भल्या माणसा दस लाखाची गोष्ट सांगतों सोडुं नको[3]
पन्नाशीची झुळुक लागली बाइल दुसरी करूं नको!'

मेरे मेहमानके यह कहते ही कि 'आपको पचासकी झकोर लग गयी है', मेरा मन एकदम क्यो भड़क गया, इसका कारण अब कहीं मेरी समझमे आया! शास्त्रज्ञ ही कहते हैं कि पुरुष स्वभावसे ही बहुस्त्रीक है। हिन्दुस्तानके पुरुषोंको भगवानके अवतारोंमे राम अप्रिय और कृष्ण प्रिय होनेका कारण यही है। यदि प्रत्येक पुरुष जन्मसे किसी रियासतका नरेश हो सकता, तो वह अपने घरमे एक खासा बडा जनानखाना रखनेमे भी कमी न करता। परतु एक नरेशके साथ ब्रह्माजीने करोड़ो क्लर्को और लाखो मास्टरोंको इस दुनियामे भेज दिया है। इसलिये असख्य पुरुषोंको केवल कल्पनाद्वारा ही प्रेम-वैचित्र्यका अनुभव लेनेके सिवा दूसरा कोई चारा ही नहीं रह जाता! ऐसी परिस्थितिमे, दफ्तरका कोई क्लर्क यह देखकर कि साहब रिटायरिंग-रूममे विश्राम कर रहे हैं, जब मेजपर पैर पसारकर 'शेर' छाप बीड़ी जलाता है और फिर आँखे बद कर वह जिस ध्यानमे खो जाता है, वह क्या उस समय घरमे जूठन समेटकर चौका-बासन करनेवाली अपनी

१ 'शारदा' नाटकके लेखक—स्व० गोविंद बल्लाल देवल।

२ जरठ-कुँआरी-विवाहपर एक प्रसिद्ध मराठी नाटक।

३ 'हे भले आदमी' मै तुझसे लाखो रुपयोंकी बात कहता हू। उसे अनसुनी न कर। तुझे पचासकी झकोर लग गयी है, इसलिये अब दूसरी शादी न करना!'

मैले-कुचैले चेहरेकी पत्नीका होता है? छिः! साइकिलसे दफ्तरको आते समय, हाथमे एक सुंदर छाता लेकर और बाएँ कँधेपरसे केशोंकी चोटीको नागिनकी तरह छोडकर चँचल ऑखोवाली जो तरुणी उसके सामनेसे गुजरती है, वही उसकी ऑखोके सामने नाचती रहती है। दुर्घटनाको विलक्षण रूपसे चाहनेवाले दैवने आज मेरी साइकिलको उस तरुणीसे क्यो नही टकरा दिया, इसका उसे रह-रहकर दुख होता रहता है। वह दुबारा फिर एक दिवा-स्वप्नमे निमग्न हो जाता है - इस समय मै दफ्तरमे नही, अस्पतालमे हूॅ। मेरे ऑख खोलते ही वह चँचल ऑखोवाली तरुणी आनदसे 'अय्या'† कहकर चिल्लाती है! तब उसे हँसानेके लिये मै श्लेप करता हूॅ - अय्या कहकर पुकारनेके लिये मै कोई मद्रासी नहीं हूॅ!' मेरे बुद्धि-वैभवपर खुश होकर, वह धीरेसे मेरा हाथ अपने हाथमे लेती है—

इसी समय साहब अपने कमरेसे बाहर आकर उक्त क्लर्क महाशयके कान उमेटते हैं, यह बात दूसरी ह! परतु सिर्फ इतनेहीके कारण, इस प्रकारके सुख-स्वप्नोंमे निमग्न होनेका उसका या उसीके सरीखे करोडो पुरुषोका हक नही चला जाता।

पचीसकी उम्रमे मैने भी यह हक अनेक बार मनमाना अदा किया होगा! परतु देवलकी इस पॅक्तिपर कि 'पचासकी झकोर लग गयी है अब दूसरी शादी न करना', पुरुषके नाते चिढ जानेका कम-से-कम आज मुझे कोई कारण नहीं है! एक तो दूसरी शादी करनेका विचार मेरे मनमे आजतक कभी भी नहीं आया। कदाचित् मेरी बौद्धिक भूख पहलेसे ही बहुत मंद होगी! और यदि यह साक्षात्कार भी मुझे अचानक हो जाय कि, पुरुषके पचासकी उम्रके करीब पहुॅचनेपर उसकी प्रतिभा तरुण पत्नीके बिना चमक नही सकती, फिर भी दूसरा विवाह करनेकी हिम्मत किसी भी तरह मुझे न होगी। यह मै बचपनसे देखता आ रहा हूॅ कि यदि पचासकी उम्रका पुरुप बीस पचीस वर्षकी युवतीको अपनी पत्नी बना ले, तो उसके पीछे सैकड़ो झझटे लग जाती है। चार-आठ दिनके बाद ही क्यो न हो, सुबह उठकर यह विश्वास हो जानेपर कि पत्नी गाढ़ निद्रामे मग्न है, वह अपने कमरेके द्वार ही नहीं, बल्कि खिडकियॉतक बन्द करके सफेद हो रहे बालोंको खिजाब लगाता है। ऑखोसे ठीक न दीखता हो फिर भी घरमे ऐनक

† मराठामे स्त्रियोंसे बोला जाता आश्चर्यदर्शक शब्द — (भावार्थ है — 'ओ मां')

लगानेकी उसे हिम्मत नही होती। ऐनक लगानेसे मनुष्य कैसे एकदम बूढे दीखने लगते हैं! इसके साथ ही जो 'चश्मा' नही लगाता, उसकी उम्र चालीसके भीतर है, यह क्रमसे ही सिद्ध होता है। शामको आराम कुर्सीपर जाकर स्वस्थ पड़े रहनेकी इच्छा होनेपर भी उसे पत्नीको साथ लेकर शानसे घूमने जाना ही पडता है। और फिर रात-भर कमरमे दर्दके मारे नीद न आयी, तो दूसरे दिन सुबह लाइब्रेरी जानेका बहाना करके पहले मालिश करनेवाले किसी नाईको खोजना ही चाहिए! पत्नीके गालको 'दंतव्रण' करना है तो वह भी बड़ी सावधानीसे करना चाहिये! नही तो प्रणयके रगमे अपनी नकली बत्तीसी ही एकदम नीचे गिर पडे! विवाह होनेके बाद, इस उद्देश्यसे कि, जल्द पुत्र-प्राप्ति हो, हर शनिवारको चोरीसे महाबीरजीको नारियल चढानेसे लेकर कामशास्त्रकी अनेक पुस्तकोको वी० पी० से मॅगानेतक, अनेक नये नये खर्च करना पड़ते हैं पचासकी उम्रके दूल्हा महाराजको!

इन सब झॅझटोमे पड़नेकी मुझमे शक्ति न होनेके कारण, दूसरे विवाहकी कल्पना मुझे किसी गुप्त षड्यत्रकी तरह भयंकर लगती आयी है! इसके बावजूद मेहमानके इन उद्गारोसे कि 'आपको पचासकी झकोर लग गयी है', मेरे मनको जो अपरिचित बेचैनी हो रही थी, वह जरूर किसी भी तरह कम नहीं होती थी!

मै आईनेके सामने जाकर खडा हुआ। मैने अपने बालोकी ओर देखा। बीच-बीचमे अनेक सफेद बाल स्पष्ट दीख रहे थे। अभीतक वे मुझे अपरिचित थे, यह बात नही। परतु हाथमे भाला लिये खडे हुए चालाक सैनिकोकी तरह आज लगे वे मुझे! मोरोपत*की 'कृतान्त-कटकामलध्वज जरा दिसो लागली'† पंक्ति मुझे एकदम याद आयी।

मेरे मनमे विचार आया—'ये मेरे सफेद बाल है! नही—यमदूत हैं वे! मृत्युके अगाडीके सैनिक हैं ये!'

मै उस दृष्टिसे उनकी ओर देखना आजतक जान-बूझकर टालता रहा था! यह कहकर कि आजकल पच्चीस वर्षकी उम्रके तरुणके भी बाल पक जाते हैं, अथवा

* मराठीके एक प्राचीन कवि।

† 'यमराजकी सेनाके श्वेत ध्वजकी तरह बुढापा दीखने लगा।'

यह युक्तिवाद लडाकर कि जलती हुई जहाजके कप्तानके बाल यदि एक रातमे सफेद हो जाते हैं, तो जिसे अनेक अग्निदिव्योंको पार करना पडता है, उसके बालोंका भी असमयमे पक जाना कोई अस्वाभाविक नहीं है, मै मृत्युके विचारको ही अपने मनमे न आने देता था। आमदनीपर पूरा कर देनेमे टालमटूल करनेवाले सम्पन्न मनुष्यकी तरह प्रयत्न हो रहा था मेरा! मृत्युका नोटीस स्वीकार करनेके लिये ही मै तैयार न था! उस नोटीसको आजके मेरे मेहमानने मुझपर बिना किसी उद्देश्यके तामील कर दिया और इसी लिये उनके उस सीधे-सादे वाक्यपर मुझे इतना क्रोध हो आया। मै अभी तरुण हूँ-मै अभी मृत्युसे बहुत दूर हूँ, इस स्वप्नमे मै आजतक खोया हुआ था। मेहमानके उस वाक्यने मुझे उस स्वप्नसे एकदम जगा दिया! मनुष्यको प्रेम-भगकी तरह स्वप्नभग भी पहले पहल बडा तापदायक लगता है! उनका वह वाक्य सुनकर, मुझे जो बुरा लगा उसका सच्चा कारण स्वप्न-भगका दुख ही था।

परतु मेरे मेहमानने आज बडा भारी मित्रकार्य किया, इसमे सदेह नही। झूठे स्वप्न, झूठा प्रेम, झूठी आशाएँ, झूठे ध्येय, दुनियाके बाजारमे जहाँ तहाँ अभीतक झूठा और नकली माल ही अधिक खपता है। 'सुधार'—सुधारका आजका अर्थ मानवी जीवनके चिरन्तन मूल्योंका अन्वेषण बिलकुल नही है। बल्कि 'सुधार'का अर्थ है—झूठको सचकी तरह दिखानेके लिये उसपर लगानेको खोजकर निकाला हुआ सुदर पॉलिश! आजकी नारीका सौन्दर्य निसर्ग, आरोग्य अथवा मानसिक प्रसन्नतापर अवलबित नहीं है। बाजारमे मिलनेवाले मुखचूर्णो और ओष्ठलेपोंसे उसका जन्म हो रहा है। आजके विद्वानोंमे ऐसा शायद एकाध ही होगा जो हमे अनुभूतिके वृक्षमे लगा फल दे सकता है। बाकीके सब हाथमे पुष्प-गुच्छ लिये नाचते हुए दीख रहे हैं। इन गुच्छोंमेसे बहुतसे फूल नकली ही होते हैं। आजके जीवनविषयक तत्त्वज्ञानमे भी सारा जोर उपभोगपर ही दिया जाता है। इसके कारण ऐसी थोथी कल्पना रूढ हो गयी है कि बिना तरुणाईके जीवनमे आनद नही है और इसलिये हरएक यह आभास उत्पन्न करनेके आक्रोशमे दग हो जाता है कि मै तरुण हूँ! मेहमानके ये शब्द कि 'आपको पचासकी झकोर लग गयी है', मुझे चमत्कारिक लगे, इसका कारण इस थोथे तत्त्वज्ञानका मेरे मनपर जमा हुआ सिक्का ही होना चाहिए।

इस सिक्केको अलग फेककर मै उनके शब्दोपर शान्त मनसे विचार करने

लगा। जहाँ उतरना है, वह स्टेशन नजदीक आ जानेपर भी यदि कोई मुसाफिर सोया हुआ है, तो उसे जगा देना क्या उसके पडोसीका कर्तव्य नहीं है? उसी कर्तव्यका मेरे मेहमानने आज पालन किया था। उन्होंने यह सूचित किया था कि इसके आगे काम करनेके लिये मुझे आठ-दस अथवा अधिकसे अधिक पन्द्रह वर्ष और मिल सकेंगे। उनके द्वारा सूचित की गयी यह बात मै यदि निरन्तर अपने मनमे रखूँ तो आलस्य अथवा अन्य कारणोंसे मेरे काम इससे आगे पिछडेंगे नहीं और अपने प्रिय कामोंको अधूरा छोडकर चल देनेका दुःखद अवसर भी मुझपर न आयेगा। उनके—'आपको पचासकी झकोर लग गयी है' वाक्यका अर्थ इतना ही है कि परीक्षाके तीन घटेमेसे दूसरा घटा समाप्त होनेकी घटी कुछ ही समय पहले बज चुकी है। विद्यार्थि-दशामें परीक्षाके समय मेरी यह पद्धति रहा करती थी कि पहले दो घटोंमे मै कुछ प्रश्नोंके उत्तर विस्तारपूर्वक लिखा करता था और दूसरा घटा समाप्त होनेकी घटी होते ही, ऊपरका दरजा प्राप्त करनेके लिये, बचे हुए प्रश्नोंके छोटे छोटे उत्तर देकर पूरा प्रश्नपत्र हल कर देता था। इस पद्धतिसे प्रश्न-पत्र हल करनेपर भी, मैट्रिकमें मेरा सातवॉ या आठवॉ नबर आया था। जीवनकी परीक्षामे भी मै उसी तरहकी सफलता प्राप्त कर सकूँगा! कौन कह सकता है कि यह सफलता मुझे न मिलेगी! सिर्फ एक बात जरूर मुझे ध्यानमे रखनी होगी और वह यह कि तीन घटेमेसे दो घटे समाप्त हो गये है। दूसरे घटेकी घटीकी कॅपकॅपी आवाज भी वातावरणमे विलीन हो गयी है। अब पूरा एक घटा भी मेरे हिस्सेमे न पड़ेगा। इस घटेके अन्तिम पॉच-दस मिनट बडी गडबडी और धॉधलीके होते हैं। इसलिये प्रश्न-पत्रके सब प्रश्नोंका विचार सक्षेपमे और विषयको लेकर व्यवस्थित रीतिसे करनेमें ही मेरी सच्ची चतुरता प्रकट होगी।

•

मेरे जीवनके ऐसे अनुत्तरित प्रश्न यानी—

गत दस बरसोंसे मै अपने मनमे यह रट रहा हूँ कि एक बार घूमकर सारा हिन्दुस्तान देख आऊँ। आन्तर-राष्ट्रीय पार्श्व-भूमिपर उपन्यास लिखनेका सकल्प किये मुझे करीब बारह वर्ष हो गये। परतु अभीतक आबूका पहाड, कश्मीरके गुलाब, मदुँगके मन्दिर, उत्तर प्रदेशके किसान और सीमा-प्रान्तके पठान—मेरे ये सारे मित्र मुझे स्वप्नमे ही मिलते है! अब इसके आगे मुझे यह बात क्षण-भरके लिये भी नहीं भूलना चाहिए कि मीठे स्वप्नोंमे मग्न हो जानेमे सगीतका

आनंद चाहे प्राप्त हो, फिर भी उन स्वप्नोंको सत्य-सृष्टिमे साकार कर दिखानेमे काव्यका उन्माद होता है।

जो स्थिति मेरे प्रवासके आयोजनकी हुई, वही लिखनेके संकल्पकी भी हो गयी। नये नये प्रदेशोंको जीतनेवाले राजाकी तरह नये नये विषयोंको खोज निकालने और नयी नयी कथावस्तुओंको पिरोनेमे आजतक कई महीने मैने बडे आनदमे बिताये हैं। परतु जिस तरह पत्थर, लकडी, ईंट, सीमेंट और रग–यानी कोई सुदर बॅगला नही है, उसी तरह विषय ग्रथ नहीं है अथवा कथावस्तुकी रूप-रेखा कोई उपन्यास नही हो जाता! यह 'इब्सेन', यह 'वर्षा काल'[1] यह 'तिसरी भूक'[2] – छिः! अभी कितना लिखनेको रह गया है मुझे! इसके आगे अब मुझे यह ध्यानमे रखकर ही लिखते रहना चाहिए कि यदि कलियाँ समयपर विकसित न हुई, तो उनके सूखकर गिर पड़नेकी सभावना होती है।

प्रश्नपत्रके और कौन कौनसे प्रश्नोंको हल करना रह गया है अभी?

अरे बाप रे!

इस सबसे कठिन प्रश्नको तो हाथ भी नहीं लगाया है अभी! मै जब अंग्रेजी दूसरी कक्षामे पढता था, तब पिताजीको लकवा मार गया और उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया। उस समय उनके चरणोंके पास बैठकर मैने अपने क्रोधी स्वभावको छोड़ देनेका निश्चय किया था! परतु अंग्रेजोंका स्वराज्य देनेका निश्चय और मेरा अपना क्रोधी स्वभाव छोड़ देनेका निश्चय!– बरसो गुजर गये, पर दोनो अभीतक जहाँके तहाँ हैं। प्रत्युत्, बढती गृहस्थीके साथ कार्य-विस्तार हो गया है और मै और भी अधिक चिड़चिड़ा हो गया हूॅ। मेरे इस क्रोधी स्वभावके कारण पत्नी, लड़कों और घरके अन्य लोगोंको कितने कष्ट होते होंगे। क्रोध प्रेमकी अपेक्षा अधिक अधा होनेका कारण उनका दुख मुझे दिखायी नहीं देता, यह बात दूसरी है! पर—

बस–निश्चय हो गया। कलसे चाहे कुछ भी हो किसीपर भी क्रोध न करूंगा! कहीं मेरे मेहमानको 'आपको पचासकी झकोर लग गयी है', कहकर ठीक यही बात तो मुझे नहीं सुझानी थी? मेरे क्रोधी स्वभावसे वे भलीभॉति परिचित हैं!

'तारुण्य विकारशील होता है। इसलिये तुम्हारा आजतकका क्रोध स्वाभाविक

१ 'वर्षा काल' और २ 'तिसरी भूक' (तीसरी भूख) ये मराठा पुस्तकें हैं।

था। परतु अब तुम्हें शान्त हो जाना चाहिए।' – क्या, यही उस वाक्यका अर्थ होगा ?

वह कुछ भी क्यो न हो, मैं कलसे किसीपर भी क्रोध न करूँगा। घरके विश्वामित्रको इस प्रकार एकदम वसिष्ठ बना हुआ देखकर, मेरी पत्नी आश्चर्यसे कहेगी – 'आजकल सर्वत्र क्रान्तियाँ हो रही हैं। हमारे घरमे भी —!'

मै उत्तर दूँगा, – 'आजकलकी किसी भी क्रान्तिमे स्त्रियोका ही बहुत बडा भाग होता है। रूसकी ओर देखो, चीनको देखो —'

वह गर्वसे स्वय अपनी ओर देखने लगेगी। तुरन्त मै कहूँगा, –'मेरे जीवनमे क्रान्ति मचा देनेवाली स्त्रीका नाम बताऊँ?'

वह आनन्दसे ऑखे विस्फारित कर मेरी ओर देखने लगेगी। मै शान्तिसे दो शब्द कहूँगा, – 'पचासकी झकोर!'

और क्षण-भर ठहरकर फिर मै धीरेसे कहूँगा – 'यानी परसों तुम्हारे द्वारा मनायी गयी मेरी पैतालीसवी वर्ष-गॉठ! उस दिन तुम यदि श्रीखड न बनाती, तो यह क्रान्ति कभी होती ही नहीं!'

● ● ●

१८

नये खपरे !

मुझे वह दुर्घटना बडी आनददायक मालूम हुई। इसका मतलब यह नही कि कोई ऐसी घटना हुई हो कि मै किसी अत्र्यावत् मोटरसे सफर कर रहा था, सामनेसे आनेवाली एक दूसरी सुदर मोटरसे वह टकरा गयी और उस टक्करमे स्वय तैमूरलग बननेके बजाय एक रूपसुदरीसे मेरा परिचय हो गया हो। ऐसी कोई घटना नही हुई थी। ऐसे प्रसग सिर्फ उपन्यासो और फिल्मोमें हुआ करते है।

हम – यानी मै और मेरे मित्र चितोपन्त – चहल-कदमीके लिये घरसे बाहर निकले थे। इस मुहिमपर रवाना होनेसे पहले हमने खिड़कीसे झाँककर आकाशका निरीक्षण कर लिया था। वहाँ धूप इस तरह साफ चमक रही थी जैसे हजारो बिजलीके दीये लगे हो। मेरा यह मत है कि घूमने जाते समय क्या छतरी और क्या स्त्री, इनमेसे किसी एकको भी अपने साथ नही ले जाना चाहिए। ये दोनो घूमनेका आधेसे अधिक मजा किरकिरा कर देनेमे बडी कुशल होती हैं। छतरीके कारण हमारे हाथमे रुकावट-सी हो जाती है। और यद्यपि कवियोने गज-गतिको स्त्रियोके सौन्दर्यका लक्षण माना है, फिर भी उनकी इस चालके कारण हमारी चालमे बधन पड़ जाता है! इस अनुभवको ध्यानमे रखकर ही मैने हाथमे रखी हुई छतरीको वापस खूँटीपर टँग दिया। चिंतोपन्त भी अपने साथ छतरी लाये थे। परन्तु हमारे

घरमे पडे हुए किसी समाचार-पत्रमे उन्होंने वर्षाका भविष्य कुछ समय पहले ही पढा था। उस भविष्यके अनुसार आगामी आठ दिनतक इस अभागी पृथ्वीपर वर्षाकी एक बूँद भी गिरनेकी सभावना न थी। इसलिये उन्होंने भी अपनी छतरी हमारे घर रख दी।

बडी शानसे हाथ हिलाते हुए हम बस्तीसे बाहर आये। यहाँतक तो सब कुछ ठीक था। परतु बालको, स्त्रियो और राजाओका झक्कीपन निसर्गमे एकत्रित हुआ रहता है, यह अनुभव हमे शीघ्र ही हो गया। बात-की-बातमे आकाश बादलोसे काला पड गया। बिजलीका प्रवाह बद हो जानेके कारण, किसी विशाल नाटक-गृहके सारे ऑखोको चौंधिया देनेवाले दीये एकदम बुझ जावें, उस तरह आकाश दीखने लगा। सॉय-सॉय करके हवा उलटी-सीधी बहने लगी। हम सोच ही रहे थे कि आसरा कहॉ खोजा जाएँ, तभी वर्षाकी एक बडी झडी हमपर आकर गिर भी पडी।

मैंने जो आनददायक दुर्घटना कही वह यही थी। शायद इसलिये हो कि उम्रके साथ मनुष्यका भय बढता जाता है, या किसी और कारणसे हो, पिछले कितने ही वर्षोसे वर्षामे यथेच्छ भीगनेके सुखका मैने अनुभव नहीं किया था। मूसलधार वर्षाका नाम सुनता तो उसका काव्य तो एक ओर धरा रहता, पर सर्दी, खॉसी और निमूनिया आदि मेरी नजरोके सामने आकर खडे हो जाते, ऐसा आजकल प्रघात ही पड गया था। परतु उस तूफानी झडीमे फॅस जानेपर मेरा नित्यका भय कहॉ भाग गया, कौन जाने! शरीर भीगकर बिलकुल गीला होते रहनेपर भी मेरा मन विलक्षण रूपसे उल्लसित हुआ। वह किसी छोटे बच्चेकी भॉति निरकुश हो कर नाचने लगा। आसपास बरस रहे पानीकी शोभा देखनेमे मै तल्लीन हो गया। मै मनमे कह रहा था – ओ हो! स्वर्गसे बडी बडी मोतियोकी लडियॉ, एकके बाद एक टूटकर, तो आज नीचे नहीं गिर रही है! छिः! आज नंदनवनमे कोई बडा भारी समारोह हो रहा होगा। उस समारोहके लिये अप्सराओंने असख्य सुदर पुष्प-मालाएँ गूँथकर उनकी राशियॉ रचकर रखी होंगी। परतु इन्द्रका ऐरावत भूलसे नदनवनमे घुस गया होगा और उन पुष्प-मालाओको सूँडमे लेकर उन्हें पृथ्वीपर फेकनेकी सनक उसपर सवार हो गयी होगी!

इसी समय हवा बन्द हो जानेके कारण, झड़ी आड़ी गिरने लगी। शरीरपर उसकी मार चपसे पडती थी। ऐसा लगता था जैसे रेशमी कोडेकी फटकारे ही हो। उनकी पुष्प-मालाओसे तुलना करना निरा पागलपन था। उनकी ओर

देखते देखते मुझे ऐसा लगने लगा जैसे प्राचीन कालका कोई धनुर्धारी अविरत शर-वर्षा कर रहा है। इसी समय चारो ओरसे हवाने कुहराम मचाना शुरू कर दिया! झड़ियाँ स्वच्छन्दतासे नाचने लगी। उनकी उस चंचल और मोहक हलचलको देखते देखते मुझे लगा—स्वर्गकी अप्सराओंका दल ही उन्माद-नृत्यमे निमग्न हो गया है। उनके पैरोंके घुँघरू टूटकर उनके नूपुर लगातार गिर रहे हैं, इसकी भी उन दिव्य नर्तकियोंको सुध नही।

चितोपन्तने झटकेसे मेरा कोट खींचा, इसलिये मै होशमे आया! अन्यथा पर्जन्यकी वह अद्भुतरम्य क्रीडा देखता हुआ मै कितनी देरतक उन्मत्त रहा आता, कौन जाने! मुझे हाथसे खीचते हुए पन्त बोले,—'वर्षाके जल्दी थमनेके कोई आसार नही दीख रहे हैं। चलो, जरा दौडे। वह देखो, दूरपर एक इमारत-सी दीख रही है!'

हम दौड़कर उस इमारतके पास पहुँचे। इमारत काहेकी? दो कमरोका एक मामूली घर था वह! दोनो कमरे खुले ही थे। भीतर कोई मनुष्य न था। हम तुरन्त एक कमरेमे घुसे। मैने ऊपर देखा और सहज-भावसे कहा,—'नये खपरे हैं ऊपर। अब भीगनेका हमे कोई भय नहीं!'

हमने अपने कपड़ोंको निचोडना शुरू किया। उसी समय ऊपरसे छोटी छोटी बूँदे टप् टप् करके हमारे शरीरपर गिरने लगी। वर्षामे एकदम बिलकुल भीगकर तरबतर हो जाना मनुष्य सह सकता है, परतु एक एक बूँदसे भीगनेकी उसमे हिम्मत नहीं होती। किसी लम्बी बीमारीसे घुलनेकी तरह भयकर लगता है वह! चिन्तोपन्तने ऊपर देखकर कहा,—'नये खपरे हैं न? वे इस तरह गलेगे ही! चलो, उस दूसरे कमरेमे चलकर देखे।'

हम दूसरे कमरेमे गये। उस कमरेके छप्परके खपरे पुराने थे। मैने समूचे कमरेको ध्यानसे देखा। जमीनका एक पैसे बराबर भाग भी कही गीला नही हुआ था।

बस, हो चुका! तुरन्त ही चिन्तोपन्तका भाषण आरभ हो गया। पुरानेका पक्ष लेना उनका बिलकुल ऐच्छिक विषय है। ऊपरसे वे पुराने खपरे गवाहकी हैसियत-से उनकी तरफ खड़े थे। फिर क्या पूछना है? उन्होंने मुझे यह डोज पिलाया,—'आपके इन नये कोरे खपरोंकी अपेक्षा हमारे पुराने टूटे-फूटे हुए खपरे ही अच्छे।' इसे वे लगातार रट रहे थे।

मै इरादा कर रहा था कि घर जाकर पत्ती चायका काढा बनवाकर पिऊँगा। पर मुझे लगा कि वह अनायास यही मिल गया! वर्षा थमकर, हमारे घर पहुँचते-तक, पन्तका व्याख्यान जारी रहा।

मुझे लगा कि यदि मै चुप रहा, तो इसका मतलब यह होगा कि, मैने हार स्वीकार कर ली है। इसलिये अन्तमे मैने कहा, 'पन्तजी, नयेकी निन्दा करनेवाले आप लोग एक बात जानबूझकर भूल जाते हैं। आजका पुराना, बीत गये कलका नया ही होता है! कुछ समय पहले जिन पुराने खपरोंके तले हम सुरक्षित रहे, वे एक समय नये ही थे। और वे जब नये थे तब आजके नये खपरोकी तरह गले भी होगे। वह देखनेके लिये हम न थे, यह बात दूसरी है। आज गलनेवाले ये नये खपरे दो सालके बाद पुराने हो जायेंगे। फिर पानीकी एक बूँद भी उनमेसे गलकर नीचे नही गिरेगी।'

चिन्तोपंतको किसी भी तरह मेरी यह बात जँचती ही न थी! वे कँधे झटकारते हुए बोले, - 'इस तरहका बातूपन कोई सत्य नहीं होता।'

सत्य सत्य कहकर, अर्ध-सत्यको गले लगानेवाले हमारे चिन्तोपतपर मुझे हमेशा ही हँसी आती है। पर इस दुनियामे ऐसे चिन्तोपत क्या एक ही हैं? पुरानेके प्रति प्रेम और नयेके प्रति भय, मनुष्यके सुप्त मनके दो अत्यन्त प्रभाव-शाली विकार हैं। जो परम्परासे चला आ रहा है वह पवित्र है, जिसके पीछे कोई परम्परा नही है, वह अमगल है। जिन आचारोपर समयकी मुहर लग चुकी है उनके विषयमे विचार करनेका कोई कारण नही! परतु नये आचार? अँ हूँ - वे समाजके लिये हितकारी कैसे होगे?

पुरानेको, केवल वह पुराना है इसलिये गले लगाकर और नयेको, केवल वह नया है इसलिये ठुकराकर, मनुष्यने अभीतक जितना आत्मघात कर लिया है, उतना निसर्गकी अँधी राक्षसी शक्तिने भी उसका नुकसान नही किया है! प्रियजनकी मृत्युसे हमे जो विकलता आ जाती है उसे दूर करनेके लिये हम इस तत्त्वज्ञानको कि, मनुष्य जिस तरह जीर्ण वस्त्रोको त्याग कर नये वस्त्र धारण करता है, उसी तरह आत्मा भी पुरानी देह त्याग कर नयी देहमे प्रवेश करती है, माननेके लिये बहुत जल्द तैयार हो जाते हैं। परतु यदि कोई यह कहे कि, आजकी समाज-रचना बहुत पुरानी हो गयी है, किसी खण्डहरके बिलोंमे जिस तरह सर्प छिपे रहते हैं, उसी तरह

विषमताके कारण खोखले हुए आजके समाजमे मानवताके हितशत्रु छिपे बैठे हुए हैं, तो यह अवश्य हमारे चिन्तोपतको नही जँचता !

गाधीवाद और समाजवादपर आक्षेप उठानेवाले अनेक बुद्धिमान लोग भी चिन्तोपंतकी ही पँक्तिमे बैठनेकी योग्यता रखनेवाले होते हैं ! नही, सक्षेपमे, हमारे समाजमे बुद्धि शब्दका अर्थ बहुतसी किताबे पढ़ने, बिना समझे खूब बक-बक करने अथवा बडी बड़ी डिग्रियों और उनके अनुषगसे मिलनेवाले विपुल धनको प्राप्त करनेकी अपेक्षा भिन्न क्वचित् ही होता है ! बुद्धिका सच्चा कार्य जीवनसग्राममें मनुष्यकी आत्माका सारथी होना है । परतु आजकलके समाजमे यह सारथी विदूषक हो गया है ! गाधीवाद और समाजवादमे अनेक दोष होगे । परतु विषमताके कारण जो बिलकुल झुलस गयी है और महायुद्धोने जिसकी नाकमे दम कर रखा है, उस मानवताको इन दो तत्त्वज्ञानोके सिवा आश्रय लेनेके लिये दुनियामे दूसरा कोई स्थान नही है, यह सूर्य-प्रकाशकी तरह स्पष्ट है ! तिसपर भी स्टैलिनकी थोडी-बहुत काल्पनिक क्रूरताओका चप-चप करते हुए वर्णन करके अथवा बाह्यतः असगत लगनेवाली गाधीजीकी अनेक उक्तियोपर तूफान उठाकर, इन दोनों तत्त्वज्ञानोके विषयमे बोलनेवाले असख्य लोगोको जब मैं देखता हूँ, तब मेरे मनमे यह विचार आये बिना नही रहता कि मनुष्य चाहता अवश्य है कि सुधार हो, पर वह उसे करना नही चाहता !

सामान्य मनुष्यकी इस प्रवृत्तिके कारण दुनिया जहाँकी तहाँ अथवा ज्योकी त्यो रह जाती हो, यह बात थोड़े ही है ! वह क्षणक्षणमे, कणकणसे बदलती ही रहती है ! इस परिवर्तित जगके साथ मनुष्यको भी अपने आपमे परिवर्तन कर लेनेके लिये मजबूर होना ही पडता है । सामान्य मनुष्यके जीवनका आजका महत्त्वपूर्ण प्रश्न यही है कि ये परिवर्तन बुद्धिपूर्वक किये जायँ, अथवा जैसे होते जायँ उसी रूपमे उन्हे स्वीकार कर लिया जायँ ! अभीतक अनेक महापुरुषोंने जगको सुधारनेके प्रयत्न किये । वे अधिकाँशमें निष्फल रहे । इसका कारण एक ही है । सेनापति जिस प्रकार सेनाकी सहायतासे लड़ाई जीतता है, उसी तरह महापुरुष जिन नये जीवन-मूल्योंको सूचित करता है, उन्हें सामान्य मनुष्यके सहकार्यसे ही रूढ होना पड़ता है । परतु साधारण मनुष्य प्रायः हमारे चिन्तोपतकी तरह होता है ! केवल आदतके कारण, वह पुरानेसे चिपका रहता है और नयेके विषयमे मनमें गाँठ रखकर, उससे दूर रहता है । यह बात उसके ध्यानमे ही नहीं आती कि नया

और पुराना कोई परस्पर विरोधी बातें नहीं हैं। एक ही दृष्टिसे वह पुरानेके गुण और नयेके अवगुण देखता रहता है। कलका नया आज पुराना होकर हमारे स्वभावमें मिल गया है। परतु कलका नया जरूर दूरत्वके कारण हमें विचित्र प्रतीत होता है, यह उसकी समझमें नहीं आता! प्रत्यक्षता इस दूरत्वको नष्ट करती है। परतु वह प्रत्यक्षता हमारे चिन्तोपंत जैसे मनुष्योंमें आयेगी कहाँसे?

अरे हाँ, चिन्तोपंतने जब नये खपरोंपर चढाई की, तब उनसे ऊपर देखनेके बजाय यदि मैं नीचे देखनेके लिये कहता, तो बड़ा अच्छा होता! पिछले हफ्तेमें ही उन्होंने नयी चप्पलें खरीदी हैं। पहले दिन वे उन्हें थोड़ी लगी, इसलिये वे कुछ चखचख भी करते थे। परतु कल जब मैं अपने लिये चप्पलें खरीदने जा रहा था, तब उन्होंने मुझसे कहा था, –'जिस दूकानसे मैंने ली है, उसी दूकानमें जाकर खरीदना। बहुत बढ़िया चप्पलें हैं वहाँ! इस लडाईके जमानेमें इतनी अच्छी चप्पलें–स्वप्नमें भी मुझे सच न लगता! कल यदि कोई देवता मुझपर प्रसन्न होकर मुझसे वरदान माँगनेके लिये कहे तो मैं उससे कहूँगा, –'प्रभो, मुझे एक ही वरदान दीजिये। जन्म-भर मुझे ऐसी ही नयी चप्पलें मिलें।''

●●●

१९

गूँगे लोग

दैनदिनी बहुतसे लोग लिखा करते हैं। लम्बे-चौडे पत्र लिखनेका शौक भी बहुतों-को होता है। परतु अच्छी दैनदिनी सुदर पत्रकी तरह ही एक दुर्लभ वस्तु है। घटी हुई घटनाओंको ज्योंकी त्यों लिखकर रखनेका काम क्या कोई भी ऐरा गैरा कर सकता है? परतु ऐसे टिप्पनोंसे हमेशा होनेवाले नीरस अनुभवोंके बजाय, भिन्न सृष्टिको निर्माण कर देनेका सामर्थ्य बहुत ही कम लोगोंमे होता है। पत्र लिखनेकी कला तो आजकल गप्पोंकी कलाकी तरह इतिहासकी चीज सरीखी ही हो गयी है। 'आज बुआजी हमारे घर चायपर आयीं,' 'दादाजीको अभीतक गठिया तग कर रहा है' आदि वाक्योंमे जिसे मजा आ सकता है ऐसा महाभाग समूची दुनियामे क्या खोजनेसे भी मिल सकता है? परतु दुर्भाग्यसे हमारे बहुतसे पत्रोंमें और जिन्हे हम बिलकुल अपने अत्यन्त घनिष्ठ मित्रोंकी गुप्त बाते मानते हैं, उन सभाषणोंमे इसी प्रकारकी बातोंका प्रमुखतासे उल्लेख हुआ करता है।

सचमुच हरएक व्यक्ति यदि दैनदिनी लिखे और उसे लिखते हुए यह सावधानी बरते कि उसमे उसके अन्तरगका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, तो अवकाशका समय व्यतीत करनेके लिये कहानियों और उपन्यासोंको पढनेकी किसीको भी आवश्यकता

न होगी । वैसे देखा जाय तो हरएक मनुष्यका जीवन एक हृदयस्पर्शी कहानी ही होती है। है कि नही ? परतु बहुतसे लोग अपनी जीवन-कहानी न सुनाकर इस ससारसे प्रयाण कर दिया करते है। कभी कभी उन्हे यह भी पता नही रहता कि उनके जीवन-ग्रथमे उत्कट कथागुण वर्तमान हैं। इस धारणाको लेकर ही कि, हमारा जीवन-लेख दूसरी किसी जीवनकहानी की प्रस्तावना है, वे अपने दिन व्यतीत किया करते हैं। यदि वे यह महसूस करे कि सबके जीवन-चरित्रमे एक सुदर कहानीकी सामग्री भरी होती है, तो तरुण पीढीको कितनी मदद मिल सकती है ! परतु ये मनुष्य बहुधा ध्येय-शून्य मनःस्थितिमे टटोल टटोलकर अपनी जीवन-यात्रा येनकेन प्रकारेण पूरी कर देते हैं ! भविष्यकाल तो उन्हे कुहरेसे आच्छादित दीखता ही है। परतु भूतकाल भी उन्हे उतना ही धुँधला प्रतीत होने लगता है । हमारा मुडन कब हुआ, हमारा उपनयन सस्कार कब हुआ, ऐसी घटनाओंकी, अथवा बहुत हुआ तो, अपने पहले चुम्बनकी ठीक तारीख ये लोग शायद बता सकेंगे। परतु इतिहासमे लिखे सनोंकी तरह ये तारीखें भी जीवनपर प्रकाश डालनेमे असमर्थ होती हैं । ये घटनाएँ हरएकके जीवनमे होती ही रहती हैं। उन्हे केवल नोट कर देनेसे किसीका भी मनोरजन अथवा मार्गदर्शन न होगा । परतु यदि वे यह बताएँ कि पहले चुम्बनकी तरह अपूर्व प्रसगपर उनके अन्तरगके अन्तरंगमे कौनसी मोहक कल्पनाएँ नृत्य कर रही थीं, तो वे अवश्य ससारकी दृष्टिसे मनोरजक और मार्गदर्शक होगी। जीवनके किसी भी प्रसगके बजाय, उसके प्रत्येकपर होनेवाले सस्कारो और प्रतिक्रियाओमे ही मानव-जीवनकी सच्ची विविधता है। यह विविधता ही जिज्ञासा और आनदकी आत्मा है।

परतु बहुतसे लोगोको अपने निजी अन्तरगका स्पष्ट चित्र खीचनेकी कला किसी भी तरह सिद्ध नही होती। वे लोग ऊबतेतक एक ही नीरस बात कहते जायेगे अथवा किसी दूसरेका कारण अनुकरण करनेमे सतोष मान लेगे । लोगोंमें यह दोष इतनी पराकाष्ठाको पहुँच गया होता है कि ध्वनिके बजाय प्रतिध्वनि ही उनके स्वभावकी विशेषता हो बैठती है। इन लोगोंको कम-से-कम एक भाषा आती है, यह स्पष्ट है । परतु उस भाषाके द्वारा वे अपने निजी विचारो अथवा भावनाओंको किसी तरह प्रकट ही नही कर सकते । दूसरेके द्वारा कही गयी बात ही उनके मुँहसे अनजाने बाहर निकलती रहती है । ऐसे लोग स्थूल दृष्टिसे सिर्फ यह कह सकते है कि हम क्या कर रहे हैं अथवा दूसरे लोग क्या कर रहे हैं । इसके

परे उनसे अपनी वाणीकी देनका उपयोग करते नही बनता। ऐसी एक ही साँचे-मे ढली हुई बातोमे आकर्षक क्या हो सकता है? मार्ग-दर्शनकी दृष्टिसे तो वे बेकार ही होती हैं।

हम सब प्राय: इसी प्रकारका बर्ताव करते है। लगभग सभी लोग एकान्तमे स्वय अपनेसे ही अधिक बाते किया करते हैं, यह दुर्भाग्यकी बात है। मन-ही-मन वे जो विचार किया करते है, वही यदि उद्गारके रूपमे बाहर निकल पडे, तो मानवी समाजकी अपेक्षा अधिक कुतूहलजनक दृश्य ससारमे अन्यत्र कही भी न दिखेगा। परतु वर्तमान स्थिति देखे तो—छोडिये भी! कदाचित् मै ही संशयात्मा हो रहा हूँगा!

यदि इतने लोग भी, जो अँगुलियोपर गिने जा सकते हो, अपने अन्तरगके अनुभवोका यथार्थ इतिहास लिखे, तो बाह्यतः अत्यत रूखी दीखनेवाली अनेक जीवन-कहानियाँ बात-की-बातमे अत्यत अद्भुत-रम्य लगने लगेगी। सिर्फ मनोरजक लगनेवाले जीवन-चरित्रो और आत्म-चरित्रोके पहाड दुनियामे पड़े हैं। परतु जीवनका व्यापक और उत्कट ज्ञान करा देनेकी सामर्थ्य उनमेसे बहुत ही कम ग्रथोमे मिलती है। इन ग्रथोके लेखक अपनी कीर्तिका रसपूर्ण वर्णन करनेमे और उन्हे पहचाननेवाले बडे बडे लोगोकी विस्तारपूर्वक जानकारी देनेमे इतने खो जाते हैं कि जीवनविषयक तत्त्वज्ञानके बारेमे कुछ लिखनेके लिये उनके ग्रथोमे स्थान ही नही बच पाता होगा!

अपना वैयक्तिक तत्त्वज्ञान लोगोको समझाकर बतानेमे बहुतोको झिझक होती होगी, फिर भी उसके बारेमे प्रत्येकको स्वय अपने मन-ही-मन विचार करना पडता है, इसमे सदेह नही। किसी असावधानीके क्षणमे मनुष्यका हमे जो दर्शन होता है, उसपरसे ही हमे यह मालूम हो सकता है कि वह किस प्रकारका मनुष्य है। यदि मेरी राय जानना चाहते हैं तो सौभाग्यसे मैने इतनी बरसाते देखी हैं कि इस बातकी अपेक्षा कि मनुष्य किस प्रकारका है, मै इसी बातपर अधिक महत्त्व दूँगा कि जीवनमे उसका कोई निश्चित आधार है या नही। जब मानवी प्रतिध्वनि, मानवी नकली चेहरे और मानवी सगीतोके रिकॉर्डोंसे भेट हो जाती है, तब जरूर मुझे ऐसा लगने लगता है कि, मनुष्यके सहवासकी अपेक्षा एकान्त ही अधिक अच्छा है। स्वय अपना ही ढिढोरा पीटते हुए कुछ न करने-

के बजाय, जो न करना चाहिए वह भी यदि मनुष्य करे, तो अच्छा! और अपनी विचारशक्तिको बहुजनोंका अंध-दासत्व स्वीकार करनेके लिये मजबूर करके, सुरक्षित रहनेके बजाय, लौकिक दृष्टिसे निषिद्ध लगनेवाले विचारोंमें रम जाना भी बहुत अच्छा है!

●●●

२०

मृत्यु

बचपनमे नाटक देखनेका मुझे बडा शौक था। यही कहिये न कि उनके पीछे मै बिल्कुल पागल था। 'सत्य-विजय' से लेकर 'शारदा' तक सभी प्रकारके नाटकोको मैने कितनी बार देखा होगा, यह बेचारा चित्रगुप्त ही जानता हो। 'लई बेस झुणका भाकूर।'[1] और 'मधुर किती कुसुमगंध सुटला'[2] —दोनो गीतोको गुनगुनानेमे उस समय मुझे एक-सा ही आनद आता था। उस आनदका स्मरण होता है तो लगता है कि बचपन और साधुत्वमे अत्यन्त साम्य है। एक कथा है कि रामकृष्ण परमहस एक हाथमे मिट्टी और दूसरे हाथमे सोना लेकर दोनो हाथोंकी चीजोंको नदीके पात्रमे एक ही निर्विकारितासे फेकते जाते थे। नाटक देखनेके बारेमे मेरी इसी प्रकारकी समत्व-दृष्टि रहा करती थी।

परतु अपवादके बिना कोई भी नियम सिद्ध नहीं होता। मेरी 'समः सर्वेषु नाटकेषु' वाली वृत्तिको भी इसी तरह एक अपवाद था। वह था 'मृच्छकटिक' नाटक। फूलोंके लिये पागल स्त्रीको आखिर उनमे भी एकाध फूल विशेष प्रिय होता ही है न? उसी तरह 'मृच्छकटिक' मेरा अत्यन्त प्रिय नाटक था।

मैं उस समय लगभग छः-सात सालका था। शामको स्कूलसे लौटते समय

[1] 'यह बेसन और रोटी कितनी मस्त है!' [2] 'फूलोंकी कितनी मधुर सुगन्धि आ रही है!'

हर जगह ' मृच्छकटिक ' के विज्ञापन लगे हुए देखकर मेरा मन बिलकुल अस्वस्थ हो गया। घर जानेपर मॉमे किस चिजीके लिये हठ करूॅ, इसका विचार करनेके बजाय वसन्तसेनासे सोनेकी गाडीका हठ करनेवाले चारुदत्तके लड़केका विचार करनेमे ही मै तल्लीन हो गया।

रातको भी मेरा मन खानेमे न था।

पिताजीके यह पूछनेपर कि ' क्या, तुझे कुछ हो रहा है ? ' मैने गर्दन हिलाकर ' नही ' कह दिया जरूर, परतु मेरी ऑखोमे ऑसुओको झलकते हुए देखकर उन्हे लगा होगा कि मै उनसे कुछ छिपा रहा हूॅ।

मेरी ऑखे गीली होनेका सच्चा कारण मेरे कानोमे गूॅजनेवाला —

> ' बाळा घालोनिया गळां। रक्त सुमनांच्या माळा ॥ [१]
> स्कधावरी स्थापियला। लोहशूल हा ॥ '

यह चारुदत्तका गीत था। परतु पिताजी इसे समझ ले यह सभव न था। भोजनके बाद इस शकासे कि मुझे कही बुखार तो नही आ गया है, उन्होने मेरे शरीरको हाथ लगाकर देखा। परतु अपने रामकी देह बिलकुल ठडी थी! यह देखकर कि मेरा शरीर ठडा है, पिताजीको अच्छा लगा। उन्होने मेरी ओर हॅसते हुए देखा। मै भी हॅस पडा।

मनुष्यका मन तिजोरीकी तरह होता है, उसे खोलनेके लिये मामूली तालियॉ कभी काम नही दे सकती, यह बात पिताजीके मनमे ही न आयी।

परतु घडीका कॉटा जैसे जैसे दसकी तरफ दौडने लगा वैसे वैसे बिस्तरके भीतर-ही-भीतर मेरी हलचल शुरू हो गयी। यह सोचकर कि मुझे खटमल काट रहे हैं, पिताजीने नौकरसे मेरे बिस्तरको ठीकसे देखनेके लिये कहा। बेचारेने ऑखे फाड-फाड़कर ही देखा, परतु उसे दवाके लिये भी खटमल न मिला!

घड़ीमे घंटे बजने लगे।

टन्–टन्–टन् ..

मुझे भ्रम हुआ जैसे कोई मेरे हृदयपर घनसे प्रहार कर रहा है। उधर ' सदा-सुख थिएटर ' मे ड्रॉपका परदा खुल गया होगा। तोदियल सूत्रधारने फूल बरसा-

[१] ' लडकेके गलेमें लाल फूलोंकी माला पहनाकर उसने कॅधेपर लोह शूल रख दिया। '

कर अपनी कर्कश आवाजमें, 'वंदन त्या ईशा उमेशा'[1] कहकर परमेश्वरकी प्रार्थना करना आरंभ कर दिया होगा और मै यहॉ—घरमे—बिस्तरपर ...

छिः ! छिः ! छिः !

मेरी कुलबुलाहट देखकर पिताजीने प्रेमसे मुझे अपने हृदयसे लगा लिया, मेरी पीठपर हाथ फेरा और मैंने उनकी गोदमे सिर छिपाकर नाटकको जानेकी बात निकाली।

पहले वे जरा नाराज़ हुए।

परतु बाल-हठ, स्त्री-हठ और राज-हठमे बाल-हठको जो अग्रस्थान दिया गया है, सो यो ही नही !

स्त्रीके सौदर्यकी ओर झॉककर भी न देखनेवाले शुक्राचार्य और राज-सत्ताकी परवाह न करनेवाले लेनिन दुनियामे हो चुके हैं—आगे भी होगे—पर, वात्सल्यसे न पिघलनेवाले मनुष्य ? ऐसे प्राणियोंकी मनुष्य-कोटिमे गणना ही न होगी।

यह कहनेकी आवश्यकता नही कि, अपने राम नौकरके साथ 'मृच्छकटिक' देखनेके लिये आखिर थिएटर पहुँच गये। परतु नाटक भूलसे ठीक समय पर शुरू हो जानेके कारण जब हमने थिएटरमे कदम रखा तब चारुदत्त और मैत्रेयका सभाषण एकदम मेरे कानोमे पड़ा।

मैत्रेयने चारुदत्तसे प्रश्न पूछा,—'मित्र, यह बताओ दरिद्रता और मृत्युमे तुम्हे क्या अच्छा लगता है ?'

चारुदत्त गाने लगा—'मरण बरें वाटतें। दारिद्र्याहुनि मित्रा ते॥'[2]

चारुदत्त बड़ी लंबी तानें ले लेकर 'ग़रीबीसे मृत्यु अच्छी' वाली बात दर्शकोको समझा-समझाकर कह रहा था। वे भी सिर हिला रहे थे। परतु मेरे मनमे बहुत गहराईमे कुछ चुभ रहा था। पहले प्रत्येक बार 'मृच्छकटिक' देखते समय सूत्रधारके प्रवेशमे ही मै सागलीसे अवंतिका नगरीमे प्रवेश किया करता था, गणेशजीके उत्सवकी अपेक्षा कामदेवका उत्सव बात-की-बातमें मुझे अधिक परिचित लगने लगता और हररोज मुझे दिखायी देनेवाले सूँडधारी गणेशके बजाय नाटकमे कभी भी न दीखनेवाला वसतसेनाका स्तभमजक हाथी ही मेरी ऑखोंके सामने मूर्तिमंत खड़ा हो जाता। परतु आज अवश्य ..

१ 'उस ईश और उमेशको वन्दना करता हूँ।'
२ 'मित्र, दरिद्रतासे तो मृत्यु ही मुझे अच्छी लगती हैं।'

जुहीकी पुष्प-राशिमें हाथ डाले और कॉटा चुभ जाय, सुन्दर सगीत सुनते सुनते बीचहीमे कुछ बेसुरा कानमें पड़ जाय – कुछ इस तरह मुझे हो गया।

'मनुष्यको मृत्यु अच्छी लगती है?'

मेरा मन कह रहा था–'यह बात बिलकुल झूठ है।'

सत्याग्रह करके नाटक देखने गया हुआ वीर था मै! परतु किसी भी तरह हमेशा की भॉति मेरा मन नाटकमे रग नहीं रहा था। प्रत्येक अकका परदा गिरता तो मुझे मैत्रेयके उस विचित्र वाक्यका स्मरण हो आता – 'अच्छा मित्र, बताओ, दरिद्रता और मृत्युमे तुम्हें क्या पसद है?'

क्षणभर शरीर सिहर उठता और मनमे आता, ऐसा प्रश्न शत्रु भी किसीसे न पूछेगा। फिर मैत्रेय जैसा अभिन्न मित्र मामूली बातोंके दौरानमें शान्तिसे चारुदत्तसे ऐसा प्रश्न पूछे, क्या, यह आश्चर्यकी बात नहीं है! इतना सुदर नाटक लिखनेवाले लेखककी बुद्धिको यह वाक्य चुभना चाहिए था।

'गुण ही प्रीतिका कारण है।' 'कोई घर देखकर धरोहर नहीं रखता, मनुष्य देखकर रखता है।' इस प्रकारके रसपूर्ण वाक्य लिखनेवाले कविको मैत्रेयके मुँहमें उस वाक्यको रखते समय यह कल्पनातक न आयी होगी कि मै कुछ भूल कर रहा हूँ। सुदर सगमरमरकी मूर्तियोंकी राशिमे जिस तरह एकाध सिदूरसे पुता हुआ पत्थर हो, उस तरह वह वाक्य ..

केवल उस रातको 'मृच्छकटिक' देखते हुए ही नहीं, बल्कि उसके बाद जब जब मैंने अपना यह प्रिय नाटक देखा या पढा, तब तब मैत्रेयका वह विलक्षण वाक्य सुनकर किंवा पढकर मेरा मन चकरा गया है।

चारुदत्तके मुँहसे 'दरिद्रतासे मृत्यु अच्छी है' यह कहलवानेमे चाहे शूद्रक उसकी दरिद्रता सिद्ध करना चाहता हो अथवा उसका स्वाभिमान दिखाना चाहता हो, पर एक मित्र दूसरे मित्रसे प्राण जानेपर भी यह कभी नहीं पूछेगा कि, 'मित्र, दरिद्रता और मृत्युमेसे तुम्हे क्या अच्छा लगता है?', और यदि किसी कारणसे वह दूसरा मित्र मृत्युकी बाते करने लगे, तो वह उन्हे क्षण-भर भी नहीं सुनेगा। शूद्रकका मनुष्य-स्वभाव-सबधी ज्ञान कितना भी मार्मिक रहा हो, फिर भी मैत्रेयके मुँहसे यह प्रश्न कहलवाते समय उसने भूल कर दी – मृत्यु स्वीकार करनेमे महत्ता है इस परम्परागत सकेतका वह शिकार हो गया।

परतु क्या दुख और दारिद्र्यसे ऊबकर मृत्युका आलिंगन करनेमे सचमुचमे

बड़प्पन है? ग़रीबी किंवा इसी तरहकी किसी आपत्तिसे ऊबकर मृत्युको अपनानेवाले लोग शूर न हो फिर भी भीरु होते हैं और थोड़ी देरके लिये यदि यह मान भी ले कि वे शूर हैं, तो बताईये इस तरह प्राण देनेवाले लोग संसारमे कितने मिलेंगे? सिर्फ इतने ही जो अँगुलियोपर गिने जा सकते हैं।

मृत्युकी कल्पनामे जो भयानक पर आकर्षक अद्भुतता है, उसके कारण ही इस कविको ऐसे संकेत सूझते होंगे। बेचारा शूद्रक अत्यन्त प्राचीन कालका कवि है। परंतु आधुनिक लेखक गडकरी[1]जी का वाक्य इसी तरह धोखेमे डालनेवाला है। वे कहते हैं – 'जबतक जीवित रहने लायक कुछ हमारे पास है, तभीतक मरनेमे मजा है।'

यह वाक्य आकाशदीयेकी तरह दूरसे सुंदर दीखता है। परंतु वह अर्ध-सत्य है। उसमे एक और अर्ध-सत्य जोड़े बिना वह पूर्ण सत्य न होगा। वह दूसरा वाक्य है – 'मनुष्यको हमेशा ही लगता है कि जीने लायक उसके पास बहुत है। परंतु उसे मरनेमे मजा कभी नही आता।'

मरनेमे मजा माननेवाले मनको देखते ही मुझे बचपनमे देखे हुए एक सन्यासीकी याद हो आती है।

एक मनुष्य प्लेगसे बीमार था। घर-बार और बाल बच्चे कोई न थे उसे। जब उसे ज्ञात हो गया कि उसका जीवन-दीप बुझ रहा है, तो उसने आसपासके लोगोसे इच्छा प्रकट की कि उसे सन्यास लेना है। तुरन्त ही उसे 'आतुर सन्यास'की दीक्षा दे दी गयी।

उसके उस नये अवतारको देखकर मृत्युको भय लगा, या क्या हुआ, कौन जाने! परंतु यह सच था कि सन्यासी जरूर उस रोगसे सोलह आने अच्छा हो गया। पर जब घूमने-फिरने लगा, तब उसे अपने नये आश्रमपर क्रोध आने लगा। सन्यस्त जीवन हँसी-खेल नही है। वह आखिर तारपरकी कसरत ही होती है! उससे वह शीघ्र ही उकता गया। हाँ, किसी भी होटलके नजदीकसे गुजरता, तो उसके भीतर जाकर चाय पीनेकी चोरी थी। किसीके घर भोजनके लिये जाता और वहाँ प्याजकी पकोडिया तली जानेकी खुशबू आती, फिर भी उन्हें माँग नहीं सकता था!

छिः! छिः! छिः!

[1] मराठी भाषाके प्रसिद्ध स्वर्गवासी कवि और नाटककार।

वह साफ साफ कहने लगा कि 'इस आपत्तिसे तो अच्छा था यदि मैं प्लेगमे मर जाता !'

मृत्युको अच्छा कहनेवाले मनुष्यकी मनोवृत्ति आतुर सन्यास लेनेवाले मनुष्यकी तरह ही होती है। भोले कवि चाहे तो विरक्त हुए मनकी इस क्षणिक लहरको खुशीसे सच मान सकते हैं।

परतु यदि चारुदत्तका सचमुचमें यह विश्वास हो जाता कि 'दरिद्रतासे मृत्यु अच्छी है', तो घर आयी हुई वसतसेनाको पहुँचानेके लिये रातको बाहर जानेपर वह घरकी ओर वापस कभी न आता। उसने सीधे क्षिप्राकी सड़क पकड ली होती!

मृत्यु कभी भी मनुष्यका मित्र नहीं हो सकती।

प्रिय पत्नीके चिरवियोगसे विव्हल हुए राजा अजको सतोष देनेके लिये कालिदास जैसे श्रेष्ठ कविने,

'मरण प्रकृतिः शरीरिणाम्, विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः'

लिखा हो, फिर भी उसमे कवि प्रतिभाका चमत्कार है, अनुभूति नही। कालिदासके सामने बचपनमे मृत्यु आकर खडी रही होगी, तब उसे वह नानीद्वारा कही गयी कहानियोंकी भयकर राक्षसनी ही लगी होगी! युवावस्थामे यह आभास होते ही कि मृत्यु बिलकुल समीप आ गयी है, उसने उसकी प्रार्थना की होगी,—'मेरे जीवन-वृक्षमे हालहीमे बहार आयी है। मेरी प्रतिभाकी कोयल अभी अभी ही तो गाने लगी है। प्रेमका पहला नशा ऑखोसे पूरी तरह न उतरा होनेके कारण अभीतक जीवनकी ओर मैने ऑखे भरकर देखातक नहीं ह। कृपा कर लौट जाओ। तुम जब पुनः बुलाने आओगी, तब मै आनदसे तुम्हारे साथ चला चलूँगा!' और आगे चलकर प्रौढावस्थामें मृत्युने आहिस्ते आकर पीछेसे उसके कॅधेपर हाथ रखा होगा, तब उस विचित्र हिमशीतल स्पर्शसे चौककर उसने मुडकर पीछे देखा होगा और दिखावटी हॅसकर इस अन्दाजसे कि मृत्यु सुन ले, उसने कहा होगा,—'अरे वाह, क्या इतनेमें ही मेरा समय पूरा हो गया! छिः! चित्रगुप्तके हिसाबमे कही कुछ भूल हो गयी होगी। 'शाकुन्तल' से अधिक सुदर नाटक अभी मुझे लिखना है! और 'मेघदूत'से भी अधिक सरस काव्य — यौवनके प्रेमको तो मैने खूब रंगाया है। परंतु प्रौढावस्थाके प्रेमका चित्रण किये बिना ससारसे बिदा हो जाना मेरे लिये —'

मृत्युने उसे आगे बात करने दी होगी या नहीं यह मैं नहीं कह सकूँगा। परतु 'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्' यह चरण गलत है, जीवन तत्त्वज्ञान नहीं, बल्कि

काव्य है और मृत्यु ही मानव जीवनकी सबमे बड़ी विकृति है – ये बाते उसे एक क्षणमे जॅच गयी होंगी।

वर्ड्स्वर्थ भी शूद्रक, गडकरी और कालिदासका ही भाईबंद है! मृत्युके वर्णनमे सत्यके बजाय सकेत ही रगे हैं उसने! 'We Are Seven' * यह उसकी प्रसिद्ध कविता ही लीजिये। कहते हैं इस कवितामे बाल-मनका स्वाभाविक सुदर चित्रण है। कविको सात-आठ सालकी एक प्रिय बालिका मिलती है। उसके दो भाई मृत होकर भी वह उन्हे हिसाबमे शामिल करती है और बार बार कहती है कि 'We Are Seven' उसे ऐसा लगता होगा कि उसके वे मृत भाई धरतीके भीतर शान्तिसे सोये हुए हैं। कवि-कल्पनाकी दृष्टिसे यह सब ठीक है! परतु मै अनुभवसे कहता हूँ – सात-आठ सालकी उम्रमे लड़कोको मृत्युके बारेमे घना अज्ञान नही रहता। अमा-वसके काले-स्याह अँधकारको अथवा खण्डहरके किसी बडे बिलको जिस भयभीत दृष्टिसे बाल-मन देखता है उसी दृष्टिसे वह मृत्युके गूढ स्वरूपका विचार किया करता है।

और यह मालूम होने ही कि मृत्युको झॉसा देनेके कुछ उपाय दुनियामे हैं, उस बालजीवको कितना आनंद होता है!

बचपनमे पौराणिक कथाएँ पढ़ते पढते जिस दिन अमृतका पता लगा तब सारे दिन मै बड़ी खुशीमे था। परतु मेरा वह ब्रह्मानद शीघ्र ही लुप्त हो गया। पिताजी-से यह मालूम होनेपर कि अमृत सिर्फ स्वर्गमे ही मिलता है, मै असमजसमे पड़ गया। मृत्युसे बचनेके लिये मैने अमृत प्राप्त करनेका उपाय सोचा था। परतु उसे प्राप्त करनेके लिये पहले मरना जरूरी है! मुझे यह सब एक अजीब झमेला-सा लगा! आगे चलकर संजीवनी विद्याने मुझे कुछ समयतक धीरज दिया! परतु शुक्राचार्यजी-के आश्रमका पता-ठिकाना किसीको भी मालूम न होनेके कारण मै निराश हो गया!

जब अंग्रेजी दूसरीमे गया, तब फिरसे आशाकी तरंग मेरे मनमे उठी। मार्कंडेय-का आख्यान कक्षामे शुरू हो गया था। मृत्युका क्षण आते ही भगवान शकरकी पिण्डीको आलिंगन कर मार्कंडेयने यमराजको खाली हाथ किस तरह वापस लौटा दिया, यह पढ़ते पढ़ते मुझे गुदगुदी हुई। आश्रय-स्थानकी दृष्टिसे मेरे घरके निकट शकरजीके मदिर कहॉ कहॉ हैं इसकी मैने मन-ही-मन एक सूची बनाकर भी रख ली। अब यह बात दूसरी है कि मुझपर उस सूचीका उपयोग करनेकी बारी ही न आयी!

* 'हम सात हैं'।

बचपनकी मेरी ये भोली कल्पनाएँ शीघ्र ही नष्ट हो गयीं। मृत्यु जीवनका कटु सत्य है, इसपर मुझे पूर्ण विश्वास हो गया।

बारह-तेरह वर्षकी उम्रमे पिताजी मुझे अकेला कर गये। आगे चलकर कितने ही वर्षोंतक 'अक्टूबरकी ग्यारह तारीख' आती कि मैं अस्वस्थ हो जाता, सारे दिन मुझे उनका स्मरण होता। मृत्यु ही यदि मृत्युका भक्ष्य हो सकती, तो कितना अच्छा होता – यह कल्पना बार-बार मनमे झाँकती और अन्तमे रातको एकान्तमे सिरहानेमे सिर छिपाकर बहुत रो लेता, तब हृदयका भार हल्का होता।

परन्तु शीघ्र ही मृत्युके भयानक स्वरूपकी याद मैं बिलकुल भूल गया। यौवन जीवनकी यक्ष-भूमि है। उसमे कदम रखनेवालेको मृत्युका अस्तित्व ही महसूस नही होता। सूर्योदय होते ही कुहरा नष्ट हो जावे, उस तरह मृत्युके विषयका सच्चा और झूठा सारा भय तरुण मनसे आप ही आप जाता रहता है।

'मृत्यु न म्हणे लहानथोर'[1]

'अथवा'

'गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्'

जैसी पंक्तियाँ इस यक्ष-भूमिमे सुनायी ही नहीं पड़तीं। वहाँ जो अखण्ड सगीत शुरू होता है, उसमे' —

'चल ये वेडे। कां घेतिस आढेवेढे'[2]

किंवा

'प्राप्तकाल हा विशाल भूधर।[3]
सुंदर लेणी तयांत खोदा।
निज नामें त्यावरती नोंदा।'

यही पंक्तियाँ बार-बार कानोमे पड़ती हैं।

पचीससे लेकर चालीसतक प्रीति कल्पकता जैसी लगती है और ऐसा आभास होता है कि पराक्रम अमृत लाने जा रहा गरुड है। हवाई जहाजकी ऊँची उड़ान हो किंवा किसी क्लिष्ट विषयका अन्वेषण हो, तरुण मन प्रसन्न मुखसे उसका स्वागत

[1] 'मृत्यु यह नहीं देखती कि यह छोटा है या बड़ा'।

[2] 'चल पगली, चली आ! आनाकानी क्यों कर रही है?'

[3] 'वर्तमान समय एक विशाल पर्वत है। उसमें सुन्दर मूर्तियाँ खोदो और उनपर अपने नाम लिखो।'

किया करता है। परतु चालीसके पार निकल जानेपर शरीरके साथ साथ मनका भी यह उल्लासकारक उन्माद कम होने लगता है। प्रीति कल्पलता होगी, फिर भी ससार बबूलका पेड है। उसके फूल मामूली ही होते हैं, और उनका एकाध छोटा-सा गुच्छा तोड़नेके लिये कॉटोमेसे चलना पडता है – इस सत्यका मनको पूर्ण ज्ञान हो जाता है। हमारा पराक्रम गरुडके समान हो, फिर भी परिस्थितिके पिजडेमे पंख फड़फडानेके सिवा उससे और कुछ करते बनना असभव है, यह भी इस समय मनुष्य जान चुकता है। इस उम्रमे यदि पुस्तकको नजदीक पकडे तो वह धुँधली दीखती है। परतु वही यदि दूर पकडे, तो उसके अक्षर स्पष्ट दीखने लगते हैं। अर्थात् अभीतक दूरत्वके कारण जिस मृत्युकी उसने परवाह नहीं की होनी है, उसका सत्यस्वरूप ही ऑखोके सामने स्पष्ट रूपसे खड़ा हो जाता है। उसे देखकर उसका कलेजा दहले बिना नही रहता। केवल काव्यमय कल्पनाओसे मनुष्यकी अस्वस्थता दूर नहीं होती। यह ज्ञान होते हुए भी कि मृत्यु सृष्टि-क्रममे एक स्वाभाविक बात है वह उसका स्वागत नही कर सकता। ताबे[1] ने इन भावोका बडा सुन्दर चित्रण किया है :

‘कळा ज्या लागल्या जीवा।’
मला की ईश्वरा ठाव्या
कुणाला काय हो त्यांचें।
कुणाला काय सांगावें ?
उरीं या हात ठेवोनी।
उरींचा शूल कां जाई ?
समुद्रीं चौकडे पाणी।
पिण्याला थेंबही नाहीं !
कशी साहूं पुढें मागे।
जिवाला ओढ जी लागे
तटातट काळिजाचे हे।
तुटाया लागती धागे
पुढें जाऊं ? वळूं मागें ?
करूं मी काय, रे देवा ?’

[1] मराठीके आधुनिक स्वर्गवासी कवि।

मृत्युकी कल्पनासे व्याकुल हुए प्रौढ मनकी इस खींचातानीका, कुछ दिन पहलेकी बीमारीमे, मैंने भी अक्षरशः अनुभव किया है। परतु इस व्याकुलताके मूलमे मृत्युके विषयमे लगनेवाला भय ही कारण होता है, ऐसा मुझे नहीं लगता। ऐसी कथा है कि बूढे हुए राजा ययातिने राज्यके बदलेमे अपने एक लड़केका तारुण्य खरीद लिया। ययातिने जो यह सौदा किया वह मृत्युसे डरकर नही, बल्कि इसलिये किया कि तारुण्यके उपभोगोंको भोगकर उसकी तृप्ति नहीं हुई थी। ऐसा तारुण्य प्राप्त होना सभव होता तो मै उसे कभी भी न स्वीकारता। चॉदनी रातमे स्वच्छन्दतापूर्वक भटकनेमे, पानीमे घटो पड़े रहनेमें, छोटे-बड़े साहसके काम करनेमे, अपनी रुचिके पदार्थोंको यथेच्छ खानेमे और अपनी प्रिय सहचारिणीके उन्मादक सहवासमे सुख होता है, यह मै अस्वीकार नही करता। परतु

'उठ रहे है ज्वार
      वेदना ही सह रही है
वेदनाके भार
      दूसरोंका दर्द समझे कौन
व्यर्थ है कहना,
      भला है मौन
हाथ रख तो लूॅ हृदयपर
      घाव भीतरका
मगर भरता नही
      नीर सागरका,
पियासेकी जलन हरता नहीं
कर रहा हूॅ मौतके दर्शन
      कभी आगे कभी पीछे
जा रहा है मन
      टूटते ही जा रहे क्षण-क्षण
जियाके सॉसके बन्धन
      है अखण्ड अपार है निर्बन्ध
कुछ सुझाओ, दो प्रकाश-किरन'

इस सुखकी मिठास मुख्यतः शारीरिक होती है। इन सुखोका उन उन समयोमे आकर्षक लगना नैसर्गिक होता है। परतु उनमे बुद्धिको भुला देनेवाली किंवा हृदयको हिला देनेवाली ऐसी कौनसी बात है? पर एक बात है कि ययातिकी तरह ऐन पचीसके नवजवान बननेकी लालसा न रहे, फिर भी मेरी यह हार्दिक इच्छा जरूर है कि आजकी मेरी प्रौढावस्था दीर्घ कालतक टिकी रहे। इस इच्छाके मूलमे मृत्युके बारेमे मनुष्यको लगनेवाले भयकी अपेक्षा प्रीतिका भाग ही अधिक है। 'मृत्यूला म्हणतो सबूर'[1] कवितामे कवि यशवत[2] ने इस भावका सुदर वर्णन किया है। वे कहते हैं—

'पाहोनी चिमणी पिला भरविते,[3]
आणून चारा मुखीं।
आपोआप मनांत बोल उठले,
मृत्यो, नको येउं, कीं॥

'मृच्छकटिक'के चारुदत्तके 'मृत्यु अच्छी लगती है' उत्तरका मुझे रह-रहकर जो आश्चर्य होता है, वह इसी कारणसे। मैत्रेय चारुदत्तका मित्र हो फिर भी पुरोहिताई उसका पेशा था! जैसा पेशा वैसी अक्ल! इसलिये यदि उसने 'मित्र, दारिद्र्य और मृत्युमे तुम्हे क्या अच्छा लगता है?' जैसा प्रश्न पागलकी तरह पूछा, तो यह बात एक बार क्षम्य मानी जा सकती है। परतु जिस चारुदत्तके पाँच-छः सालका इकलौता लड़का था, उसे इस प्रश्नका उत्तर देते समय 'मृत्यु मुझे अच्छी लगती है' यह कहना चाहिए था या मेरा रोहसेन बड़ा होतेतक मै मृत्युके विषयमें विचार करनेके लिये भी तैयार नही हूँ, यह कहना चाहिए था? यह कौन कहेगा कि दीन-दुखियो और दलितोके लिये सारी सम्पत्तिको सहृदयतासे खर्च करनेवाले चारुदत्तके पास वात्सल्यका वैभव ही न था? मै चारुदत्त जैसा सम्पन्न नही हूँ और उतना उदार भी नही हूँ। साथ ही मैत्रेय सरीखा मूर्खतासे भरा

[1] मराठीके आधुनिक कवि—श्री० य० दि० पेण्ढरकर।

[2] 'मृत्युसे कहता है—ठहरो।'

[3] 'दाने चुगा रही है
अपने बच्चोंको पँछिन।
मृत्यु ठहर! मेरे जीवन-
के अन्तिम निमिष न गिन॥'

मृत्युका प्रश्न पूछनेवाला कोई स्नेही भी मेरे मित्र-परिवारमे नही है। पर जब जब मुझे यह आभास हुआ कि दुर्घटना किंवा बीमारीके परदेकी ओटमे मृत्यु मेरी ओर झॉककर देख रही है, तब तब मैने उससे कहा, – 'ॲ हॅ ? अभी नहीं, जरा ठहरो ! मेरे अवीको बडा हो जाने दो। मेरी मंगाको बढ जाने दो – मेरी लता —'

यह सुनकर मृत्यु मजाकसे हँसते हुए मुझसे कहती है– 'तुम्हे चार ही बच्चे हैं, इसलिये ठीक है। तुम्हारे स्थानमे धृतराष्ट्र होता और वह मुझसे यही प्रार्थना करने लगता, तो उसके सौवे बच्चेके बडे होतेतक मुझे राह देखनी पडती ' '

शीघ्र ही वह गंभीर होकर कहती है – 'मै कुछ नही सुनना चाहती। तुम भीरु हो। वात्सल्यकी ओटमे छिपकर मुझे झॉसा देना चाहते हो तुम !'

यह सिद्ध करनेके लिये कि मुझपर लगाया गया भीरुताका आरोप मिथ्या है, मै उसके सामने अपना अन्तरंग खोलकर दिखाता हूॅ। यह सच है कि मेरे मनके एक छोटेसे खानेमें भय छिपा रहता है। परंतु दूसरे बड़े खानेमें वात्सल्य छटपटाता हुआ उसे दिखायी देता है ! और तीसरे उतने ही बड़े खानेमे किसीको छटपटाते हुए देखकर मृत्यु मुझसे पूछती है, – 'यह कौन तडप रहा है ?'

मैने उत्तर दिया, – 'यह है अतृप्त इच्छा !'

'काहेकी ?'

'ऋणसे मुक्त होनेकी।'

'किसके ऋणसे ?'

'समाजके।'

मृत्युके मुखपर स्मितकी छटा चमक जाती है। उसे देखकर मुझे बडा धीरज मिलता है और मै उससे कहता हूॅ, – 'स्वयं अपने लिये मै जीया, परिवारके लिये भी जीया, परंतु समाजके लिये अवश्य — मुझे तुम्हारे साथ आना ही हो, तो मै चलता हूॅ। परंतु एक बात मुझे पहले बता दो। मनुष्यका पुनर्जन्म होता है न ? वह होता हो तो मै भगवानसे कहूॅगा, – 'अगले जन्ममे मुझे कीर्ति न देना, सम्पत्ति भी न देना। और तो और, प्रेम भी यदि थोड़ा कम दिया, तो काम चल जायगा ! पर एक बात मुझे जरूर देना। और वह है मानवताके लिये जीवित रहनेका भाग्य। और जब मृत्युको आना हो तब उसे भी मानवताके लिये लड़ते लडते ही आने देना।' '

●●●

२१
विस्मृति

‘ सात बज गये ’ – किसीने धीरेसे कहा।

सगीत ऐन रगमें आया है और कोई बीचहीमें छीक दे, इस तरह हम दोनोकी हालत हो गयी। मेरी और मेरे कवि-मित्रकी सभाषण-समाधिको भग करनेवाले उस मनुष्यपर मुझे बडा क्रोध आया। क्रोधके आवेशमें, मैं उससे कुछ भला-बुरा कह भी देता। पर तुरत ही मेरे ध्यानमे आया – मोटर स्टैन्डसे साढ़े सातको छूटनी है, यह कोई उसका कसूर नहीं है और मोटर स्टैन्ड और हमारे घरके बीच एक मीलका अन्तर रखनेमे यदि किसीका अपराध हो, तो वह मेरे दादाका है। आगे चलकर मोटरें निकलेगी, तब हमारे नातीको उनके स्टैन्डतक जानेके लिये अधिक न चलना पड़े, इस दूरदृष्टिसे वे हमारा घर बाजारमे बनवा देते, तो क्या यह अच्छा न होता ?

मैं और मेरे कवि-मित्र दोनों उठे। परतु बिलकुल अनिच्छासे। गरमीमे नदीके बहते पानीमे किनारेपर खड़े प्रौढ लोग लड़कोंको हाथ पकड़कर बाहर निकालते हैं न ! घड़ीने हमारी भी वही हालत कर दी थी।

हम दोनोंने घड़ीकी ओर गुस्सेसे ही देखा। सात पॉच ! अरे बाप रे ! कविजी जल्दी जल्दी कपड़े पहनने लगे। मै अवश्य घड़ीकी ओर देखता हुआ मन-ही-मन

कह रहा था, – गाधीजी यंत्रोंके विरुद्ध हैं, सो कुछ यों ही नहीं! इस घडीने इस वक्त हमारा कितना मनोभग कर दिया! चॉदनीमे 'होला' खाते हुए बैठे, उस तरह एक दूसरेके शीतल सहवासमे हम सभापग-सुखका आस्वाद ले रहे थे। परतु वह इस दुष्ट घड़ीसे देखा नहीं गया। उसका यह मिनट कॉटा तो बड़ा ही ऊधमी है। कभी क्षण-भर ही स्वस्थ बैठे तो सौगद!

कविजीको पहुँचानेके लिये मै उनके साथ थोड़ी दूरतक गया। हम दोनों अब गूँगे हो गये थे। अँगूर खानेकी अपेक्षा, उनकी जीभपर रेंगनेवाली मिठास अनुभव करनेमे ही, अधिक सुख होता है। कल सायकालसे हमारा जो विविध और अखण्ड सभाषण हुआ, वह इस समय हमारे मनमे, इसी तरह घूम रहा था।

कविसे बिदा लेकर मै घर लौटा और काममे लग गया। बीचहीमे मैने घडी देखी। साढे सात बज चुके थे। मै मन-ही-मन कह रहा था कि मेरे मित्र मोटरमे बैठकर, अब दूर निकल गये होंगे, तभी —

मेरे कानोंपर मुझे विश्वास ही न हुआ।

मेरे नामकी पुकार मुझे स्पष्ट सुनायी पडी थी – उस पुकारकी आवाज भी – कविजीकी ही थी!

मै जल्दी जल्दी बाहर आया। कविजी हँसते हुए सहनमे खडे थे।

मैंने पूछा – 'लगता है मोटर चूक गये?'

उन्होंने उत्तर दिया, – 'हूँ'।

'हमारी घड़ी क्या पीछे है, कौन जाने?'

'ऊँ हूँ!'

'तो आप धीरे धीरे बराती चाल गये होंगे! नहीं तो रास्तेमे एकाध सुन्दर चिड़िया देखी होगी और वहीं उसपर कविता बनाने लगे होंगे!'

'ऊँ हूँ!'

'तो फिर आखिर हो क्या गया?'

'मुझे टिकट ही नहीं मिला!'

'क्यों, बड़ी भीड़ थी क्या?'

'ऊँ हूँ!' – शरारत-भरी हँसी हँसते हुए कवि बोले।

भीड़ न होते हुए भी उन्हे टिकट क्यों न मिला यह पहेली किसी तरह मुझसे हल नहीं होती थी! 'हमारी इच्छा न होगी उसे हम भीतर न आने देंगे' – इस

तरहका एक नियम पहलेकी नाटक मडलियोके विज्ञापनोमे रहा करता था। मै विचारमे पड गया—कही मोटरवालोने आजकल वह नियम अपने 'पिनल कोड' मे तो शामिल नहीं कर लिया है?

कवि हँसते हुए बोले,—'मुझे टिकट कैसे मिलता? स्टैन्डपर मेरा कोई परिचित न था और मनीबैग तो —'

मै एकदम ठण्डा पड गया। कल शामको कविने मनीबैग घरमे सुरक्षित रख लेनेके लिये मुझे दे दिया था। आते ही मैने उसे अल्मारीमे रख दिया था। वहाँ वह बिलकुल सुरक्षित था, इसमे कोई शक ही न था! परतु कुछ समय पहले कविके जाते समय, वह उन्हे देना मै भूल गया और वे भी मुझसे माँगना भूल गये।

इस भुलक्कडपनपर हम दोनो खिलखिलाकर हँसे। 'विस्मृति' लेखकोके विनोदका प्रिय विषय क्यो है, यह बात हमे एक क्षणमे जँच गयी। गोदमे लडका रखे हुए उसे खोजनेके लिये गाँवभर ढिढोरा पीटनेवाली कहावतकी स्त्री लीजिये, किवा नाकपर ऐनक धारण किये हुए भी उसके गुम जानेका समाचार-पत्रोमे विज्ञापन देनेवाले प्रोफेसरको लीजिये, दोनो विलक्षण भुलक्कडपनके कारण ही हास्यास्पद हो गये है। 'आठवणीचे खदक'[१] नामक प्रहसनका सारा मजा भुलक्कडपनमे सबसे अधिक नबर प्राप्त करनेवाले विद्वानोपर ही अवलबित है। और गडकरीके उस अद्वितीय पात्र—भुलक्कड़ गोकुल—को तो दर्शक कभी भी नही भूल सकते। बेचारा प्रत्येक वस्तुके नामकी गाँठ उपरनेमे बाँधकर बाजार जाता है। यह सच है कि रास्तेमे कोई भी उन गाँठोको नहीं छोडता। परतु बाजार पहुँचनेपर एक नया ही सकट उसके सामने एकाएक आ धमकता है। उसे ठीक तरहसे याद नही आती कि कौन-सी गाँठ किस चीजके लिये है! और अन्तमे केशर और शक्करकी याद आनेपर एक और बिकट सवाल उसके सामने खडा हो जाता है—'केशर सेर भर और शक्कर तोला भर, या केशर तोला भर और शक्कर सेर भर? इस प्रश्नको वह किसी भी तरह हल नही कर पाता! ऐसी जबरदस्त विस्मरण-शक्तिवाले मनुष्यपर अदालतमे गवाही देनेका मौका आवे तो—गोकुलके उन विलक्षण उत्तरोको सुनकर कौन नहीं हँसा? और हँसते हँसते मन-ही-मन यह प्रार्थना किसने नही की कि,—'भगवन, मुझे लँगड़ा या लूला बना दे, पर भुलक्कड़ कभी न बनाना।'

[१] (भावार्थ—) 'भुलक्कड लोग'।

इसमे संदेह नहीं कि मानवजाति विस्मृतिको एक अभिशाप मानती आयी है। परंतु मुझे अनेक बार लगता है—विस्मृति एक महान् वरदान है। मानवी जीवनमे भूल जाने योग्य बाते ही अधिक होती हैं, परंतु उन्हे मनुष्य भूल नही सकता। इसलिये उसके दुख बढते जाते हैं। शल्य, सकट और अपमान उसकी स्मृतिमे हमेशा बने रहते हैं और उसके मनको आप ही आप रद्दी सामानके कमरेका स्वरूप प्राप्त हो जाता है। टूटे-फूटे डब्बो, टूटे खिलौनो और खाली बोतलोसे भरे हुए कमरेमे क्या किसीको कभी सतोष मिलेगा? परंतु हमारे मनको इस कमरेकी तरह बुरी दशा कर देनेवाली स्मृतिकी हम जानबूझकर कितनी विलक्षण झूठी प्रशसा करते हैं? प्रेम-भगकी अस्वस्थता, असतोपकी जलन, बदला लेनेके लिये उछल-कूद और बीती बातोके लिये छटपटाहट—ये सब स्मृतिके ही बच्चे हैं। स्मृति और अहकारके मिलनके कारण ही मानवी जीवन अभी भी विलक्षण सकुचित रह गया है।

और इसीलिये विशाल जीवनके अनुभवके लिये लालायित मनुष्यकी आत्मा, विस्मृतिके बहाने, हमेशा खोजती रहती है। प्रेमकी मोहनी विलक्षण होती है, इसका कारण केवल शरीरसुख ही नही है। प्रेमके कारण, थोडे ही समयके लिये क्यो न हो, मनुष्य स्वय अपने आपको भूल जाता है। छोटा बच्चा अधिक सुखी होता है, इसका कारण भी और दूसरा क्या है? उसके शब्द-कोषमे बीता हुआ 'कल' और आनेवाला 'कल'—ये शब्द ही नही होते। परंतु 'आज' और 'अब' इन्ही दो कालवाचक शब्दोको वह जानता है। जिसे जीवनका काव्य बनाये रखना है, उसे प्रौढावस्थामे भी बालक रहना चाहिए। विस्मृतिकी कला सम्पादन करना चाहिए। स्त्री और बच्चोकी याद भूलकर अथाह सागरमे कोलबसने जहाज छोड़ा, तभी वह नयी दुनियाका पता लगा सका। अपने आसपासके राज-वैभवको गौतम भूला, इसीलिये वह बोधिसत्त्व हुआ। है न?

इन महान् पुरुषोकी पॅक्तिमे, मै और मेरे कवि-मित्र कभी न कभी बैठ सकेंगे, इस कल्पनासे मुझे खुशी हुई। पर वह क्षण-भर ही रही। यह तो अच्छा था कि सभाषणके उच्च आनदका उपभोग लेते लेते घरहीमे हम मनीबैग भूल गये थे। अगर किसी मोटरसे सफर करते हुए हमारा यह सभाषण रंगपर आता और वह मनीबैग हम मोटरमे ही भूल जाते, तो उसमे रखे रुपयोके लिये हमे कितने ही दिनोतक ऑसू बहाने पडते!

विस्मृति महान् वरदान है सही ! परंतु वरदान प्राप्त करनेके लिये तपस्या भी उसी तरह होनी पड़ती ।

● ● ●

२२
एक पैसेके फूल

मै एकदम ठिठक गया — मंत्रमुग्ध होकर खडा रहा।

संगीतके स्वर सुनकर अनेक बार मेरी ऐसी स्थिति हो गयी थी। भर दोपहर-को शायद ही एकाध अशुद्ध, पर मधुर पंक्ति अलापती हुई जा रही भिखारिन अथवा आधी रातमे सारगीके निःशब्द सुरोसे हृदयको बेचैन कर देनेवाले औलियासे, मैं अपरिचित न था। परतु इस समय — सुबह नौ-दस बजेके करीब — यातायातसे भरी सडकपर मै एक क्षणमे आसपासकी दुनियाको भूल गया, वह सगीतके स्वरोके कारण नही, बल्कि इसलिये कि एक मन्द परतु मधुर सुगधने मुझपर मोहनी कर दी थी।

मैने मुड़कर सड़कके किनारे देखा।

एक वृद्धाकी टोकनी — छि! किसी विशाल सरोवरको शोभित करनेवाला सौन्दर्य जहॉ एकत्रित हो गया था, उसे क्या टोकनी कहूॅ? उन हॅस-रहे कमलोकी ओर अनजाने मेरे पैर मुड़ गये। मेरे हाथ तुरन्त ही उनके प्रफुल्ल मुखोको सहलाने लगे।

'एक पैसेके कितने?' -- मैने बुढियासे प्रश्न किया।

उसनें एक राजनीतिज्ञकी दृष्टिसे मेरे चेहरेकी ओर देखा। मनुष्यकी मुद्रापरसे ही दुनियाके प्रायः सभी दर और दाम निश्चित हुआ करते हैं। वह बेचारी बुढ़िया भी इस नियमका क्यो अपवाद होगी? उसने निर्विकार दृष्टिसे उत्तर दिया, — 'तीन'।

रेजगारीकी तगीके कारण मुझे यह सूत्र कि 'रुपया दो, पर पैसा न दो', बिलकुल मुखाग्र हो गया था। इसके बावजूद, मैंने अपने मनी-बैगमे पडा हुआ इकलौता पैसा झटसे उस बुढियाके हाथमे रख दिया।

नर्तकीसे भी अधिक शानसे देखनेवाले तीन कमलके फूलोको हाथमे लिये मै चल दिया। उनका वह मधुर स्पर्श बेशकीमती ईरानी कालीनसे भी अधिक कोमल था। उनमे ऐसी ही कुछ बात थी। अत्यन्त कोमल पँखुडियाँ जो सिरेकी ओर फीकी नीली होती चली गयी थी – उन्हे देखकर मेरे मनमे कल्पना आयी जैसे मध्यान्हके तेजस्वी आकाशकी लबी फाँके काटकर, उनसे प्रकृति कमल तैयार करती होगी। और उन पँखुडियोके बाह्य आवरणोका वह सौम्य सुआपँखी रग – जैसे केलेके वनमे ही वे छोटे वस्त्र बने थे।

यह सौन्दर्य होश भुला देनेवाला था, इसमे सदेह नही। पर उस सौन्दर्यसे भी उनकी वह मनको उन्मत्त कर देनेवाली मद मधुर सुगंध—

'क्या भाव लिये ये कमल ?'

मुझे ऐसा लगा जैसे स्वप्नमे अपने प्रियतमासे प्रेमालाप करनेवाला सिपाही हवाई आक्रमणके भोपूसे चौंक उठा हो! किंचित् ठहरकर मैने उत्तर दिया, – 'एक पैसेके तीन!'

'ठगा गये। बिलकुल ठगा गये। अजी, एक पैसेमे छः मिलते हैं!'

जाते जाते वे महाशय मुझे मुफ्तमे व्यवहारज्ञानका पाठ पढा गये।

हमे ठग लिया है इसका मनुष्यको हमेशा ही बुरा लगता है। इसपर भी यदि यह बात दूसरेको मालूम हो जाये तो उसे मरणप्राय दुख होता है। यह दुख टालनेके लिये चार आनेमे खरीदे हुए कुम्हडेको तीन आनेमे खरीदा है, यही कहनेका मेरा हमेशाका रिवाज है। परतु इस समय उन कमलोकी धुनमे झूठा भाव बतानेकी बात मुझे सूझी ही नही।

मै आगे चलने लगा। रास्तेमे दो-तीन परिचित मिले। पहला व्यक्ति मेरे हाथमे कमल देखकर, सिर्फ व्यग्यसे भरी मंद हँसी हँसा, परतु उसके हास्यका अर्थ मै पूरी तरह समझ गया। उसे यही बात सुझानी थी कि बरसोसे यह घोषणा करते रहनेवाले लोग कि हमारा प्रेम शुद्ध है, हमे विवाह नही करना है, आखिर एक दिन किसी होटलमे जाकर, वैदिक पद्धतिसे विवाह कर लेते हैं – उसी तरह यह गर्जना करनेवाले लोग भी कि, भगवानपर हमारा विश्वास नही है, आगे

चलकर चोरीसे भगवानकी पूजा करने लगते है। इसलिये दूसरे परिचित व्यक्ति की भेट होनेपर और पहलेकी तरह उसके भी उसी निश्चित ढंगका व्यंग्यात्मक मंद हास्य करते ही मैने कहा, – 'ये फूल भगवानको चढानेके लिये नही हैं।'

वह भी बिना बोले हँसते हुए चल दिया। परतु उसका हास्य कह रहा था – 'प्रेमके विपयमे तरुणोके शब्दोपर और भगवानके विषयमे प्रौढोके शब्दोंपर कभी भी विश्वास न करना चाहिए। उनके मन उन्हीसे ऑख-मिचौली खेला करते है।'

अब मैने मन-ही-मन निश्चिय किया कि तीसरे व्यक्तिको हँसनेका मौका ही न दूँगा। इसलिये तीसरे व्यक्तिसे भेट होते ही मैने ही खुद कहा, – 'क्यो, कैसे सुन्दर कमल है ये! है न? हम अपने घरमे भगवान नही रखते, यह तो आपको मालूम ही है। पर —'

वह हँसते हुए बोला, – 'फिर इनको आपने खरीदा क्यो है? अजी, ये भगवान-के फूल है। देवीके नही! स्त्रियोके केशोंमे गूँथनेके फूल सुकुमार होना चाहिए।'

वह भी व्यग्य-दर्शक मद हँसी हँसता हुआ चलता बना। बासी डबल रोटी जिस तरह धीरे-धीरे नरम होती है, उसी तरह वयोवृद्ध मनुष्य भी आस्तिक होने लगता है, इस सिद्धान्तको मन-ही मन रटता हुआ ही वह चल दिया होगा।

वैसे देखा जाय तो उन तीनोकी कोई भी गलती न थी। उन्हे मेरे हाथमे अच्छे बडे बडे, कमल दीख रहे थे। गुलाब, गुलदाउदी और बेलाकी तरह कमलको केशोमे नही गूँथा जाता। इसलिये यह क्रमसे ही सिद्ध हो रहा था कि मैने इन फूलोको भगवानकी पूजाके लिये ही खरीदा है। जो दीखता है उसपर ही दुनिया अपने मतका मदिर खडा करती है! जो दीखता नही है, वह —

परतु दूसरेके हृदयमे झॉककर देखना इतना सरल नही है। प्रत्येकका मन एक अज्ञात जगत् होता है। उन तीनोको मेरे हाथके कमल दिखे। परतु उन फूलोके साथ सलग्न हुए मेरे अनुभव उन्हे कभी मालूम होना सभव था क्या? बाजारमे, कमलोका वह पूर्व-परिचित मद मधुर सुगध महसूस होते ही मेरा मन किसी हवाई जहाजकी तरह बहुत दूर उड गया था। मेरा शरीर कोल्हापुरमे था, पर आत्मा कोकनके एक गॉवमे जाकर वहॉ मनमानी भटकने लगी थी!

ठीक पचीस वर्ष पहले कुडालके सन्निकट बॉबुली नामक एक छोटे-से गॉवमे मै रहता था। वहॉके विस्तीर्ण सरोवरमे खिलनेवाले सैकडो कमलोको अनिमेष

दृष्टिसे देखता हुआ मैं प्रति दिन कितनी ही देर तक बैठा रहता। किंचित् विकसित, आधे खिले हुए और पूर्ण फूले हुए उन शुभ्र और लाल असंख्य कमलोको देखते हुए मेरी आँखोके सामने विविध कल्पनाएँ चमक जाया करतीं। बुलावेमे बन-ठनकर जानेवाले नारी-समाजमे छोटी छोटी लड़कियोसे लेकर प्रौढ़ स्त्रियाँतक होती हैं न? उसी तरह वे कमल मुझे लगा करते। अँधेरी रातमे आकाशकी ओर देखिये तो कुछ तारे नजरमे भर जाते हैं, किसीका तेज साधारण मालूम होता है और कुछ बिलकुल ही धुँधले दिखायी देते हैं। उसी तरह मुझे उन कमलोका आभास होता था। एकाध कमलकी कली धीरे धीरे खिलने लगती, तो मेरे मनमे यह कल्पना आ जाती कि मानो वह कली बाल-कविकी 'कुणि नाहीं ग कुणि नाही आम्हाला पाहत बाई'[1] ये मधुर पंक्तियाँ गुनगुनाती हुई अपनी अन्य शरमीली सहेलियोको खेलनेके लिये बुला रही हैं! और अन्तमे जब कल्पना शिथिल हो जाती तो मै स्वय ही अपने आप कहता कि अच्छोद सरोवरका सुदर वर्णन करनेवाले कवि बाणको ही आकर यह कमल-साम्राज्य देखना था।

कोल्हापुरकी सडकमे मेरे हाथमे रखे तीन कमल देखनेवालोको उस साम्राज्यकी – उसके उस विलक्षण सौन्दर्य-भडारकी – उस तालाबके निकट ही स्थित ब्रह्मेश्वरके देवालयके शान्त एकान्तकी और देवालयके सामने किसी तपस्वीकी तरह खड़े हुए भव्य पीपलकी कहाँसे कल्पना होगी? परतु उन कमलोके हर स्पर्शके साथ मुझे ये सारे दृश्य दीख रहे थे। यही नही, किन्तु परिक्रमा समाप्त होनेपर एक खभेके पास बैठकर मेरी अक्का (बड़ी बहन) जब 'शिव-लीलामृत' पढ़ने लगती, तो कवि श्रीधर[2]के जिस श्लोकसे मै अनजाने ही तन्मय हो जाता, वह भी मुझे सुनाई पडने लगा। देखनेवालोको यह लगता होगा कि मै कोल्हापुरकी गंदी सड़को और गली-कूचोसे चला जा रहा हूँ! परतु सचमुच मै श्रियालके राजप्रासादके एक ओर खड़ा हुआ अपने आँसू पोछ रहा था। वह देखिये, उस राजदम्पतिके सत्त्वकी परीक्षा लेनेके लिये अतिथि वेशमे आये हुए शंकरजी! वे चांगुणासे चिलियाके मस्तकको ओखलीमे डालकर कूटनेके लिये कह रहे हैं।

[1] 'आओ बहन, आ जाओ – हमें कोई नहीं देख रहा है!'

[2] मराठीके प्राचीन कवि – श्रीधर ब्रह्माजीपत नाझरेकर (ई० स० १६७८ – १७२८)।

अरेरे, कैसा यह विचित्र प्रसंग !

परतु चागुणा केवल स्त्री न थी। वह वीर माता थी । कवि श्रीधरने इस प्रसंगका कितना सरस वर्णन किया है —

> ' अवश्य म्हणे नृपललना । [1]
> शिर आणोनि करीं कंडणा ।
> सत्त्व पाहे कैलासराणा ।
> अंतरीं सद्‌गद होउनी ॥
> निजसत्त्वाचें उंखळ ।
> धरिले धैर्यांचे करीं मुसळ ।
> कांडीत बैसली वेल्हाळ
> निर्धार अंचळ करूनियां ॥ '

परतु माताका हृदय कितना भी कर्तव्य कठोर क्यो न हो, फिर भी प्रेमसे उसका स्तन भर ही आता है—प्रेमार्दताको वह नही रोक सकती । चागुणाका वह हृदयस्पर्शी विलाप मेरे मनमे घूमने लगा ।

> ' तू सुकुमार परम गुणवंता । [2]
> माझे निष्ठुर घाव लागती माथां ।
> तुजवीण परदेशीं आतां ।
> दुबळी भणंग झालें मी ।
> उदकावीण जैसा मीन ।
> तैसी मी तान्हया तुजवीण
> माझें हृदय निर्दय कठिण ।
> लोकांत वदना केवीं दाऊं ? ॥

[1] ' अतिथि वेशमें आये हुए शकरजीसे रानीने कहा—' आपकी आज्ञा मुझे स्वीकार है । ' शंकरजी भीतरसे गद्‌गद होकर रानीके सत्त्वकी परीक्षा कर रहे थे । रानी अपने सत्त्वकी ओखलीमें, धीरजरूपी मूसलको हाथमें लेकर, दृढ निश्चयसे अपने बेटेका सिर ओखलीमें कूटने लगी । '

[2] ' बेटा, तुम अत्यन्त सुकुमार और बडे गुणवान हो । मेरे हाथोंसे निष्ठुर घाव तुम्हारे सिरपर लग रहे हैं । तुम्हारे बिना इस परदेशमें मैं अब बिल्कुल हीन और अनाथ

और भी कितनी देर मै श्रियालके राजप्रासादमें रहा आता, भगवान' जाने? किसीके शब्दोसे मै होशमे आया। 'वाह भाऊराव, आजकल भगवानकी पूजा करने लगे हो, शायद! कमल है, इसलिये शकरजीकी ही पूजा करते होगे! क्यो?'

इसका उत्तर मै क्या देता? मै हँसते हुए आगे बढ़ गया।

पर मै मन-ही-मन कह रहा था मनुष्यके मन सरीखी रहस्यमयी बात दुनियामे दूसरी कोई भी न होगी!

उसकी साधारण रुची-अरुचिके पीछे भी जीवनके कहाँ कहाँके धागे छिपे हुए होते हैं, इसकी क्या जगको थोडी भी कल्पना होती है? शकुन्तलाको दुष्यन्तकी मुद्रिका जीवन-सर्वस्व मालूम होती थी। परतु वह अँगूठी संयोगसे मछलीके पेटसे जिस मछुवेको मिली, उसने बाजारकी दृष्टिसे ही उसका मूल्याँकन किया। मनुष्यके अन्तःकरणके भीतरकी मिश्रित भाव और भावनाओकी दुनिया-मे यही गत होती रहती है।

घरके नजदीक पहुँचते ही हाथमे रखे कमल पुष्पोकी ओर मेरा ध्यान गया—वे हँस रहे थे। मेरे मनमे एकदम एक विचार आया—यदि पत्नीने पूछा कि 'कमल क्यों लाये?' तो क्या जवाब दूँगा? 'पुरुषोको दुनियादारीका जरा भी ज्ञान नही होता! व्यर्थ ही एक पैसा खर्च कर डाला! अगर फूल ही लाने थे, तो कमसे कम गुलाबके —'

इस व्याख्यानको सुननेकी तैयारीसे ही मैं घरकी सीढियाँ चढा। मैने निश्चय किया कि मै स्वय कमलकी बात ही न करूँगा। परतु मेरे हाथकी ओर ध्यान जाते ही मेरी पत्नी आनदसे बोली, — 'ओ! कमल! कितने सुन्दर है! है न?'

मैने उसकी आँखोकी ओर देखा। वह व्यवहार कुशल गृहिणीकी मार्मिक दृष्टि न थी। काव्य-लोलुप तरुणीकी स्वप्निल दृष्टि थी वह! मेरे हाथके उन कमलोमे जैसे त्रिभुवनके सौन्दर्यका साक्षात्कार हो गया था उसे!

मेरे हाथसे कमल लेकर वह उनकी ओर वात्सल्यसे देखने लगी। जैसे वे फूल नहीं थे, बच्चे ही थे। तुरत ही उसकी उस स्निग्ध दृष्टिमे एक एक पुरानी मधुर

हो गयी हूँ। जलके बिना जिस प्रकार मछलीकी दशा हो जाती है उसी प्रकार तुम्हारे बिना मेरी दशा हो गयी है। मेरा हृदय बडा निर्दय और कडा है। अब लोगोंको मैं अपना मुँह कैसे दिखाऊँ?'

स्मृति साकार होने लगी। शिरोडामे सायकालके समय टेकडीकी ओर घूमने जाते तो दायीं तरफके तालाबमे शिथिल होते हुए कमलोका दृश्य हम दोनोको कितना मनोहारी लगता! सुबह समुद्रसे लौटते हुए रास्तेके किनारे दलदलमे खिलनेवाले कमलोंका दर्शन भी हम दोनोंको उतना ही आनददायक होता। एक बार इसी प्रकारका एक सुकुमार नन्हा-सा कमल पत्नीको लाकर देनेके लिये मै घुटने भर कीचड़मे घुसकर अपने पैरोंको रग आया था और इस तरह लाये गये कमलको पत्नी जब अपने केशोमे लगा रही थी, तब मैने कहा था, --'किसीके पैरमे कीचड और किसीके सिरमें कमल!'

'क्या मूल्य है इन कमलोका?'–उसने प्रश्न किया।

'एक लाख रुपये!'–मैंने उत्तर दिया।

वह सिर्फ हॅसी।

मैने कहा,–'इस लाखके पचास हजार तुम्हारे और पचास हजार मेरे। पर कोल्हापुरके लोगोकी दृष्टिसे जरूर इन कमलोकी कीमत सिर्फ एक पैसा है!'

●●●

२३
खोटी अठन्नी

सई-साँझ हो गयी हो, यह बात न थी, परंतु वर्षाके कारण इतना अँधेरा-सा लगने लगा था कि —

किसी टिमटिमानेवाले दीयेके आसपास बरसाती पँखियोकी भीड़ लग जाय और ऐसा लगने लगे कि वह दीया अब बुझता है, या एक क्षणके बाद उस तरह पृथ्वीपर शिथिल पड़ रहे संध्याकालीन सूर्य-प्रकाशकी स्थिति हो गयी थी। क्रोधसे उन्मत्त हुआ मनुष्य हमपर कब टूट पड़े इसका कोई ठिकाना नहीं होता। आकाशमे गड़गड़ानेवाले काले बादलोंकी ओर देखकर, वही आभास हो रहा था। इस समय गोरज मुहूर्त था, इसमे संदेह नही, फिर भी मेरे मनमे हजार बार आ चुका था कि बाज़ार करनेके लिये यह समय ठीक नही है। परंतु सज-धजकर तैयार बैठे हुए लड़कोको यदि मैं यह कहता, तो वे मेरे विरुद्ध विद्रोहका शंख ही फूँक देते!

मैं चुपचाप घरसे बाहर निकल पड़ा। पूरीतरह यह विचार करके कि सब समयोमें मध्यान्ह समय कठिन होनेके कारण पहले सब्जी खरीदूँ और फिर लड़कोंके जूतोंकी ओर मुड़ूँ, मैं सब्ज़ी बाजार पहुँचा। पहली ही दूकानमे बैंगनका ढेर लगा हुआ था। ‘बाडीके बैंगन’, ‘बाड़ीके बैंगन’ कहकर काछिन चिल्ला रही

थी। वास्तवमे देखा जाय तो अपना माल बेचनेके लिये उसे नाटक या सिनेमाकी तरह विज्ञापनकी जरूरत न थी! बैगनोका काला और चमकदार रग तथा उनका चिकनापन ही उनका चलता-फिरता 'लाउड स्पीकर' था। सेर-भर बैगन तुलवाकर पैसे देनेके लिये मैंने अपना मनीबैग खोला। उसके भीतर करीब दो रुपयेकी रेजगारी थी। परतु आजकलके जमानेमे रेजगारी स्त्रीकी आबरूकी तरह है, वह एक बार चली गयी कि फिर उसका लौटकर आना बडा कठिन होता है! मुझे यह अनुभव आजकल बार-बार होनेके कारण मैंने अपने पास रेजगारी न होनेका स्वॉग बनाकर, काछिनके हाथमे पूरा एक रुपया थमा दिया। मेरा ख्याल था कि वह भी अपने पास रेजगारी न होनेका ही ध्रुपद अलापेगी। परतु वह काछिन बडी समजदार दिखायी दी। तुरत उसने एक अठन्नी निकाली और मुझे दे दी। मेरे आसपास बच्चोंकी लडाइयॉ और सॅधियॉ हो रही थीं। उसी धीगाधीगीके बीच अठन्नीपरके जॉर्ज बादशाहका दर्शन करके मैंने उसे किसी भी तरह अपने मनी-बैगके हवाले किया और दूसरी सब्जी खरीदनेके लिये आगे बढ गया।

बीचमे आने-दो आनेकी फुटकर चीजे खरीदकर, मै एक दूकानमे करेले खरीदने लगा। उनकी तीन आना कीमत देनेके लिये मैंने कुछ समय पहले मुझे मिली हुई अठन्नी आगे बढा दी। उस काछिनने उसे हाथमे लिया, उलट-पलटकर देखा और नये लेखकके लेखको लौटा देनेवाले सपादककी तरह निर्विकार चेहरा बनाकर उसने वह अठन्नी मुझे साभार वापस कर दी।

'क्यो, क्या हो गया है उसे?' मैंने जरा अकड़कर ही पूछा।

'लौटाकर पीछे देखो न!'– उसने जवाब दिया।

प्रत्येक प्रश्नकी तरह प्रत्येक सिक्केकी भी दो बाजुऍ होती हैं, इसका अब मुझे विश्वास हो चुका। वह अठन्नी दूसरी बाजूको कुछ कटी हुई थी। मैंने जल्दी जल्दी मनीबैगसे तीन आने निकाले और उन्हे उस सब्जीवालीको देकर वहॉसे पो-बारह किया!

मनुष्यके मनको अपने सयमपर हमेशा ही गर्व रहा करता है! परतु जिस संयमको वह स्वयं अभेद्य किला समझता है, वह निरा ताशोका बॅगला होता है, इसका अनुभव मुझे शीघ्र ही हो गया। एक खोटी अठन्नी गले पड़ जानेके कारण, मै इतना चिढ गया था कि कुछ न पूछिये! मेरे मनमे यह इच्छा पैदा हुई थी कि जाकर वह अठन्नी उस बैगनवालीको लौटा दूॅ। परतु वह अठन्नी वापस तो

लेगी ही नही, उलटे लोगोको एक मुफ्तका तमाशा दिखानेका श्रेय जरूर मेरे पल्ले पड़ेगा—इस तरह दूरतक विचार करके, मैने चुपचाप जूतोंकी दूकान गॉठी।

आध घटेतक मै उस दूकानके जूतोंकी जॉच-पड़ताल करता रहा। परतु मेरी पसदका एक भी छोटा जूता वहॉ न मिला। लडकोका क्या? जो सामने दीख जाये, वही उन्हे अच्छा दीखता है और उसे ले लेनेकी उन्हें इच्छा होने लगती है। वे जूते लेनेका हठ पकड़कर बैठ गये। मै उन्हे न खरीदनेका निश्चय कर, दूकानसे बाहर निकला। हाथ हिलाते हुए घर लौटनेकी बारी आनेके कारण, लडके मुझपर तनतना रहे थे। मै भी उनपर गुरगुरा रहा था।

सच तो यह है कि जगकी शान्तिकी तरह मानवी शान्ति भी बहुत थोडे कारणसे भग हो जाती है। घर लौटते समय मेरा मन रह-रहकर उस खोटी अठन्नीके बारेमे ही विचार कर रहा था। उसे शान्त करनेके लिये पिजडेमे अपनी दुम छोडकर इसॉपका गीड़द दौड़ता हुआ आया और बोला,—'तू बड़ा किस्मतवाला है, भई! तेरी सिर्फ एक अठन्नी ही खोटी निकली। सुनता हूँ आजकल बाजारमे दसके खोटे नोट भी आये है। यदि उनमेका एकाध तुझे मिल जाता, तो — बच्चाजी, आज तेरा आठ आनेका नुकसान नही हुआ। प्रत्युत तुझे साढ़े नौ रुपयेका फायदा हुआ है, यह न भूल!'

गीदड़के अन्तर्धान होते ही विज्ञापनोंमे एक अप्सरा कहकर जिसका वर्णन किया है, वह सिने-तारिका भी मेरे सामने आकर खडी हो गयी। वह कह रही थी,—'उस दिन तुम मेरी पिक्चर देखने आये थे। अठन्नीके टिकट खत्म हो गये थे, इसलिये तुम एक रुपयेका टिकट लेकर थिएटरमे आये थे। और पिक्चर समाप्त होनेपर यह शिकायत करते हुए कि मेरा एक रुपया मुफ्त चला गया, घर चल दिये थे। अब यह समझ लो कि मेरी एक आधी पिक्चर देखनेका श्रेय तुम्हे आज सब्जी बाजारहीमे मिल गया!'

इस तरह बहुतसे उपदेशक आये और चले गये। परंतु किसी भी तरह मेरा मन शान्त न होता था। मुझे लगा कि अहंभाव ही मनुष्यका मर्मस्थान है। दानमे अहंभावकी सहजमे तृप्ति हो जाती है। इसी लिये मनुष्य दान करनेमे आनन्द मानता है। परतु धोखा खानेमें उस अहंभावको ठेस लगती है। और इसी लिये किसी भी कार्यके लिये दस रुपये खुशीसे देनेवाला मनुष्य यदि किसीके द्वारा एक आनेसे भी धोखा खा जाय, तो वह चिढ जाता है।

इस चिढी हुई मनःस्थितिमें ही मै घर आया। देखता हूँ तो चिन्तोपंत डटे हुए हैं। वे मेरी ही बाट जोह रहे थे। जूतोके बारेमे निराश हुए लड़कोने शीघ्र ही अपनी फरियाद उन्हे सुनायी। अपराधीकी हैसियतसे मै भी आत्म-समर्थनके लिये बाध्य हुआ। वह खोटी अठन्नी ही मेरी तरफसे मुख्य गवाह थी। मैने वह अठन्नी चिन्तोपंतके आगे बढा दी। उसे देखते ही वे खिलखिलाकर हँसने लगे। उनकी हँसीका दौर खत्म होते ही मैने कहा, –'इसमे हँसनेकी कौनसी बात है, पन्तजी? यह अठन्नी खोटी है न?'

चिन्तोपंतने कहा–'मानो तो खोटी है, और–मानो तो खरी है!'

'इसका मतलब? इस पहेलीका मतलब ही मेरी समझमे नही आया, भई!'

'आप लेखक लोग सिर्फ कल्पनाकी उड़ाने भरना जानते हैं। व्यवहार किस चिड़ियाका नाम है यह आपके दिमाग़मे कभी भी नही घुसता। इस अठन्नीके तुम्हे आठ आने मिल जायँ, तब तो तुम्हारा काम हो जायगा न?'

'पर इस खोटी अठन्नीको लेगा कौन?'

'अजी, कोई भी ले लेगा। चने-मुर्रे बेचनेवाला एकाध अँधा-सा बूढा मिला कि यह उसे दे देंगे। शामके वक्त जब दूकानमें बड़ी भीड हो और दूकानदार गड़बड़ीमे हो उस समय यह उसके मत्थे बड़ी आसानीसे मढी जा सकती है।'

'मतलब यह कि दूसरेको धोखा देकर ही—'

'दूसरे तुम्हें धोखा देते हैं, तुम्हे दूसरोको धोखा देना चाहिए। अजी साहब, यह दुनियाका चक्र ही है। यह व्यवहार है, जनाब!'

हमारी बातें यही समाप्त हो गयी। परतु रात-भर चिन्तोपंतके वे तीन शब्द मेरे कानमे बार-बार घूम रहे थे–'यह व्यवहार है!' मेरा मन पुनः पुनः अस्वस्थ होकर कहता था – जिस दिन भारतीयोके जीवनमें इस कल्पनाने प्रवेश किया कि व्यवहारका धर्म, नीति और मानवी जीवन मूल्योंसे कुछ भी संबंध नहीं है, उसी दिन हमारे अधःपतनका श्रीगणेश हो गया। धर्म और व्यवहार नामके जीवनके दो अलग अलग खाने करके जीवन बितानेवालोकी धर्मबुद्धि नकली जेवरकी तरह है! दूसरोंको धोखा देने अथवा दिखानेके लिये उसका उपयोग हो सकता है। परतु जीवनमें, जीवन-विकासमे उसका मूल्य एक फूटी कौड़ी भी न हो सकेगा!

हमारे चिन्तोपंत हर मंगलवार और शुक्रवारको नियमित रूपसे अंबादेवीका दर्शन करते हैं। बिला नागा श्राद्ध और महालय श्राद्ध जैसी धार्मिक विधियाँ भी

बक़ायदे किया करते हैं। और गीताके प्रति उन्हे जितना अभिमान है, उतना बृहन्महाराष्ट्रमें शायद ही किसीको हो। परंतु अध-पेट रहकर जिंदगी बितानेवाले किसी ग़रीब बूढेके मत्थे एक खोटी अठन्नी मढ़ देनेका विचार करते समय, उनका यह धर्म उन्हें नहीं रोकता। उन्हे यह भी न जॅचेगा कि उनके आचरणमे कुछ असगतता है। उनके हिसाबसे धर्म और व्यवहारमें अलगाव हो गया है।

इस अलगावने ही हिन्दू-समाजपर बहुत बडा प्रहार किया है। यदि 'यह व्यवहार है' शब्दोका अमोघ आश्रय न होता, तो बमीठेकी चिऊँटियोंको शक्कर चुगानेवाले सेठ-साहूकारोको गरीबोके घरपर कुर्की लाते समय कम-से कम कुछ तो शर्म आती! इन तीन मायावी शब्दोका पवित्र आधार न होता तो गाधी-टोपी लगाकर अकड़से घूमनेवाले अनेक मिल-मालिकोंको अपने मजदूरोके साथ जानवरोंकी तरह बर्ताव करने और जानवरोकी अपेक्षा भी उनके पेटोकी कम फ़िक्र करनेकी कमसे-कम थोड़ी तो लज्जा आती! अपने कृष्ण-कृत्योपर इन शब्दोका सुनहला पॉलिश सहजमे लगाते न आता, तो कॉलेजमे रहते हुए समाजवादपर बडी लॅबी-चौड़ी बाते करनेवाले तरुणोंने अपने विवाहके लिये दहेज ऐंठनेवाले पिताओका डटकर तीव्र विरोध किया होता! 'यह व्यवहार है'—इन तीन शब्दोमे दुनियाके आजकलके सब पाप आकर इकट्ठे हो गये हैं। आजकी मानवताके सारे दुखों और विकृतियोका उद्गम इन तीन शब्दोंमे है। व्यवहार और धर्मबुद्धिके बीच पति-पत्नीका नाता है। जीवनमे उनके हक समान हैं। जीवनकी सफलता उनके सहयोगपर निर्भर है। पर इसपर ध्यान कौन देता है? जिस समाजमे धर्म-बुद्धि व्यवहारकी दासी मानी जाती है, उसका उत्कर्ष असभव है। 'यह व्यवहार है'—इन शब्दोकी नींवपर मानवताके सुखका मदिर कभी भी न बनाया जा सकेगा! 'यह धर्म है'—इस भावनापर ही वह बनाया जा सकता है।

मेरा यह विचार-चक्र और भी घूमता रहता! परतु बीचहीमे वह खोटी अठन्नी मेरी नजरोंके सामने खड़ी हो गयी। उस काछिनने वह मुझे जानबूझकर दी होगी। परंतु बेचारीने उसे स्वय अपने घरमे थोड़े ही बनाया था! कारमे बैठकर शानसे सब्जी खरीदने आयी हुई किसी सुशिक्षित महिलाने कदाचित् वह उसके मत्थे मढ़ दी हो! हर रोज रुपया या आठ आने कमानेवाली उस बाल-बच्चेदार स्त्रीको आठ आनेकी यह हानि सहन करनेकी शक्ति कहॉसे होगी? सहज ही उसने वह

मेरे मत्थे मढ दी। अब मुझे वह किसी दूसरेके गले बॉधनी होगी। छिः! फिर तो यह वाम चक्र कभी भी न थमेगा!

असत्य, अत्याचार और विकृति छूतकी बीमारियॉ है। हरएक मनुष्यको यह दक्षता रखनी चाहिए कि कम-से-कम उसके द्वारा तो इनका प्रसार न हो। हरएक यदि परवंचना टाल दे, तो दुनियाके आधे दुख क्षण-भरमे नष्ट हो जायेंगे।

मै यदि इस अठन्नीको अन्यत्र कही भिडा दूँ, तो चिन्तोपंत मेरी पीठ ठोकेंगे, यह सच है। परतु व्यवहारका मतलब वंचना नही है, यह मै नहीं भूल सकता। मैंने उस अठन्नीको अपने ही पास सुरक्षित रख लेनेका निश्चय किया है। समय पड़नेपर चिन्तोपतकी गीताकी अपेक्षा यह खोटी अठन्नी ही मेरी धर्मबुद्धि-की अधिक रक्षा कर सकेगी!

● ● ●

२४
गाँव

'कहाँ चले?'

'कोंकन!'

'लगता है कोई जल्दीका काम आ गया है?'

'नहीं तो!'

'फिर?'

'यों ही जा रहा हूँ!'

'एक-दो दिनमें लौट आओगे शायद?'

'ॲं हॅं! कम-से-कम दो-तीन सप्ताह वहीं रहूँगा!'

'दो-तीन सप्ताह कोंकनमें रहोगे? हाँ, पर अब तो वहाँ भी सब सुभीते हो गये होंगे! रेडिओ, सिनेमा —'

इच्छा न होकर भी मै हँसने लगा। कोई कोई लोग आवारा बच्चोंकी तरह होते हैं। क्षण-भर भी उनसे चुप नहीं बैठा जाता। मुझसे प्रश्नके बाद प्रश्न करने-वाला मोटरका यह सह-प्रवासी इसी प्रकारके मनुष्योंकी जातिका था! मुझे पूरी तरह हँसनेका मौका न दे कर वह बोला, — 'सुबह अखबार न मिले, शामको रेडिओ न रहे और रातको सिनेमा देखनेको न मिले — इस तरह एक सप्ताह काटनेकी बारी आ जाय, तो मैं तो भई, बिलकुल पागल हो जाऊँगा!'

'मै अब ऐसे तीन सप्ताह बितानेवाला हूँ!'

मेरा प्रवासी मित्र मेरी ओर आश्चर्यसे देखने लगा। यदि मैने उससे कहा होता कि कल मै सर्कस खोलनेवाला हूँ और उसके पहले ही खेलमे, हम जिस मोटरसे सफर कर रहे हैं, उसे अपनी छिगुरीपर उठानेका प्रयोग दिखाऊँगा, तो भी वह इतना चकित न होता। इस कथासे कि कृष्णने गोवर्धनको इसी तरह उठाया था, उसका इस विषयका आश्चर्य थोड़ा कम हो जाता। परतु जहॉ समाचार-पत्र बेचने-वाले लडकोंके 'लोकमान्य', 'फ्री प्रेस' जैसे मीठे मधुर स्वर सुबह कानोंमे नही पड़ते और रातको हाहाहाऽ करके हाहाःकार उड़ा देनेवाले प्रेम-गीत सुनायी नही पड़ते ऐसे स्थानमे जाकर कोई सुशिक्षित मनुष्य एक-दो सप्ताहतक रह सकता है, यह कल्पना ही उसे असह्य हो गयी होगी!

मनुष्य किसी भी विषयमे अपनी हार स्वीकार करनेके लिये तैयार नही होता। क्षण-भर ठहरकर वह बोला,—'काफी बड़ा होगा आपका गॉव?'

मैने उत्तर दिया,—'सन् १९४१ की मर्दुमशुमारीके मुताबिक उसकी जन-सख्या पॉच-सौ ग्यारह है। इन पॉच-सौ ग्यारह लोगोंमेसे एकने भी रेडिओ नही देखा है, पॉच-दस लोगोंने सिर्फ़ 'सत तुकाराम' देखा है और डाकिया हमारे गॉवमे आठ दिनमे सिर्फ एक बार ही आता है! साथ ही गॉवमे हमारा जो घर है वह बिलकुल एक सिरेपर है। उसके आसपास चार फर्लांगतक आपको एक भी घर नही दिखायी देगा! परतु आपसे क्या कहूँ, मेरे दिन वहॉ बड़े मजेमे कटते हैं!'

वह खिड़कीसे बाहर देखनेका बहाना करने लगा। शायद उसने यही समझा होगा कि जहॉ अखबार, रेडिओ और सिनेमामेसे किसी एकके भी होनेकी सभावना नही है, ऐसे पॉच-सौ ग्यारह मनुष्य-सख्या-वाले गॉवमे मजेसे रहनेवाले जँगली मनुष्यसे अब आगे किसी भी प्रकारका सभाषण जारी रखनेमे कोई अर्थ नहीं है। उसने मुझे 'पॉच-सौ बारह' के नामसे पुकारना शुरू न किया, इसे ही मै अपना भाग्य समझता हूँ।

उस बेचारेको यह कल्पना भी न होगी कि गॉवमें कदम रखते ही मेरा मन खूँटेसे छोड़ दिये गये बछड़ेकी तरह किस प्रकार मनमाना नाचने और खेलने लगता है? जेलसे छूटकर बाहर आनेवाले कैदीकी मनःस्थितिको चित्रित करनेवाला कोई प्रतिभा-सम्पन्न कवि ही मेरे इस आनदका यथार्थ चित्रण कर सकेगा।

इस भावनासे कि मै एक अकृत्रिम जगमे आ गया हूँ, गॉवमें पहले ही दिन रातको मुझे ऐसी गहरी नीद आती है—

वह नीद ट्रामगाड़ियोकी खड़खडाहटसे अथवा सुबहसे ही पेटके लिये चिल्लाकर अखबार बेचनेवाले लडकोकी पुकारोसे कभी भी भग नहीं होती। नीद पूरी होकर मै जागता हूँ तो पक्षियोकी चहकसे। आसपासकी दुनिया अभीतक शान्त ही रहती है। परतु मॉकी गोदमे सोया हुआ नन्हा शिशु सुबह जागकर उसके मगलसूत्रसे खेलते हुए जिस तरह अपने आप मीठे मीठे तोतले बोल बोलता रहता है, उस प्रकार असख्य पक्षियोकी यह मधुर चहक मुझे लगती है। मै हँसते हुए ऑखे खोलकर सामने देखता हूँ। पूर्वमें विविध रगोसे रगे हुए छोटे-छोटे बादल मेरे दृष्टि-पथमे आते हैं। मेरे मनमे एकदम एक कल्पना चमक जाती है—सुदरतासे चौक पूरनेमे पूर्व दिशा बड़ी चतुर है। अब थोड़ी ही देरके बाद खिले हुए लाल कमलकी तरह दीखनेवाले सूर्यबिम्बको वह चित्रित करेगी—

इस सूर्यबिम्बके दर्शनकी इच्छा होते हुए भी मेरी ऑखे फिरसे धीरे धीरे मूँदने लगती है। शहरमे चौबीस घटे किसी दुष्टा सासकी तरह मुझपर शासन करनेवाली घडी मेरे सिरहाने ही रखी रहती है। उसकी 'किट-किट' मुझे सुनायी पडती है। पर मै हँसता हुआ कहता हूँ,—'सासजी, अब ये 'बहू' के चार दिन आये हैं। अब आप जरा चुप बैठिये। आज अपने राम गॉवमे है! शहरमे नहीं। शहरमे सभी गुलाबी चीजे—क्या गुलाबके फूल, क्या गुलाबी गाल अथवा क्या गुलाबी ठंडकी नीद—दुर्लभ होती हैं! वहॉ मनुष्यका मूल्य अद्ययावत् कपडोसे सजा हुआ और निश्चित समयपर नियमित काम करनेवाला एक यत्र—इतना ही होता है। यंत्र, गुलाबी ठडकी नीदकी मिठास नही चख सकता, पर मनुष्य उसे—

मै आगेके शब्दोका उच्चारण करूँ, इससे पहले ही मुझे नीद लग जाती है। फिर दो घटेके बाद मै जाग उठता हूँ। मै ऑखे खोलकर देखता हूँ। अब धूप ऊपर चढ़ी होती है। मै घड़ी उठाकर देखता हूँ और एकदम चौक पड़ता हूँ। अरे बाप रे! आठ बज गये! दाढी बनानेका समय हो गया!

तुरत ही मेरे ध्यानमे आ जाता है कि मै अपने गॉवके घरमे हूँ। मै संतोषकी सॉस लेता हूँ। यहॉपर आज ही क्या, पर और भी आठ दिन यदि दाढी न बनाऍ फिर भी कोई कुछ न पूछेगा और न कोई विचित्र दृष्टिसे मेरी ओर देखेगा—इस

विचारके मनमें आते ही मुझे बडी खुशी होती है ! मेरा प्रामाणिक मत है कि दाढी निसर्गके द्वारा मनुष्यको दिया गया सबसे बड़ा अभिशाप है ! सुबह उठते ही स्वयं हमें ही अपना नाई बननेमे बड़ा काव्य है, ऐसा कौन कह सकेगा ? दाढ़ी बनानेकी झंझटसे ऊबकर ही हमारे पूर्वजोने दाढी बढानेकी परिपाटी आरभ की होगी। इस ख्यालसे कि वे ऋषि लोग जमाने-भरके अरसिक थे, कदाचित् उनके मतको आजकलके तरुण मान्य न करें। परतु मै उन्हें यह अपने अनुभवसे कहता हूँ कि बाबूराव पेढरकर जैसे बिलकुल टीपटापसे रहनेवाले आधुनिक अभिनेताका भी दाढी-के विषयमे यही मत है । छः साल पहलेकी बात है। मै हालहीमे कोल्हापुर आया था। एक दिन 'शूटिग' न होनेके कारण या छुट्टी होनेके कारण उन्हे स्टूडिओ नही जाना था। उस दिन सुबह वे बडी खुशीसे बोले—'अच्छा हुआ ! आज दाढ़ी न बनायी, फिर भी कोई हर्ज नही ! '

मुझे लगता है कि दाढीकी तरह समाचार-पत्रोका नियमित रूपसे पढना भी शहरमे रहनेवाले मनुष्योको नयी सस्कृतिके द्वारा दिया गया एक अभिशाप ही है ! मै यह अस्वीकार नही करता कि समाचार-पत्र आधुनिक युगकी एक प्रबल शक्ति है। परतु कसरत करनेके अखाड़े कितने भी उपयुक्त हो, फिर भी पल्लेमे खेलनेवाले शिशुसे लेकर बूढोतक सबको वहाँ जबरदस्ती भेजनेमे क्या अर्थ है ? चायकी चुस्कियाँ लेते हुए अथवा दो चायोके बीच मुझ जैसा हरएक साधारण आदमी कहींका भी एक अखबार पढकर दो घटेतक दुनियाके झमेलोके साथ व्यर्थकी माथापच्ची करता रहे, यह भी उतना ही निरर्थक है। कम-से-कम मुझे तो यह बिलकुल पसद नही है। मुझे तो यह लगता है कि समाचार-पत्र पढनेवाले लोग दुःखोको खरी-दते है। समाचार-पत्रके लिये खर्च किये गये दो आनेमेसे दो पैसे इस युद्ध-कालमे रद्दीके रूपमे वसूल हो सकते है, इसमे शक नहीं, फिर भी बचा हुआ डेढ आना व्यर्थ न जाय इसलिये हम खरीदे हुए समाचार-पत्रकी एक एक पंक्ति पढने लगते हैं और बीचहीमे एकाध ऐसा विचित्र समाचार हमे पढ़नेको मिलता है कि—

कलका ही मेरा अनुभव देखिये न ! पूरे छः पृष्ठ पढकर भी युद्ध कब समाप्त होगा और गाधी-जिन्नाकी मुलाकातका अंजाम क्या होगा इस संबंधमे मेरे मस्तिष्कमे तिल-भर भी प्रकाश न पडा। पर उस अककी चार सतरोकी एक खबर पढ़कर मेरे मनपर जो उदासी छा गयी वह दिन-भर बनी रही। वह समाचार यह था :

'एक मनुष्य किसी विधवाके घर रहा करता था। वह उस विधवासे विवाह

करना चाहता था। परतु उस स्त्रीने उसकी दरख्वास्तको नामजूर कर दिया। बस, फिर क्या था? दूसरे दिन वह प्रौढ प्रेमी उठा और उसने अपनी प्रियतमाके सीनेमे छुरा घुसेड़कर उसे मार डाला'।

कल रह-रहकर दिन-भर यह बात मेरे मनमे चुभ रही थी। यह देखकर कि प्रेम भी मनुष्यके भीतरके पशुत्वको बन्धनमे नहीं रख सकता, मै पुनः पुनः मनमे कह रहा था—'बुद्ध, ईसा और गाधीजी सरीखे महापुरुष गत ढाई हजार वर्षोंसे क्या मृगजलके पीछे ही दौड़ रहे हैं?'

पैसा बचाना यानी पैसा कमाना—ऐसी एक कहावत है। मनुष्यके सुखपर भी वह बराबर लागू होती है। किसी भी प्रकारके दुखको अपने जीवनमे न आने देना ही सुखी होना है! यदि इस निश्चयका अक्षर अक्षर पालन करना है, तो मनुष्यको पहले समाचार-पत्रोंको पढ़ना छोड देना चाहिए। क्योकि आजकल हमारे जीवनमे दुख बिलकुल पौ फटते ही जो प्रवेश करते हैं, वे समाचार-पत्रोकी खबरोके रूपमे!

गॉवमे जानेपर मनुष्य सिर्फ दाढ़ी अथवा समाचार-पत्रोकी दृष्टिसे ही निर्भय हो जाता हो, यह बात नही। और भी कितने ही आकस्मिक सकटोसे वह आप ही आप मुक्त हो जाता है। इधर गॉवमे आप घूमने जाइये, आपको अनेक परिचित व्यक्ति मिलेंगे। वे आपके बाल-बच्चोका कुशल समाचार बड़े प्रेमसे पूछेगे। परतु उनमेसे एक भी मनुष्य आपसे कोई सदेश नही मॉगेगा। आपसे मिलनेके लिये आया हुआ किसान अगर अपने कम्बलके भीतर हाथ डाले, तो उससे भयभीत होनेका आपको कोई कारण नही है। क्योकि आलोचना या सम्मतिके लिये छिपाकर लायी हुई कोई हस्त-लिखित मासिक-पत्रिका उसके कम्बलके भीतरसे प्रकट न हो! बेचारा आपकी भेटके लिये लाया हुआ कच्चा नारियल या काजू ही उसमेसे बाहर निकालता है!

गॉवमे एक सादा कम्बल बदनपर डालकर घूमनेवाले उस जैसे आदमियोको देखता हूॅ तो मुझे भी स्वय अपने कोट और टोपीकी शर्म आने लगती है। फिर एक मामूली कुरता और धोती पहनकर ही मै किसी भी समय चाहे जहॉ चल देता हूॅ। मुझे विश्वास होता है कि मेरी इस पोशाकपर यहॉ कोई भी न हॅसेगा। दभ, उपचार, नाटकीयता आदिको गॉवकी दुनियामे स्थान नही होता और इसलिये शहरमे हर रोज पढ़नेको मिलनेवाली नयी नयी पुस्तकोकी एकाध बार याद आकर

मुझे क्षण-भर यदि यह लगता कि गॉवमे कमी है, फिर भी तुरत मै अपने मनसे कहता हूॅ – ‘शहरमे सुराज्य होगा। परतु यहॉ स्वराज्य है। स्वराज्यका सुख सुराज्यमे कभी भी नही मिलेगा।’

स्वतत्रता ही सुखकी आत्मा होती है, इसे कौन इन्कार करेगा? परतु स्वतंत्रता यानी केवल मनमानापन नही है। मेरी स्वतत्रताकी कल्पना बिलकुल भिन्न है। स्वतत्रता यानी सामान्य मनुष्यको भी कलके उज्ज्वल स्वप्नोको दिखानेवाली अद्‌भुत शक्ति!

परतु यह शक्ति मनुष्यपर चाहे जहॉ प्रसन्न नहीं होती। शहरकी दौड-धूपमे और गड़बड़ीमें जिनके प्राण पस्त हो जाते हैं, ऐसे लाखो लोगोको इस शक्तिका अस्तित्वतक महसूस नही होता। उन बेचारोके स्वप्न हमेशा वर्तमान कालके आसपास ही चक्कर काटते रहते हैं। आज ऑफिस जाते समय ट्राममें अच्छी जगह मिल जाय, कम-से-कम आगामी वर्ष तो हमारे ऊपरका बूढा बाबू पेन्शनपर चला जाय और हमारे वेतनमे पॉच रुपयेकी बढोत्री हो, पगड़ी न देकर हमें अपने साथ मनुष्योके परिवारके लिये एकाध ढाई कमरेका नया ब्लॉक रहनेको मिल जाय – ऐसे सपनोके परे ये लोग जा ही नही सकते। मलबार-हिलपर रहनेवाले और मोटरे उड़ानेवाले बडे बडे लोगोंके स्वप्न इनसे चाहे भिन्न हों, पर वे भी मुझे क्षुद्र और दरिद्री लगते हैं। उनमेके कोई अपने बैक-बुकके लाखके दस लाख हुए देखता है, कोई अपनी मालकीकी इमारतमे और चार ‘चाली’–की समृद्धि देखकर आनदित होता है, कोई किसी सुंदर अभिनेत्रीके सहवासमे कश्मीर-यात्राका कल्पनाचित्र खीचता रहता है!

इन दोनो प्रकारके स्वप्नोसे अधिक उदात्त स्वप्न मनुष्य देख सके, ऐसा स्थान शहरोमे बरसो खोजते रहनेपर भी नही मिलेगा! जहॉके बित्ताभैर बाग़मे चार निस्तेज फूलोके सिवा और दूसरे प्रकारका कोई भी सौदर्य समूचे जीवनमे कभी दिखायी न देगा, और जहॉके समुद्रपर खाये हुए चिड़वेके फटे काग़जोके सिवा दूसरी नौकाऍ शानसे कभी झूमती हुई न दिखायी देगी, ऐसे स्थानमे रम्य अथवा भव्य स्वप्नोका अवतार आखिर हो भी कैसे?

गावमे जिस प्रकार फूल, पक्षी, निर्झर और लताओकी मनमानी क्रीड़ा दिखायी देती है, उसी तरह श्वापदोका भी अनिरुद्ध संचार होता रहता है। क्या प्रातःकाल,

क्या सायकाल अथवा क्या रात्रिको, गॉवमे मै किसी भी स्थानपर सहज भावसे जाकर बैठ जाता हूँ, तो —

यह देखिये, बनैले वाराहकी तरह दीखनेवाला विचित्र काला शिलाखण्ड ! यह मेरा गत अट्ठाईस वर्षोसे मित्र है। जब मै कॉलेजका विद्यार्थी था, तब उसी शिलाखण्डपर बैठता और एक ओर चित्रविचित्र रगोसे सजे हुए सूर्यास्तको देखता और दूसरी ओर, अपने भावी जीवनके सुख-स्वप्नोको रगा करता था। बाह्यतः काला पत्थर दीखनेवाला यह पाषाण, बड़ा जादूगर है, इसमे संदेह नहीं। अब भी जब मै उसपर जाकर बैठ जाता हूँ, तो मेरी ऑखोके सामने पुराने और नये स्वप्न रग-बिरगी तितलियोकी तरह घूमने लगते हैं। इस अट्ठाईस वर्षकी अवधिमें मेरे स्वप्नोके आकार और रंगोमे कितना फर्क होता आया है ! परतु स्वप्नोको देखनेकी मेरी शक्ति अब भी पूर्ववत् बनी हुई है, ऐसा आत्म-विश्वास यह शिलाखण्ड मुझमे उत्पन्न कर सकता है। यहॉ बैठकर देखे हुए स्वप्नोके सात्विक परतु उत्कट आनंदकी – शहरोमे विद्युद्दीपोंसे लेकर नाच-रगतक जो एक क्षणभगुर उन्मादकता होती है, उस आनदके साथ तुलना करनेके लिये मै कभी तैयार न हूँगा। यह काला शिलाखण्ड, यह मोरसलीका पेड़, वह उस तरफका नारियलोंका बाग, महादेवजीकी पिंडीकी तरह गॉवके बीचोबीच स्थित यह टेकडी, समुद्रका वह शान्त एकान्त – गॉवमे आते ही, मैं अपने इन अनेक प्रिय स्थानोमेसे कहीं भी जाकर बैठ जाता हूँ, तो मेरे पुराने सपने दौड़ते हुए मेरे पास चले आते हैं। उनमेके कई सत्य-सृष्टिमे साकार नहीं हुए, इसका भी मुझे अब कोई दुख नही होता। मोरसलीके फूल सूख गये इसलिये क्या कोई उन्हें फेक थोड़े ही देता है ! इन म्लान हुए फूलोमें भी एक प्रकारकी कोमल सुगंध होती है, उसी तरह चौबीस वर्षोके मेरे ये सारे स्वप्न मुझे लगते हैं !

इन पुराने स्वप्नोके पीछे पीछे नये स्वप्न मेरी ऑखोके सामने नृत्य करने लगते हैं। दादाजीकी ॲगुली पकड़कर दिवालीकी सजावटको देखते जा-रहे प्यारे चेहरेवाले बालकको दीखनेवाला यह दृश्य मेरे मनको विलक्षण रूपसे मोहित कर देता है। रेडिओ और सिनेमाके बिना गॉवमे मनुष्यको अच्छा कैसे लगेगा, यह शका करनेवाला वह प्रवासी यदि मेरे साथ मेरे गॉवमे आये, तो मै उससे एक ही बात कहूँगा – 'शहरमे हजारो किस्मके मनोरजन और संगीत होगे, परतु गॉवमे सुनायी पड़नेवाला स्वप्न-संगीत वहॉ दुर्लभ होता है। शहरमें हरएक व्यक्ति रात-

दिन दौड़ता रहता है, हरएक पेटके पीछे भागता रहता है, एक मशीनकी तरह प्रत्येक व्यक्ति जीता रहता है। वहॉ मशीने काम करती हैं। ठीक समयपर वे काम पूरे होते हैं। पर वे स्वप्न नहीं देख सकती। मैं जानबूझकर गॉवमें जाता हूॅ और वहॉ कई सप्ताह मजेमे बिताता हूॅ। इसका कारण एक ही है–शहरमे सहसा न मिलनेवाले सुन्दर स्वप्न गॉवमे बात की-बातमे मेरे आसपास एकत्रित हो जाते हैं। वे मेरे साथ घटो खेलते रहते हैं।'

यदि उसे लगा कि मै व्यर्थ ही गप्पे मार रहा हूॅ, तो सायकाल मैं उसे अपने घरके पासवाले तालबके बॉधपर ले जाकर कहूॅगा–'देखो,–ठीक तरहसे देख लो!'

ॲधकारकी यमुनासे, प्रकाशकी गगाका सुन्दर सगम होता रहता है। चौपड़की बिसातके छोटे घरकी तरह दीख रहे सामनेवाले धरतीमाताके छोटे छोटे टुकडे धुॅधले-धुॅधले-से दिखायी देते हैं। क्षणार्धमे यह दृश्य बदल जाता है। जमीनका निजी अधिकार समाप्त हो जानेके कारण, उन टुकड़ोके बीच बीचकी मेडे अदृश्य हो जाती हैं। खूब लॅबा-चौडा, सुन्दर और अखण्ड भू-भाग दृष्टिके सामने खडा होता है। अब एक मरियल भैसा और एक निर्बल बैलकी जोड़ी इस जमीनको जोतती हुई नहीं दिखायी देती। ट्रैक्टर जैसी मशीने उस कामको करती रहती है। उस मशीनकी ओर मै टकटकी लगाकर देखता हूॅ। उसे चलानेवाला मनुष्य–अब वह बडा हो गया है, परतु मै उसे आसानीसे पहचान सकता हूॅ। हमारे घरके हरवाहेका ही यह सबसे बड़ा लडका है! ऐसे दृश्योको देखनेके बाद बिदा लेते समय वह प्रवासी हॅसते-हॅसते पुटपुटायगा,–'गाधीजी कहते हैं कि गॉवोमे चलो, सो यो ही नही!'

मै भी उसे हॅसते हुए उत्तर दूॅगा,–'मनुष्य हमेशा दो बातोपर जीवित रहता है, यही सच है! एक रोटी ’

'और दूसरी?'–वह उत्सुकतासे पूछेगा।

'स्वप्न!'–मै कहूॅगा।

●●●

२५

भावना

उस पत्रका आरभ देखकर मैं आश्चर्यमें डूब गया। मेरी मित्रानीने लिखा था,–
'आपपर मुझे बड़ा क्रोध आया है।'

पत्रको आगे पढ़नेके बजाय मै स्मरण करने लगा कि मुझसे ऐसी कौनसी बात हो गयी जिससे उसे क्रोध हो आया। सात-आठ दिन पहले मेरे पास उसका एक पत्र आया था। मै जानता हूँ लड़के-लड़कियॉ परीक्षा-फलकी तरह पत्रोंके उत्तरोकी ओर भी ऑख लगाये बैठे रहते हैं। यह महसूस करके ही मैने तुरत-वापसी डाकसे उसका उत्तर भेज दिया था। बस, मेरा कोई अपराध था, तो यही!

मै और अधिक स्मरण करने लगा। हाँ, उस दिन मै बीमार था। ठण्ड़मे ओढ़ना ओढकर चुपचाप पड़े रहनेमे जैसा सुख होता है, बीमारीमे मन भी ठीक वही करना चाहता है। उस समय यह तीव्र इच्छा होती है कि न किसीसे बात करे, न लिखें, न पढें, न चलें – कुछ भी न करें। क्या शरीर और मन – दोनों जुडवॉ भाई हैं, कौन जाने! परंतु उनके हर्षविषादकी सवेदनाएँ जुड़वॉकी व्यथा ही होती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

उस दिन ऐसी मनःस्थितिमें होते हुए भी, मैंने पडे-पड़े मजमून लिखवाकर उस मित्रानीके पत्रका ब्योरेवार उत्तर दिया और यह सावधानी भी बरती कि ठीक

समयपर वह डाकमें पड़ जाय! उस दिन मै यह भी नही भूला था कि लड़कियाँ यह जानती हैं कि केशोमे एकाध पुष्प गूँथनेमे ही सौंदर्य है, परतु यह न्याय पत्रोके वाक्योमे लगानेके लिये वे तैयार नहीं होती। इसके कारण उसके पत्रके आरभ-का वह विचित्र वाक्य पढकर मै विस्मित हो गया। परमेश्वरने स्त्रीका मन बनाते समय पारेका अधिक परिमाणमे उपयोग किया होगा, यह शंका भी मेरे मनमे आ गयी। मैंने झटपट उत्तर भेज दिया था इसलिये मन-ही-मन खुश हो रहा था कि उसे बहुत खुशी हुई होगी। और इसी कल्पनामे खोये हुए ही मैंने वह पत्र खोला था। परतु उसका पहला ही वाक्य—'आपपर मुझे बड़ा क्रोध आया है!' ओवर बाउँडरी मारनेकी शानसें फूले हुए खिलाडीकी गेंद नजदीक ही गिरकर कोई उसे लोक ले, ऐसी मेरी स्थिति हुई उस वाक्यको पढकर!

मैंने मनमे कहा,—'लगता है ये अम्माजी समझती हैं जैसे क्रोध करना उन्हें ही आता है। परतु किसीको उन्हे यह बात जँचा देना चाहिए कि क्रोध कोई अक्ल, कीर्ति और पैसेकी तरह दुर्लभ वस्तु नही है। उन्हे कह दो कि मै भी क्रोध कर सकता हूँ।'

इस आवेशके साथ ही मैंने उस पत्रको मेजपर फेक दिया। शीघ्र ही मुझे लगने लगा कि कम-से-कम यह तो देख लूँ कि यह सज्जन लडकी आखिर नाराज क्यो हो गयी है? इससे हमे अनायास ही पता चल जायगा कि आजकलकी लड-कियोपर जो यह आक्षेप हैं कि उनके सिरमे विचारोकी अपेक्षा 'क्लिप्स' ही अधिक होते हैं, कहाँतक सच है।

मै पत्रको आगे पढने लगा। उसने लिखा था,—'मैं जानती हूँ कि मेरा क्रोध अकारण है। पर—भैया, आप स्वयं मुझे एक लकीरका भी पत्र लिखे फिर भी मुझे पसद आयेगा। पर कृपा करके आप अपने उस लिपिकके हस्ताक्षरोंमे मुझे पत्र न भेजा करें। आपके लिये लिखना यदि असभव ही हो, तो उषा दीदीसे लिखनेके लिये कह दिया करें। परतु अपने उस लिपिकसे तो हरगिज—'

मुझसे हँसी रोके नहीं रुकती थी। मुझे यही लगा कि मेरे लिपिकका और इस लडकीका पूर्व-जन्मका बैर होगा! वरना उसके खिलाफ़ शिकायत करनेका उसे कारण क्या था? उसके अक्षर इतने सुंदर हैं कि उसके द्वारा लिखे गये मजमूनको पढ़ते समय पख फैलाकर नाचनेवाले मोरका मोहक दृश्य आँखोंके सामने हमेशा खड़ा हो जाता है। इसके विपरीत मेरी लिखावट—उसके भद्देपनके लिये उपमा

खोज निकालना बहुत कठिन है — उसे पढनेके बजाय भीरु पुरुष भी हँसता हुआ लडाईपर चल देगा।

ऐसा होते हुए भी मेरी यह मित्रानी उस लिपिकके हस्ताक्षरके लिये प्रच्छन्न तिरस्कार दर्शाए, इसका मुझे बडा आश्चर्य हुआ।

परतु वह क्षण मात्र ही। उसके मजमूनका एक वाक्य रह-रहकर मेरे मनमे खेलने लगा — 'आप स्वय मुझे एक लकीरका भी पत्र लिखे फिर भी वह मुझे पसद आयेगा।'

जिस तरह कविताके किसी एक चरणमे ही उसका मारा रस प्रकट हो जाय, उसी तरह यह एक ही वाक्य मेरी मित्रानीके मनको खोलकर दिखा रहा था। जैसे वह मुझसे विनय-पूर्वक कह रही थी, — 'भैया, पत्र कोई समाचार-पत्र नही है। मजमूनके नाप-तौलपर कोई उसका मूल्याँकन नही करता। पत्र सगीतकी तरह होते है। उनकी मधुरता लंबाई-चौडाईपर अवलंबित नही होती। वह कहनेवालेके मीठे कण्ठपर'— किंबहुना जिस अत करणसे वे बाहर निकले होगे उस अंतःकरणके माधुर्यपर अवलबित है।'

उसने अपने क्रोधको 'अकारण' विशेषण लगाया था। परतु इस दृष्टिसे देखते ही मुझे लगा — उसे जो क्रोध आया वह सकारण है। नहीं, वह अत्यन्त स्वाभाविक है। पत्रका आनन्द भीतरके मजमूनकी अपेक्षा इस भावनामे अधिक है कि उस पत्रको लिखनेवाला व्यक्ति हमसे बोल रहा है — मनकी बाते कर रहा है। व्यक्तिके सहवासका यह क्षणिक मधुर आभास उस व्यक्तिके अक्षरोके बिना निर्मित होना सभव नही है। मेरे लिपिकके द्वारा विस्तारके साथ लिखे गये पत्रको पढ़कर मेरी मित्रानीकी बुद्धिको सतोष मिल गया होगा। परतु उसकी भावना असतुष्ट रह गयी। वह धुँधवा रहा असतोष यदि उसके क्रोधके रूपमे प्रकट हुआ तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? मनुष्यके सारे सुख दुख भावनात्मक ही होते हैं। कहिये, होते हैं न?

यह सिद्ध करनेके लिये बडे बड़े उदाहरणोकी क्या जरूरत है? बिलकुल मामूली ही बात देखिये न? मै बंबई हमेशा जाता रहता हूँ। मै जानता हूँ कि यदि स्टेशनपर मुझे लेने कोई न आया, फिर भी मै न रास्ता भूलूँगा और न घबडा जाऊँगा। परतु प्रत्येक बार जहाँ बाइकला स्टेशन पीछे छुटा कि मै बड़ी उत्सुकतासे बाहर झाँककर देखने लगता हूँ। बिलकुल पहली बार ही बंबई जानेवाले छोटे बच्चोंकी

आँखोंसे ही कहिये न ? खड़ खड़ पॉत बदलकर गाड़ीका वेग मन्द होते ही मेरी दृष्टि प्लैटफॉर्मपरके मनुष्योंपर अधीरताके साथ घूम जाती है। उस भीडमें कोई परिचित व्यक्ति अथवा किसीका आधा ऊपर उठा हुआ हाथ देखा तो मुझे बड़ा विलक्षण आनन्द होता है। कोई मुझे अंजलि-भर हरसिंगारके ताजे फूल लाकर दे दे, तो उस समय मुझे जो आनन्द होता है, उसी तरह अपने स्नेहियोंकी हास्य-युक्त मुद्राकी ओर देखकर लगता है। उस एक क्षणमें मै प्रवासकी सारी थकावटको भूल जाता हूँ।

कीर्ति, सम्पत्ति, संस्कृति इत्यादिके पीछे दौड़कर प्राप्त होनेवाले सुख, सगीत-की लम्बी-चौड़ी तानोंकी तरह होते है। वे बुद्धिको झुलाते हैं, परतु हृदयको नहीं हिला सकते। इसके विपरीत, हररोजके साधारण जीवनके छोटे छोटे सुख, संगीतके छोटे छोटे ठुमकोंकी तरह लगते हैं। कम-से-कम मुझे तो यही लगता है कि उन्हींके कारण जीवन-सगीतको आकर्षक मिठास प्राप्त होती है। हमारा कोई मित्र बीमार हो, तो उसके लिये हम बम्बईसे हवाई जहाजके द्वारा बड़े बड़े डॉक्टर नही ला सकते। परंतु उससे मिलने जाते समय उसके लिये एकाध बड़ा सा गुलाबका फूल ले जाना तो हमारे बसकी बात होती है न ? हमारा मित्र कवि न हो, अथवा किसी भी वस्तुपर एकाध प्रतीक लादकर गूढगुँजन करनेवाले उपन्या-सोंसे उसे अरुचि हो, फिर भी उस गुलाबके फूलको देखकर उसकी मुद्रापर स्मितकी रेखाएँ चमके बगैर न रहेगी। जैसे वह फूल उसे मूक सदेश देता रहता है – 'हँसो – जरा हँस दो – गुजरा हुआ कल और आनेवाला कल, दोनो भ्रम हैं। जगमे सत्य एक ही है। आज – यह दिन – यह क्षण। कलकी कली दूसरे दिन मुरझा जाती होगी। परतु आज वह फूल बनकर गा रही है, हँस रही है। तुम भी इसी तरह गाते रहो, इसी तरह हँसते रहो।'

भावनाके इस माहात्म्यको हमारे पौराणिक कवियोने कितनी सुन्दर रीतियोंसे चित्रित किया है ! कृष्णपर निरपेक्ष प्रेम करनेवाली कुब्जाको किंवा मिल रहे राज-सिंहासनको ठुकराकर चौदह बरसोंतक प्रभु रामचन्द्रकी पादुकाओंकी पूजा करते रहनेवाले भरतको क्या कोई कभी भूल सकेगा ?

ऐसे लोग भी होंगे जो इन उदाहरणोपर यह आक्षेप करें कि पुराणोकी बाते पुराणोमे ही रहती हैं। हम नहीं कहते कि ऐसे लोग होंगे ही नहीं। उनसे मैं इतना ही पूछता हूँ – आधुनिक युगमें मोतीलाल नेहरू एक बड़े विद्वान पुरुष

हो गये हैं, यह तो आप स्वीकार करते हैं न? भोग और त्याग – दोनों क्षेत्रोमे उन्होने ख्याति प्राप्त की है। उनका जीवन-चरित्र पढकर आप ही मुझे बतायें कि उसमेंकी अविस्मरणीय बात कौनसी है? मुझे विश्वास है कि आप एक ही प्रसगका वर्णन करेंगे – जवाहरलालजी जेल जा रहे हैं, यह कल्पना करते हुए कि आजतक राजसी वैभवमे बढे हुए अपने प्रिय पुत्रको कारागारमे कितने कष्ट होंगे, मोतीलालजी अपने शयन-कक्षमें तड़प रहे हैं। उन्हें पलगपरकी कोमल गद्दी चुभने लगती है। इस विचारसे कि अपने प्यारे बच्चेको कारागारमे धरतीपर-बिलकुल एक मामूली दरीपर सोना पड़ेगा, वे व्याकुल हो जाते हैं और ज़मीनपर एक मामूली चटाई बिछाकर उसपर बेचैन होकर पड रहते हैं।

●●●

२६

नाना वृक्षा वसुंधरा

सदेश मॉगनेवाले बालकों और चन्दा इकट्ठा करनेवाले वयस्कोमे अधिक चीमड़-पन किसमे होता है, यह निश्चित करना बडी टेढ़ी खीर है। परतु 'धरना देकर बैठना' शब्द-प्रयोगका विद्यार्थि-दशामे ठीक तरहसे न समझमे आया हुआ अर्थ, इस जोड़ीके कारण ही, प्रौढावस्थामे पूर्ण रूपसे समझमे आ जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

परसो इसी प्रकारके एक विद्यार्थीके चॅगुलमें मैं फॅस गया था। मैंने उससे हर तरहसे समझाकर कहा कि किसीको भी संदेश देनेकी मुझमे योग्यता नहीं है। परंतु उसमें तो चीनी फेरीवालेका चीमड़पन घुस गया था! वह बिलकुल मेरे पीछे ही पड़ गया। शायद इस वजहसे हो कि उससे हुज्जत करनेमें नष्ट हो रहे समयका मुझे बोध हुआ हो, अथवा किसी और कारणसे हो, अन्तमे मैंने उससे कहा, –'ला भई, दे अपनी नोट-बुक!'

तुरत उसकी मुद्रापर विजयी सेनापतिका भाव चमक गया। शायद वह मुझे यह तत्त्व सुझाना चाहता था कि कोई भी युद्ध केवल शस्त्रोंसे नहीं जीता जाता, वह धीरजसे ही जीता जाता है!

संदेश देनेकी कठिनाईमे फॅसे हुए मनुष्यकी मदद करनेके लिये दौड़ पड़नेकी

लडके चले जानेपर, मैं यह विचार करने लगा कि, ' नानारत्ना वसुधरा ' की जगह मुझे ' नानावृक्षा वसुधरा ' लिखनेका मोह क्यों हुआ ।

सुबहकी सारी बातें मेरी दृष्टिके सामने खड़ी हो गयी । कामसे और अकारण मुझसे मिलने आये हुए लोगोंने बहुतसी झूठी-सच्ची बातोका पुराण सुनाकर, मेरा सिर पका डाला था । मैं करीब करीब विरक्त होकर ही दस बजे घरसे बाहर निकल पड़ा था । इस कल्पनासे कि आजका मेरा पूरा दिन बुरी तरह कटेगा, मै स्वय अपनेपर ही खार खा रहा था ! परतु घरसे बाहर निकलकर एक ओरकी सडकसे मै शायद मुश्किलसे आधा मील ही गया था कि बात-की बातमे जिस तरह कुहरा विरल हो जाता है, उसी तरह मेरे मनपर पड़ी हुई उदासीकी छाया दूर हो गयी । चलते-चलते मेरे द्वारा सहज-भावसे देखे गये वृक्ष मेरी आँखोंके सम्मुख आकर खड़े हो गये ।

वह श्वेत चम्पाका वृक्ष ! अकालसे पीड़ित दरिद्री मनुष्यके हाथ और पैरोंकी तरह उसकी टहनियाँ दीख रही थीं । परतु उन निष्पर्ण शाखाओंके सिरेपर लटके हुए वे शुभ्र पुष्प अत्यत सुदर दीख रहे थे, इसमें जरा भी सदेह नहीं । उस चम्पाके बाद देखा हुआ दूसरा दृश्य भी कितना मनोहर था । एक विशाल बरगदका पेड़, और उसीके पड़ोसके घरमे एक गमलेमे लगा हुआ गुलाबका पौधा जो फूलोंसे खिल रहा था । किसी पानीदार आँखोवाली छोटी बालिकाकी तरह उस गुलाबके पौधेका सौन्दर्य था । परतु किसी वृद्ध तपस्वीकी दाढीकी तरह लगनेवाली जटाओको धारण करनेवाले उस वट-वृक्षमे भी, मेरे मनको आकृष्ट कर लेनेका सामर्थ्य निःसशय था । उस दृश्यको देखकर, मुझे इस बातका कि मै कवि नही हूँ, क्षण-भर दुख हुए बिना न रहा ! इन वृक्षोको छोड़कर मै लगभग पचास कदम ही आगे बढ़ा था, तभी बिलकुल एक दूसरेसे सटे हुए दो वृक्ष मुझे दिखायी दिये । उनमेसे एक था गुलमोहरका और दूसरा था मुनगाका । परतु कोई रानी जैसे तपस्विनीका वेश धारण कर ले, उस तरह वह गुलमोहरका वृक्ष दीख रहा था । आज अपने सुन्दर चमकदार रगसे दर्शकोको आकर्षित करनेवाला एक भी फूल उसमे नहीं दीख रहा था । प्रत्युत, मुनगाके वृक्षपर जरूर फूल ही फूल नजर आ रहे थे । फिर भी गुलमोहरका वृक्ष अपने लहलहे पत्तोके रूपमे मधुर स्मित करता हुआ खडा था । मत्सरका उसे स्पर्श भी न हुआ था । वह मुनगाके पेडकी ओर देखकर कह रहा होगा, — ' हम दोनो घनिष्ठ मित्र भले ही हो, फिर भी हमारा

व्यक्तित्व भिन्न हैं। तुम्हारे फूलनेके दिन अलग हैं, मेरे खिलनेके दिन दूसरे हैं ?'

ये सब वृक्ष मनःचक्षुके सामने घूम रहे थे कि मैं घर लौटा और बडे प्रसन्न मनसे अपने काममे लग गया। सृष्टि मनुष्यकी कितनी उत्कृष्ट गुरु हो सकती है, इसका मुझे आज अनुभव हुआ था। यह मधुर अनुभव मनमें घुल रहा था, इसी लिये शायद् मुझे उस लड़केको 'नानावृक्षा वसुधरा' संदेश लिख देनेकी इच्छा हुई होगी।

परतु निसर्गके सहवासमे घडी-दो घडी बिताकर, जीवनका तत्त्वज्ञान सीखनेके लिये आजका मानव तैयार है क्या? वह तैयार नहीं है, इसी लिये जीवनकी पहेली उसे अधिक जटिल लगने लगी है। इस यान्त्रिक-युगकी दौड-धूपमे, हमारे ध्यानमे ही यह नही आता कि मनुष्यका निसर्ग मित्र है, शत्रु नही। इसे हम भूले न होते, तो प्राचीनकालके ऋषियोके जीवन-क्रममे, निसर्गने अपने सान्निध्यके कारण, जो उदात्तता दी थी, उसी तरह वह आजकलके विद्वानो और कलाकारोके जीवनमे कम-से-कम प्रकट हुई होती! परंतु आजके जगमे, सरस्वती लक्ष्मीकी दासी होकर, किसी तरह अपनी लज्जाकी रक्षा करते हुए दिन काट रही है, कला सरे-बाजार नीलाम हो रही है, दयाको दुर्बलके सिवा और किसीका आधार नहीं रहा है और देश-भक्ति गिट्टी फोड़ती हुई अथवा फॉसीकी प्रतीक्षामे किसी गुनहगारकी तरह कारागारमे तपस्या कर रही है! ऐसी स्थितिमे अकारण लढनेवाले पडोसियोको, वितण्डवादमे सारी शक्ति खर्च करनेवाले विविध राजकीय पक्षोंके तरुणोको और गृहस्थीके सगीतमे क्षुद्र बातोके लिये बेसुरे स्वरको निर्माण करनेवाले दम्पतिको यदि कोई सृष्टिका 'नानावृक्षा वसुधरा' सदेश कहे, तो उसका रहस्य उन्हें कैसे जॅच सकता है?

परतु मुझे जरूर हमेशा ऐसा लगता है—मानव वैज्ञानिक ज्ञानमे कितनी भी प्रगति कर ले, समताके आधारपर निर्मित समाज-रचना अस्तित्वमे ले आवे, फिर भी उसे अपने अंतःकरणका एक कोना निसर्गके लिये रख लेना चाहिए। ऐन तारुण्यमे प्रतिभाका पराक्रम चमकाकर निस्तेज होनेवाले मनुष्योको दूसरोसे ईर्षा करते हुए देखता हूँ, और जब वे इस भावनासे कि हम पीछें पड गये हैं, पंख-कटे पक्षीकी तरह करुण फडफड़ाहट करने लगते हैं, तब मेरे मनमे आता है कि, यह बात तो नहीं है कि इन बुद्धिमान पर अतृप्त जीवोने राजा ययातिकी कथा न सुनी हो। कोई भी वासना उपभोगसे तृप्त नही होती, प्रत्युत् भोगसे उसकी

भूख बढ़ती ही जाती है। व्यासजीने उस कथाके आधारपर प्रतिपादित किया हुआ यह कटु सत्य इन विद्वानोके कानोंमें जरूर पडा होगा। न पड़ा हो यह बात नही है। परतु कानो और ऑखोमे थोड़ा अन्तर होता है। उस सुनी हुई कथासे इन विद्वानोंके कान न खुले, फिर भी उनकी ऑखोंको खोल देनेवाला दृश्य क्या उनसे दूर है? उनके दरवाजेमे आजके हॅस रहे सुगधी फूल कल सूख जाते हैं, उन सूखे हुए फूलोंकी ओर कोई फूटी ऑख भी नहीं देखता। मानवी जीवन क्या फूलोंसे भिन्न है? कीर्तिकी पुष्प-मालाएँ क्या नदनवनके कल्पवृक्षके अक्षय यौवनवाले फूलोसे बनायी जाती हैं? छिः! मध्यान्हका प्रखर सूर्य ज्यो ही अस्ताचलकी ओर मुडा कि वह निस्तेज हो जाता है, यही बात कीर्तिकी भी है।

एक दूसरा दृश्य देखिये। आजकी समाज-रचनामे दलित और दरिद्री वर्गके दुखोंको देखकर, अनेक तरुण क्षुब्ध हो जाते हैं। इस क्षोभके आवेशमे, वे किसी आन्दोलनमें कूद पड़ते हैं। वह आन्दोलन जब असफल हो जाता है, तो उनका मन निराशासे भर जाता है। 'क्या, यह इसी तरहसे चलता रहेगा?'—इस प्रकारका उदास प्रश्न वे पूछने लगते हैं। ऐसे तरुणोंको मैं ऐसी नदीके किनारे ले जाऊँगा जिसके पात्रमे ग्रीष्ममे बित्ता-भर पानी भी नहीं बहता रहता। वह नदी ही उन्हे आशावादका संदेश देगी। वह कहेगी,—'और अधिक गरमी पड़ने दो। जब वह खूब बढ़ जायेगी, तब वर्षा आयेगी। फिर मेरे पात्रमे, जहॉ इस समय पैर डूबनेलायक पानी भी नहीं है, वहॉ इतना पानी बहेगा कि पूरा पुरुष ही डूब जाय!' हरएक असफल हुआ आन्दोलन क्राति-मन्दिरकी एक एक सीढी होती है। उन सीढियोके पत्थर ऊबड़-खाबड़ होनेके कारण हमारे पैरोमे चुभते हैं। और उसके कारण मनुष्य इस असमंजसमे पड़ जाता है कि मै योग्य मार्गपर हूँ या नही, यह बात नदीसे मूक संभाषण करते हुए उसके ध्यानमे आये बिना न रहेगी।

●●●

२७

क ल्प ल ता

सात वर्ष हो रहे हैं। परतु अभीतक वह संभाषण मुझे ज्यो का त्यो याद है!

उस समय मेरी एक फिल्ममे काम करनेके लिये आयी हुई एक अभिनेत्रीने हालहीमे जन्मी मेरी एक लड़कीका नाम सहज भावसे पूछा। मैंने वह उसे बता दिया। आगे चलकर, कुछ दिनोके बाद उसने फिर मुझसे उसी लड़कीका नाम पूछा। उसकी स्मरणशक्तिके विषयमे किंचित् सशक होता हुआ और अकारण ही यह चिता करता हुआ कि फिल्मके सवादोको वह बेचारी किस तरह याद रख सकती होगी, मैंने अपनी लड़कीका नाम उसे फिर सुना दिया।

जो बात दो बार लगातार हो जाती है वह तीसरी बार भी होती है—यह एक दैवलीला ही मानी जाती है! मेरे इस भ्रममे होते हुए कि उस अभिनेत्रीको अब मेरी लड़कीका नाम बिलकुल मुखाग्र हो गया होगा, उसने एक दिन अचानक उसी प्रश्नका बम मुझपर फेका—यह तो मेरी किस्मत थी कि उन दिनो ऐटम् बम नहीं निकला था!

मैं विस्मय-चकित होकर उसकी ओर देखने लगा। इसी समय वह बोली,—'उसका नाम लता है। इतना तो मुझे याद है' परतु वह हेमलता है या पुष्पलता—'

मैंने नकारात्मक गर्दन हिलाई।

फिल्म व्यवसायसे उसका नजदीकी रिश्ता होनेके कारण उसने सिर खुजाकर बहुतसी चित्र-विचित्र लताएँ खोज निकाली। परतु उनमेसे एक भी नाम मेरी लडकीका न था। अन्तमे वह उकताकर बोली, – 'आप सिर्फ कठिन लिखते ही नही हैं, अपने बच्चोके नाम भी बड़े कठिन रखते हैं! क्या है भई, आपकी लड़कीका नाम ऽऽऽ?'

मेरे मनमे यह शका आयी कि इस अभिनेत्रीका 'गडकरी'[1] के 'गोकुल'[2] से बहुत निकटका सबध होना चाहिए। परतु उस शकाको मनहीमे दबाकर, मै उसकी मदद्के लिये दौड़ पडा और मैंने 'कल्पलता' शब्दका उच्चारण किया।

उस शब्दको सुनते ही गभीर मुद्रा धारण कर वह बोली, – 'हुश्! यह कैसा अजीब नाम है, जी!'

इसके बाद अवश्य मुझे उसको सतुष्ट करनेका शौक नही चर्राया। हाँ भई, कौन जाने? उसका समाधान करनेके लिये शायद मै कुछ इस तरह कहने लगता कि ''कल्पलता' स्वर्गकी एक विशेष शक्ति रखनेवाली लता है!'

और फिर वह तुरत मुझसे कह देती, – 'जान पड़ता है आपको आजकल स्वर्गसे बड़ी मुहब्बत हो गयी है। कहिये, कब जा रहे हैं आप वहाँ?'

इस आपत्तिसे बचनेके लिये ही उत्तरमे मैंने सिर्फ इतना ही कहा, – ''कल्पलता' नाम थोड़ा विचित्र है अवश्य! पर – अजी, नामके क्या धरा है, यह बात हम लेखकोके परात्पर गुरु शेक्सपीअर साहब तीन सौ वर्ष पहले ही कह चुके हैं न?'

शायद यह सोचकर कि कल्पलताकी अपेक्षा शेक्सपीअरका नाम याद रखना अधिक कठिन है, या किसी और कारणसे हो, वह चुप हो गयी। मैंने भी यह सोचकर कि सत्यकी अपेक्षा अर्ध-सत्य ही मनुष्यको अधिक अच्छा लगता है, आज और इसका एक प्रमाण मिल गया, वह सभाषण समाप्त कर दिया!

पर क्या, आप समझते हैं कि मेरी तीन नबरकी लड़कीका 'कल्पलता' नाम उस समय मुझे सरलतासे सूझ गया था? जी नहीं। उसे निश्चित करनेके लिये कितने कष्ट उठाना पडे थे मुझे! शब्द-कोषोके पन्ने उलटानेके नही! यदि मैं अपनी लडकीका कोई ऐसा प्यारा नाम रखना चाहता जो अधिक प्रचारमे नहीं है, तो उसे खोजनेके

१ मराठीके एक प्रसिद्ध नाटककार और कवि – स्व० राम गणेश गडकरी।

२ गडकरीके एक नाटकका पात्र जो बडा भुलक्कड था।

लिये शब्द-कोष खोलनेसे पहले, मैं रवींद्रके उपन्यासो और कहानियोंके पन्ने बार-बार पलटकर देखता, अथवा उस वर्षके मैट्रिक-परीक्षा-फलमे प्रकाशित मोटे अक्षरोमे छपे सारे नामोकी छान-बीन करता!

मेरी सच्ची कठिनाई दूसरी ही थी। तीसरी सन्तानका स्वागत करते समय जिस अपूर्व मनःस्थितिका अनुभव मुझे हो रहा था, उसे यथार्थ रूपमे दर्शानेवाला नाम मुझे चाहिए था। यह बात झूठ नहीं कि पहली सतानके समय माँ-बापका अतृप्त वात्सल्य यह कहता रहता है कि लडका हो या लडकी, हमे दोनोंकी जरूरत है। परंतु ऐसा कहनेवाले मनुष्योके अन्तःकरणोंको अच्छी तरह मथकर देखा जाय, तो यह दिखे बिना न रहेगा कि वहाँ यही इच्छा छिपकर बैठी है कि हमारी पहली सन्तान लडका ही हो। प्रचलित सामाजिक प्रणालीका यह सॉसारिक सत्य कि वृद्धावस्थामे पुत्र माँ-बापका आधार हो सकता है, इस प्रबल इच्छाका एक प्रमुख कारण होगा। परतु इस कारणसे भी अधिक प्रभावशाली एक बात और है और वह है सामाजिक सकेत। स्त्री-पुरुषोंकी समताको पूर्णरूपसे मान्य करनेवाले किसी कट्टर सुधारकके बॅगलेमे जाकर आप बारीकीसे देखे, तो आपको वहाँकी पहलौटी भगवानसे—यानी निराकार भगवानसे—यही प्रार्थना करती हुई दिखायी देगी कि मुझे लड़का हो! और फिर आपको एक क्षणमे यह विश्वास हो जायगा कि आखेट अथवा कृषिपर उपजीविका चलानेवाले आदिवासी समाजमें, लड़का प्राप्त करनेकी जो आसक्ति होती है, वह बीसवी सदीकी सुशिक्षित माताके मनमे भी, गुप्त रीतिसे वास करती रहती है!

पहली बार लडका हो जाय, तो भी दूसरी सन्तानके समय भी क्या माँ-बापका मन भविष्यके विषयमे निश्चिन्त रहता है? नहीं! यह बात ही छोड़ दीजिये। सामाजिक सकेतके साथ ही दूसरी भी एक शृखला मनुष्यको इस दुनियामे हमेशासे विवश करती आयी है। वह है स्पर्धाकी भावना। यह दिखानेके लिये कि दूसरोंसे हम किसी भी बातमे कम नहीं हैं, मनुष्य-प्राणी रात-दिन कितना कठिन प्रयास करता है। इस निष्फल प्रयासके कारण ही वे लालची और कंजूस माँ-बाप जिनकी पहली सन्तान लड़का होती है यह जानते हुए भी कि लड़कीके लिये काफी दहेज देना पड़ता है, यही चाहते हैं कि उस लड़केकी पीठपर उन्हे लड़की ही हो!

सौभाग्यसे जिनकी पहली दो सन्तानोंमे एक लड़का और दूसरी लड़की होती

है, उनकी कल्पना अवश्य तीसरी सन्तानके समय स्वच्छदतासे विचरण कर सकती है। संकेत और स्पर्धा सरीखी शृंखलाओंसे मुक्त हो जानेपर मनुष्यके मनको जो स्वतंत्रता प्राप्त होती है, उसका आनंद वास्तवमे अलौकिक होता है। कल्पलताके जन्मके समय मेरा मन रह-रहकर इस अपूर्व आनद-सागरमे तैर रहा था। यह महसूस करके ही कि स्वतंत्रताका यह आनंद ऐहिक नहीं, दिव्य है, उस अननुभूत निराकार आनदको साकार करनेके लिये उस लड़कीका – अनेक लोगोंका यह आक्षेप अशतः मान्य करते हुए भी कि वह उच्चारणके लिये कठिन है – 'कल्पलता' नाम रखना ही मैंने पसद किया।

कल्पलता – याने मनुष्यके मनकी सारी सुप्त इच्छाओंको तत्काल तृप्त करने-वाली लता – मनुष्यको पद पदपर यह संदेश कि तू स्वतत्र है, देनेवाली स्वर्गीय लता – सकेत और स्पर्धाकी तरह अगणित लोहेके सीखचोंवाले पिंजड़ेमे पड़े घुलते हुए मानवी मनके पंछीको खुले नीले आकाशमे मनमाना भ्रमण करनेका वरदान देनेवाली दिव्य देवी!

सकेतकी ही बात लीजिये। उसने मानवी जीवनको कितना निस्तेज और सकुचित कर डाला है!

हमारे लगभग सभी सामाजिक सकेत मायावी राक्षसकी तरह होते हैं। भिन्न-भिन्न स्वरूपोंमें हमारे आसपास चौबीस घंटे घूमकर वे हमे भुलावा देते रहते हैं। रूढ़ि, धर्म, नीति, कानून, सस्कार, – एक नही, दो नही – बल्कि अनेक मोहक स्वरूप धारण करके वे मनुष्यको जीवनका गुलाम बना डालते हैं! परतु मनुष्य स्वभावतः जीवनका स्वामी है, दास नहीं। इसके कारण रह-रहकर वह उससे मुक्त होनेका असफल प्रयत्न हमेशा करता रहता है!

मेरा ही उदाहरण लीजिये! सुबह बिस्तरसे उठनेसे लेकर, रातको बिस्तरपर पीठ टेकतेतक एक' सॉचेमें ढला हुआ जीवन मुझे पिछले तीस सालोंसे काटना पड़ा है। कभी कभी मै इससे बहुत उकता जाता हूँ। उजेला हुआ कि उठो अब, किसी दिन धूप चढ़ आनेपर भी मनको बिस्तरपर पड़े रहनेकी इच्छा होती है। चतुर्थी-की मन्द चॉदनीमे टेकड़ीकी शिलापर अथवा वर्षाकालीन रम्य संध्याकालको समुद्र तटकी बालूमे मौजसे लेटे रहनेमे जो आनद आता है, उसका स्मरण होता है मुझे ऐसे समय। परतु बिस्तरमे मनमाने लेटे रहनेकी यह इच्छा मनहीमे दबाकर मुझे चाय लेनेके लिये उठना ही पड़ता है। मै यदि समयपर न उठा, तो मुझे विश्वास

होता है कि इसका अर्थ यही लगाया जायगा कि मैं अस्वस्थ हूँ। घटे-दो घटेतक बिस्तरपर लेटे रहनेकी यदि मैंने आजादी ली, तो मुझे यह भय रहता है कि इसके प्रायश्चित्तके रूपमे मुझे डॉक्टरकी कडुई दवा दिन-भर पीनी पड़ेगी और इसलिये मै यह साहस सहसा नही करता। आपही बताएँ, स्नेह करनेवाले अपने घरके लोगोको अथवा कडुई दवा देनेमे हमेशा उदार डॉक्टरको किस तरह समझाकर कहूँ कि वयस्क मौजके लिये दो-चार घटे बिस्तरमे लेटा रह सकता है!

जो हालत उठनेकी है वही घूमने जानेकी भी है। निश्चित रास्तेसे निश्चित अंतर तय करें और निश्चित समयपर घर लौट आये - इसे ही वर्तमान समयमे घूमना कहते है। परतु इस तरह यात्रिक घूमनेमे मेरा मन बिलकुल नही रमता। घूमनेके इरादेसे जब मै बस्तीके बाहर निकल जाता हूँ, तो आम सडकसे जल्दी जल्दी चलनेके बजाय, पासके खेतोमेसे सर्पाकार मोड़ लेती हुई किसी अज्ञात पगडडी-की ओर उत्कठित दृष्टिसे देखता हुआ मै कितनी ही देरतक आरामसे चलता रहता हूँ। मेरे मनमे अनेक बार आता है कि जबतक पैर बिलकुल न थक जायें तबतक उस पगडडीपर चलता रहूँ। नवीन सृष्टि-सौदर्य, नये हँसते हुए और अश्रु-पूर्ण चेहरे, नये कटु और मीठे अनुभव मेरी आँखोके सामने धुँधले-धुँधले से घूमने लगते हैं। मुझे क्षणभर यह आभास होता है कि इस अपरिचित प्रदेशके उस पारके क्षितिजसे कोई बड़े प्रेमसे मुझे बुला रहा है! उस पगडडीसे मनमाना प्रवास करनेके लिये मै बड़ी आतुरतासे कदम उठाता हूँ। परतु तुरत ही सुनहली गृहस्थीकी पेडियोकी खनखनाहट मेरे कानोमे पडती है। उस चिरपरिचित कर्ण-कटु आवाजमे क्षितिजपरकी वह मधुर पर अस्पष्ट पुकार मुझे सुनायी नही पड़ती। मै चुपचाप लौट पड़ता हूँ और सड़कपरसे चलने लगता हूँ।

घूमकर लौटनेके बाद मै काममे लग जाता हूँ परतु उसमे भी पद पदपर विविध बंधन मुझे कुठित करते रहते हैं। घूमते हुए बहुत दिनोसे मनमे घुल रहा कोई कथा-सूत्र जैसे कोई जादू कर दे उस तरह बात-की-बातमे फूलने लगता है। तब लगता है कि सीधा घर चला जाऊँ और इस सारे सुगधी फुलेरेको कागजपर जल्दी जल्दी उतार लूँ! पर घर आकर लिखने बैठता हूँ तो मुझे एक धक्का लगता है। मेज़की दराज़मे नयी फिल्मके सवाद पड़े हुए होते हैं। उनमे निर्देशकके द्वारा सूचित परिवर्तन किये बिना —

उस कागजके नीचे अनेक सम्पादकोके पत्र रखे होते हैं। मै मुड़कर दीवार-

पर लगे हुए कैलेंडरकी ओर देखता हूँ। अरे बाप रे! पहली तारीख दबे पाँवसे कितनी नजदीक आ पहुँची है! वेतन भोगियोको वह मोहक अप्सरा लगती हो, पर मुझे वह शुद्ध राक्षसी लगती है। यह जानकर कि पहली तारीखको प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिकाओके लिये शुरू किये गये लेखोको पूरे किये बिना अपनी प्रिय कहानीकी ओर ध्यान देना सभव नही है, मैं चुपचाप मनमे खिल रही उन कलियोको विस्मृतिके निर्माल्यमे फेक देता हूँ और हाथमे ताजमहल पेन्सिल लेकर फिल्मके कागजोको निकालकर अपने सामने रख लेता हूँ।

'जगी सर्व सूखी असा कोण आहे?'[1] —यह मार्मिक प्रश्न करते समय रामदास स्वामी[2] के सामने जीवन-मन्दिरको कारागारका स्वरूप देनेवाले ऐसे अनन्त बंधन ही होने चाहिए! क्या, आपको भी यह नहीं लगता? एक दंत कथा है कि इकलौते बेटेकी मृत्युसे विव्हल हुई एक माँको कटोरी-भर तेल लानेके लिये भगवान बुद्धने ऐसे घर भेजा था जहाँ अभीतक कोई भी नहीं मरा था। इस कथाका मर्म भी इससे अलग और क्या है?

मानवी जीवन एक विचित्र आँख-मिचौलीका खेल है। इस खेलमे हमारे आगे सुख-वायु वेगसे दौड़ता रहता है। उसे पकड़नेके लिये हम हाँफते हुए उसके पीछे दौड़ते रहते हैं। परतु दुख बिजलीकी गतिसे हमारा पीछा करता रहता है। इस होड़मे सुख सहसा हमारे हाथ नहीं लगता। प्रत्युत, दुख जरूर बार-बार हमे छू लेता है। प्रेमके मन्दिरमे कदम रखकर देखिये। प्रेम-सगमके बजाय प्रेम-भग-की कहानियाँ ही वहाँ आपके कानमे पड़ेगी। राजप्रासादमे एक क्षणके लिये झाँकिये। वहाँकी सुन्दर सितारके दोनो तारोके सुर एकजीव हो गये हैं, ऐसा दृश्य आपको क्वचित् ही दिखायी देगा! बचपनसे आपके अत्यन्त प्यारे मित्रोका अनुभव कीजिये। आपकी हजार पाँच सौकी अडचन निभा देनेका मौका आया, तो उनमेका लखपति भी लाख बहाने बनाने लगता है, यही अनुभव आपके पल्ले पड़ेगा।

आपमेसे बहुतोंको यह शका होगी कि यह सब होते हुए भी मनुष्य इतने प्रेमसे जीवनके प्रति इतना अनुराग क्यों रखता है। मुझे भी यह शका बार बार सताया करती थी। मैट्रिककी कक्षामे कालिदासके 'मरणं प्रकृतिः शरीराणा

[1] 'ससारमें ऐसा कौन है जो सब तरहसे सुखी हो?' [2] सत्रहवीं सदीके सत।

प्रतिकः शरीराणा विकृतिर्जीवितमुच्यते बुधैः' चरणका अर्थ करते हुए ऐसी एक विलक्षण शंका मेरे मनमें आ गयी थी कि राजकवि भी अपने जीवनसे इतना ऊब गया होगा कि बीच-बीचमेंसे उसे आत्म-हत्या करनेकी इच्छा हो जाती थी। बचपनमे इस प्रश्नसे चकराकर कि अपने हमजोलियोंकी तरह मॉका प्यार मुझे भी क्यो न मिलना चाहिए, मैंने जैसे कई रातें जागते हुई बितायी हैं, उसी तरह बड़े होनेपर अनेक अनपेक्षित अपघातोंसे टक्कर देते हुए इस विचारसे कि यह भोग मेरे ही हिस्सेमें क्यों आना चाहिए, मुझे अनेक रात्रि जाग्रण करने पड़े हैं। परतु दैव हिंस्त्र पशुसे भी क्रूर होता है और मनुष्य पशुसे भी अधिक निर्दय हो सकता है—इसके अनेक अनुभव मेरे संग्रहमे होते हुए भी आत्म-हत्याका विचार अवश्य मेरे मनमें क्वचित् ही आया होगा।

यह चमत्कार कैसे होता है? यह सच है कि मुझ जैसे सामान्य मनुष्यमें निरर्थक सामाजिक सकेतोंका उल्लंघन करनेकी अथवा स्वय अपने निर्बल मनपर विजय प्राप्त करके उदात्त आनंद प्राप्त कर लेनेकी, शक्ति नहीं होती। परतु सौभाग्यसे दूसरी एक शक्ति उसमें रहती है। उसका नाम भी वह नहीं जानता। परतु उसके रुक्ष जीवनमें दिव्य सुगंध बहाकर लानेका कार्य उसकी यह मित्रानी निरंतर करती रहती है। वह उसे रात-दिन यह जताती रहती है कि तेरा शरीर गुलाम हो, फिर भी तेरा मन स्वतंत्र है! सरकारी दफ्तरमे आठ दस घटे कागज़ काले करनेवाला क्लर्क, एकान्तमे, जब अपनी इस सखीसे बात करता है, तो सुभाषबाबूकी आजाद हिन्द फौजका रस-भरा वर्णन करने लगता है। यही नहीं, बल्कि वह इस तरहका एक अभिनययुक्त चित्र उसके सामने खड़ा कर देता है कि, यदि हम ब्रह्मदेशमे होते, तो हाथकी लेखनीको दूर फेककर, क्षणार्धमे कॅधेपर इस प्रकार बन्दूक रख लेते।

मानवी आत्माकी स्वतंत्रताको अबाधित रखनेवाली इस शक्तिसे, मेरा बचपनसे परिचय हो गया है। परतु इस शक्तिको किस नामसे पुकारा जाय, यह पहेली मैं कई सालोंतक हल न कर सका था। कल्पलताके जन्मके समय इस पहेलीका उत्तर मुझे झटसे मिल गया। यह सच है कि कविका सौन्दर्य, वैज्ञानिकोंका सामर्थ्य और सतोंकी साधुता हमारी दुनियाकी असाधारण बातें हैं। परंतु उनका जन्म भी, हर प्रकारकी दासतामें जिंदगी काटनेवाले साधारण मनुष्यको, क्षण-भरके लिये भी क्यों न हो, स्वतंत्रताका आनंद देनेवाली इस दिव्य शक्तिमे ही है, ऐसा मुझे

विश्वास हो चुका। मुझे ऐसा लगा है कि 'कल्पलता' ही उस शक्तिके लिये उचित नाम होगा।

कल्पलताकी स्थापना स्वर्गमे करनेमे हमारे रसिक पूर्वजोने बहुत बड़ा औचित्य दिखाया, इसमे सदेह नहीं। स्वर्गमे अप्सराएँ होगी, अमृत होगा और भी हजारो सुन्दर सुन्दर चीजे होगी। परतु सौंदर्यके अमर्याद उपभोगसे भी आत्मा कभी सतुष्ट नहीं होती। वह सौंदर्यकी उस पारकी उदात्तताके लिये छटपटाने लगती है। उसकी इस छटपटाहटको शान्त करनेके लिये अप्सरा और अमृतसे भी श्रेष्ठ चीज़की स्वर्गमे भी आवश्यकता होती है! वह काम सिर्फ़ कल्पलता ही कर सकती है। और इसी लिये मेरी ऑखोंके सामने, और सात सालके बाद बड़ी होनेवाली मेरी कल्पलताका जो चित्र खडा होता है, उसमे सुन्दर पर्णोंसे सजी हुई और सुगधी फूलोंसे लदी हुई कोई लता नहीं दिखती। मेरे चित्रकी लताके चरणोंके पास चन्द्र-कोर हॅसती रहती है, तारे इस प्रतिस्पर्धासे कि उसके हाथोका हमे कम-से-कम क्षण-भरके लिये भी स्पर्श हो जाय, उसके इर्द-गर्द भीड लगाये रहते हैं, मेघमाला उसका हास्य प्राप्त करनेके लिये आतुरतासे अपनी अंजलि आगे बढ़ाती रहती है। परतु अपनी मिन्नतें करनेवाले इस सौन्दर्य-सागरकी ओर, इस कल्पलताका कभी भी ध्यान नहीं जाता। उसके उठे हुए हाथ अज्ञात अनन्तसे आनेवाली अग्नि-ज्वालाओंको आलिंगन करते रहते हैं। और आश्चर्यकी बात यह है कि उन ज्वाला-ओंसे यह लता झुलसती नहीं है। प्रत्युत, उनमेके अगणित अग्नि-कण उसके केशोंमें सुन्दर पुष्पोंकी तरह जगमगाने लगते हैं।

●●●

२८

एक लाखकी बख्शिश

पूर्ण अनुभवके बाद मेरा यह पक्का मत हो गया है कि बाजारसे सब्जी खरीद-कर लाना आजकलके जमानेकी एक बड़ी कठिन कला है। कुशल नाटककारको जिस प्रकार भीड़के तंत्रसे अवगत होनेकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार दो पैसेके घुइंयाँके पत्ते अथवा दो आनेकी भिंडी खरीदनेवालेको भी उसका सम्पूर्ण ज्ञान अर्जन करना पड़ता है। हर रोज सुबह इस भीड़मे फँसते ही साधा-रण मनुष्य घड़ी-भरमे तत्त्वज्ञानी हो जाता है। दुनियाका मतलब धक्के खाना और धक्के देना—यह सत्य व्यासजीके महाभारतसे लेकर गिबन साहबके रोमके इतिहासतक किसी भी महाग्रथमें सब्जी बाजारकी तरह सुदर और व्यवस्थित रीतिसे प्रतिबिम्बित नही हुआ है! परमार्थसे पहले परिवारका भरण-पोषण करो—ऐसा उपदेश रामदास स्वामी क्यो करते हैं, यह पहेली भी सब्जी-बाजारकी भीड़में, अपने चप्पलवाले पैरपर दूसरे मनुष्यका बूटवाला पैर पड़ते ही एकदम हल हो जाती है! हृदयस्पर्शी पारिवारिक कहानियाँ लिखनेवाला कोई कथाकार यदि ऐसी कोई कहानी लिख दे कि पत्नीद्वारा सब्जी खरीदनेके लिये बाजार भेजा गया पति सीधा सन्यास लेकर काशी चल दिया, तो कम-से-कम मुझे तो वह असत्य न लगेगी!

सब्जी खरीदनेका यह महत्त्वपूर्ण और कठिन काम आजकल एक और बातके कारण मुझे 'अग्निदिव्य'से भी अधिक भयंकर लगने लगा है। किसी तरह मुश्किलसे हम सब्जीकी टोकनीके पास पहुँच ही गये, तो काछिनके पास रेजगारी न होनेके कारण फिर एक नयी मुसीबत एकदम हमारे सामने आकर खडी हो जाती है! ताबेके पैसेके लिये महँगे हुए मनुष्यको इस दुनियामे कोई नहीं पूछता—इस सनातन सिद्धान्तका अनुभव सब्जी-बाजारमे भी आजकल हमे होता है!

इस आपत्तिसे बचनेके लिये बाजारकी ओर जानेवाली गलीके मुखपर ही अपने जेबसे मनीबैग निकालकर मै हररोज गिनकर देख लेता हूँ कि उसके भीतर कितनी रेजगारी है। खरीद ली गयी सब्ज़ीको झोलेसे निकालकर लौटा देनेका मौका आये, इससे यही अधिक अच्छा है कि हमे पहले ही अपने मनी-बैगकी साखको अजमाकर देख लेना चाहिए, ऐसा मुझे लगता है।

आज सुबह बाज़ार जाते समय नित्यकी भॉति मैने अपना मनीबैग खोलकर देखा। यह देखकर कि उसके भीतर पूरे एक रुपयेकी रेजगारी है, मुझे इतना आनद हुआ कि जितना अमरीकाके युद्धमे शामिल हो जानेसे अंग्लैडको भी न हुआ होगा। मैं आसपासके लोगोकी तरफ बडी शानसे देखने लगा। मुझे विश्वास था कि उनमेसे किसीकी भी जेबमे एक रुपयेकी रेजगारी होना सभव नहीं है!

मुर्गेको अपनी कलगीपर और मोरको अपने पंखोपर कितना गर्व होता है! ये प्राणी जिस प्रकार अपने सौन्दर्यका प्रदर्शन करते हैं, उसी प्रकार मै भी अपने मनीबैगसे पूरी रेज़गारी बाहर निकालूँ और अपना यह वैभव सबको दिखाता फिरूँ—यह विचित्र इच्छा मेरे मनमे उत्पन्न हुई। परतु रोगकी दवा जिस प्रकार उसके पास ही निर्मित करके रखी रहती है, उसी प्रकार अहँकारका उतार भी दुनियामें अकसर उसके नजदीक ही दिखायी देता है। इस समय भी वही हुआ। चलते-चलते दायीं ओरके एक दूकानदारकी ओर मैने सहज भावसे देखा। उस दूकानके सामने एक छोटा-सा काला तख़्ता था और उसपर कुछ लिखा हुआ था। हमारे कोल्हापुरके कपिलतीर्थमे त्रिवेणी संगम होनेके कारण—यानी सुबह सब्ज़ी बाजार, सायँकालको व्याख्यानका मंच और रातको भैंसे दुहनेका स्थान—इस प्रकार उसका विविध स्वरूप होनेके कारण मेरे मनमे यह कल्पना आ गयी कि सायँकालके किसी व्याख्यानका वह विज्ञापन होगा। मै उस काले तख़्तेपर लिखे मजमूनको बिना पढ़े ही आगे बढ रहा था। परतु मनुष्यके मनकी अपेक्षा

उसकी ऑखे अधिक रसिक होती हैं। जरा पीछे मुड़कर उस तख्तेपर लिखे हुए पहले अक्षर मैंने पढ़े। उन्हें पढते ही मेरे पैर जहाँके तहाँ रुक गये। उस तख्ते-पर मोटे अक्षरोंमें लिखा हुआ था—

'एक लाखकी बख्शिश'

मुझे आभास हुआ कि यह बख्शिश मेरे मनीबैगमे रखी रेजगारीको अपमानित कर रहा है। लगे हाथ मेरे मनमे आया--एकाध उपन्यासके लिये किसीने यह बख्शिश रखा हो, तो क्या ही मजा आ जाय! एक बार ही जहाँ मन लगाकर, एक सुन्दर उपन्यास लिख डाला कि जीवन-भरकी कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। पर दूसरे ही क्षण मुझे लगा कि यदि स्वर्गमें कुबेरको भी उपन्यासपर बख्शिश देनेकी सनक आ जाय, तो वह भी एक लाखकी भाषा मुँहसे नही निकालेगा। फिर इस पृथ्वीपर, उसमे हिन्दुस्तानमे और फिर उसमे भी महाराष्ट्रमे—महाराकी मरु-भूमिमे अमृतको खोजने अथवा चोर-बाजारमे प्रामाणिकताको ढूँढने जानेवाले स्यानाका सगा भाई हूँ मैं!

'एक लाखकी बख्शिश'

ये अक्षर जैसे मुझको हँसकर बुला रहे थे। यह देखनेके लिये कि बख्शिश किस लिये है, मै आगे बढ़ा। 'एक लाखकी बख्शिश' अक्षरोंके नीचे 'गोल्डन फॉन' शब्द लिखे थे। 'गोल्डन फॉन'का अर्थ सुनहला हिरन होता है — यहाँ तक तो मेरे ज्ञानने मेरा साथ दिया। परतु यह सुनहला हिरन कहाँ है? 'इसापनीति'मे सोनेके अण्डे देनेवाली एक हसनी मैंने बचपनमे देखी थी। उसीका ही क्या यह कोई दूरका रिश्तेदार है?

एकदम मेरे ध्यानमे आया कि यह किसी लॉटरी या रेलमें मिलनेवाला बख्शिश है। सर्प दीखते ही जैसे कोई चौंक जाय, उस तरह चौंककर मै दूर हो गया और चुपचाप आगे बढने लगा। मुझे हमेशासे ऐसा लगते आया है कि मनुष्य स्वयं चाहे तो बदमाश घोड़ेपर भले ही बैठे, परंतु उसे अपने भाग्यको अच्छेसे अच्छे घोड़ेपर भी कभी भी न बैठने देना चाहिए। इसके कारण उस एक लाख रुपयेकी बख्शिशका विचार छोड़कर, मै धनिया और मिरचाके भाव पूछने लगा।

परंतु मनुष्यका मन कितना विचित्र है! एक तरफ़ तो काछिनसे यह कहकर कि दो-चार मिरचा और चढ़ाकर ज़रा ठीक तरहसे तौल, मैं दो पैसेके मिरचा खरीद रहा

था, परतु दूसरी तरफ मेरा मन कह रहा था – यदि लाख रुपयेका यह बख्शिश मुझे मिल जाय, तो हर रोज बाजारमे आकर दो-चार पैसोके मिरचा खरीदनेकी मेरी यह रोज रोजकी झंझट ही कम हो जायगी! मैं एकदम सौ रुपयोंके मिरचा खरीद लूँगा! परतु छिः! लखपति लोग क्या सब्जी खरीदने खुद बाज़ार जाते हैं? उनके लिये सब्जी उनके नौकरोको ही लानी चाहिए। यदि कभी यह लगा कि नौकर ठीक तरह देखकर अच्छी सब्ज़ी नही लाते हैं, तो स्वय ही सब्जी खरीदनेके लिये बाजार आनेमे कोई हर्ज नही है। परतु इस तरह पैदल बाजार नही आयेंगे! सीधे हवाई जहाजसे उतरना पड़ेगा यहाँ!

अरे! पर इस सब्जी-बाजारके पास हवाई जहाजको उतरने लायक कोई स्थान ही नहीं दीखता है! लाख रुपये मिलनेपर कोल्हापुरमें रहनेसे काम नहीं चलेगा, यही सच हैं! फिर मुझे कहाँ जाकर रहना चाहिए? बंबई – लन्दन – न्यू यॉर्क —

मिरचा खरीदनेके लिये बड़े आवेशसे आगे बढे हुए एक बूढे महाशयने मुझे कसकर चुटकी ली, तब कही मेरे भीतर विचरण कर रहा शेखचिल्ली अदृश्य हुआ!

परतु सब्जी खरीदकर जब मै घर लौटने लगा, तब रास्तेकी बायी ओरके उस काले तख्तेकी ओर मेरी ऑखे फिरमे बरबस मुड गयी। मैंने उन बडे बड़े अक्षरोंको फिरसे एक बुभुक्षितकी दृष्टिसे पढा —

'एक लाखकी बख्शिश'

मेरा मन रह-रहकर उस बख्शिशका विचार करने लगा। आजतक मैं स्पष्ट शब्दोंमें कहता आया था कि घोड़ोंपर दॉव लगानेवाले लोग गदहे होते हैं। परतु अब मेरे मनमे एक विचार धीरेसे झॉकने लगा। मैं भी सहज मजेके लिये सिर्फ एक बार यदि इस 'गोल्डन फॉन' पर दाँव लगा दूँ, तो क्या हर्ज है? इस बातका पता कि मैंने दॉव लगाया था, मुझे बख्शिश मिलनेके बाद ही लोगोंको चल सकता है! और फिर एक यही बात क्यों, मेरे विषयकी और भी सौ बातें यदि लोगोंको मालूम हो जायँ, फिर भी उसकी कौन साला फिक्र करता है! इस दुनियामें अमीरोंको सौ खून हमेशा ही माफ रहते हैं! सिर्फ़ अपने सिद्धान्तपर अटल रहनेके लिये मैंने अपने जीवनमें लॉटरीका एक रुपयेका टिकट भी कभी नहीं खरीदा। परतु वैसे देखा जाय, तो इस सिद्धान्त-निष्ठासे मुझे ऐसा कौनसा बड़ा लाभ हुआ है? पिछले वर्ष बेलगॉवके होटलवालेको और अभी कुछ दिन पहले सालगॉवके किसी

नाईको लॉटरीमें आठ आठ हजारकी बख्शिशें मिली । उस नाईसे भी क्या मै कम नसीब हूँ ? यदि यह कहा जाय कि फिल्मके अभिनेताओ – विशेषतः अभिनेत्रियोंको लॉटरी और रेसके पीछे न पडना चाहिए, तो एक बार भी हो सकता है । क्यो कि उनका भाग्य उनके सुदर चेहरोंपर ही लिखा रहता है और उनसे काम लेनेवाले उनके मालिक घोड़ोंकी तरह नखरीले नही होते, यह अनुभव भी उन्हे रात-दिन होता रहता है! परतु, इन अँगुलियोंपर गिने जा सकनेवाले भाग्यवान लोगोंको हम छोड़ दें, तो मुझ जैसे जो असख्य दरिद्री जीव इस दुनियामे हैं, उन्हे यदि एकाध बार लॉटरी या रेसपर दॉव लगानेकी इच्छा हो जाय, तो इसमे आश्चर्य क्या है ? बहुत हुआ तो मैं अपने दॉव लगानेकी बातको गुप्त रखूँगा । जिस दुनियामे प्रेम भी चोरीसे करना पड़ता है और राष्ट्रोंके भविष्योको तय करनेवाली सधियॉ बिलकुल अँधेरेमे होती हैं, वहॉ यदि साधारण मनुष्य रात-दिन सत्यकी जान-बुझकर झूठी प्रशंसा करता रहे, तो इसमे क्या अर्थ है ?

कल सब्जी खरीदने जाते समय 'गोल्डन फॉन' पर पॉच रुपयेका दॉव लगानेका मैने निश्चय किया, तब कही मेरा मन स्वस्थ हुआ। परतु यह स्थिति बहुत देरतक न टिकी । दोपहर भोजनके बाद, आराम करनेके लिये मै लेट गया। मेरी ऑख लग ही रही थी, तभी मुझे एक स्वप्न दिखा। उस स्वप्नमे अखबार बेचनेवाले लड़के जोर जोरसे मेरा नाम लेकर चिल्ला रहे थे – 'एक लाखकी बख्शिश, एक लाखकी बख्शिश !' उस हो-हल्लेसे मैं चौंककर जाग उठा। यह जानते हुए भी कि मुझे लाख रुपये मिलनेके लिये अभी समय है, मैं इस विषयमे कि वह रकम किस प्रकार खर्च करूँगा, बड़ी बारीकीसे विचार करने लगा।

शहरसे पिताजीके द्वारा लायी गयी चिजीका पुड़ा खोलते ही घरके कच्चे-बच्चे जिस तरह उनके पास 'मुझे दो – मुझे दो' कहते हुए इकट्ठा हो जाते हैं, उसी प्रकार मेरी सारी अतृप्त इच्छाएँ और अभिलाषाएँ उन लाख रुपयोंके इर्द-गिर्द मनमानी नाचने लगी। गत तीस बरसोसे – कॉलेजमे भरती हुआ उस दिनसे – ब्लेजरका एक सुन्दर कोट सिलवानेकी मेरी बड़ी इच्छा थी। पर कॉलेजमें रहते हुए भोजनालयके बिलोंको चुकानेके बजाय उनसे मुँह किस तरह छिपाया जाय, इस विवंचनामें ही मेरे दिन व्यतीत होनेके कारण, उस समय दूसरोंके ब्लेजरके कोटोंको देखकर, भवभूतिके 'कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी' चरणको गुनगुनानेके सिवा मुझसे और कुछ भी न बन सका। आगे चलकर, जब मैं शिक्षक

होकर शिरोडा आया, तो वहाँ मामूली कोट सिलवानेके भी लाले पड़ने लगे। इसलिये मेरी कल्पनाके ब्लेजर कोटको मिल्टनकी 'They also serve who only stand and wait' उक्तिका आश्रय लेना आवश्यक ही था। जब मैं फिल्मोके लिये कहानियाँ लिखने लगा, तब उस कोटने अपने घोड़ेको अधिक तेजीसे दौडाना शुरू किया! परतु किसी भी कम्पनीके नये चित्रके कपड़ेसे सीधा ब्लेजरका कोट निकाल लेना कहानीकारकी अपेक्षा व्यवस्थापकजीके लिये ही अधिक सभव होनेके कारण, मेरा यह शौक पिछले आठ वर्षोंमे कभी पूरा न हुआ। अब ज़रूर मैने मनमें पक्का निश्चय कर डाला कि एक लाख रुपया मिलते ही ब्लेजरके तीन-चार भिन्न भिन्न रगोके बढिया कोट सिलवाऊँगा। मुझे अपनेपर ही हँसी आयी। सिर्फ़ तीन-चार ही! छिः! भिक्षुकसे बडा दान भी नहीं माँगा जाता है, यही सच है। मै एकदम सात ब्लेजरके कोट सिलवाऊँगा! सात रंगोके सात कोट! हप्ते-भर हर रोज़ नया कोट! प्रत्येक दिनके लिये अलग अलग रंग!

इस लाख रुपयेसे और क्या क्या करना चाहिए? बस! तय हो गया! इसके आगे रेलकी यात्रा भी फर्स्ट क्लाससे ही किया करूँगा। वाल्मीकीके आश्रममे रहनेवाले ऋषि-कुमारोको जिस तरह यह नही मालूम था कि जिसे घोड़ा कहते हैं वह प्राणी कैसा होता है, उसी तरह मुझे भी अभीतक पहले दरजेके डिब्बेके अन्तरगकी बिलकुल ही कल्पना नहीं आयी है। खट् खट् बूट बजाते हुए अथवा भड़कीली पोशाकोको सम्हालते हुए निर्बुद्ध चेहरेके पुरुषों और स्त्रियोंको पहले दरजे-के डिब्बेमे प्रवेश करते हुए देखता हूँ, तो क्षण-भर ही क्यों न हो, मुझे उनके भाग्यसे ईर्षा होती है! मैने अपने आपसे कहा — अब इस असंतोषको अपने मनमे बनाये रखनेका क्या कारण है? हम पहले दरजेसे चाहे कितना भी सफर क्यों न करे, तो भी ये लाख रुपये जल्दी थोडे ही खर्च हो जायेंगे!

मै मनमें कहने लगा — अब जो सफर करूँगा वह बम्बईसे कोल्हापुर और कोल्हापुरसे शिरोडा जैसा नकली या कल्पित न होगा! बचपनमे मैने दूसरोकी मासिक पत्रिकाओं-से उड़ाकर, बड़े बड़े दर्शनीय स्थानोंके चित्र काटकर रखे थे! वह चोरीका चित्र-सग्रह इस समय मेरे पास न हो, फिर भी केवल स्मरणशक्तिके बलपर, मुझे क्या क्या देखना है — यह एक घंटे-भरके भीतर निश्चित किया जा सकता है।

उस समय कृष्णा नदीमें तैरते समय एक कल्पना हमेशा मेरे मनमे आया करती। यदि इसी तरह तैरते तैरते मैं आगे चला जाऊँ, तो मछलीपट्टनतक पहुँच जाऊँगा।

वहाँ कृष्णा समुद्रमे मिलती है। उस सगमका दृष्य कितना मनोहर दीखता होगा! अब सबसे पहले यही सगम देखूँगा!

उसको देखनेके बाद मदुराका मंदिर देखूँगा। मुझे उसके चित्रसे बचपनमे ऐसा लगता था कि आँखमिचौनी खेलनेके लिये यह बहुत अच्छा मदिर है। उसे देखनेके बाद पता चल ही जायगा कि यह बात सच है या झूठ! इस मंदिरको देखनेके बाद, गिरसप्पाका जल-प्रपात देखने जाऊँगा। अँग्रेजी स्कूलमें मैने जब पहली बार उसका चित्र देखा था, तब रविवर्माका गगावतरणका चित्र एकदम मेरी दृष्टिके सामने खड़ा हो गया था। शकरके विशाल और कृष्ण जटा-भारकी तरह दीखनेवाला वह पर्वत, उस जटा-भारसे जगमगाती हुई बाहर गिरनेवाली गंगाकी तरगोकी तरह, उस पर्वतके नीचे कूदनेवाले शरावतीके रूपहले प्रवाह इस भव्य सौन्दर्यको जी भरकर देखनेकी मेरी इच्छा अब शीघ्र ही सफल होगी, इसलिये मेरा मन कितना उल्लसित हो गया!

इस उल्लासके आवेशमें मैने अपने आपसे कहा, हम हिन्दुस्तानी लोग अभीतक कूप-मण्डूक ही बने हैं, इसमे संदेह नही। खासे एक लाख रुपये कल हमारे जेबमे आयेंगे और हम शानसे सफरका जो कार्य-क्रम बना रहे हैं वह क्या—तो मदुरा और गिरसप्पाका! वाह, यह कुछ नही! रुपये हाथमें आते ही सबसे पहले विदेश-यात्रा की जायगी!

मेरी कोरेलीके 'थेल्मा' नायक उपन्यासमे, नॉर्वे जैसे उत्तर ध्रुववाले देशमें आधी रातके सूर्योदयका कितना अद्भुत और रमणीय वर्णन मैने करीब चौबीस वर्ष पहले पढा था। उस सूर्योदयको अब मै प्रत्यक्ष देख सकूँगा! पनामा नहर बन-जानेसे अटलॉटिक और प्रशान्त महासागरोंकी प्रथम भेट होनेका वृत्तान्त मैने तीस वर्ष पहले समाचार-पत्रोमे पढा था। अब मैं इन दोनो महासागरोंके मिलनका मधुर दृश्य अपनी ऑखोंसे देख सकूँगा। मिसर देशके पिरैमिड, महाकविको शोभा देने योग्य मृत्यु शेलेको प्राप्त हो, इसलिये अचानक तूफान पैदा करके, जिस स्थानमे समुद्र उसे अपने अनन्त मदिरमे ले गया, वह स्थान, शेक्सपीअरकी सुरक्षित रखी हुई कुर्सी, मैजिनीकी समाधि, कॉचके संदूकमे रखी हुई लेनिनकी मृण्मय मूर्तिका दर्शन—छिः! पृथ्वी-परिक्रमाको रवाना होनेसे पहले ही मुझे सारी दर्शनीय वस्तुओकी एक सूची ही बना लेनी चाहिए! नही तो गड़बड़ीमे कई चीजें

और जगह देखनेको रह जायेंगी और हिन्दुस्तान वापस आनेपर जन्म भर यह बात मेरे मनमे खटकती रहेगी कि मैने यह नहीं देखा और वह नहीं देखा!

इस प्रवासके समाप्त होनेपर मैं एक सुदर लाइब्रेरीके बनानेमे लग जाऊँगा! इच्छित पुस्तके समयपर न मिलनेके कारण आजकल मुझे कितनी अड़चन होती है! कई अमीरोंका ग्रंथ-सग्रह बहुत अच्छा होता है। परतु उनके मालिकोंके ग्रंथोंके विषयकी कल्पना मेरी और आपकी कल्पनासे भिन्न होती है। वे लोग इसी धारणापर चलते हैं कि पुस्तके पढनेके लिये नहीं, किन्तु वैभवका प्रदर्शनके लिये होती हैं। ऐसी हजारो स्त्रियोको जिनका नाखून भी लोग कभी न देख सके अपने जनानखानेमे रखनेवाले किसी बूढ़े सुल्तानके ये पट्टशिष्य—खैर, छोड़िये भी! लाख रुपये मिलनेपर उन्हे अपनी लाइब्रेरी दिखाकर उनकी ऑखोमे अच्छा अजन लगा दूँगा मै!

पृथ्वी-पर्यटन, उत्तम ग्रंथ-संग्रह, शिरोडाकी टेकड़ीपर एक सुदर बॅगला, ऐसे स्थानपर जहॉसे रात-दीन समुद्रका दृश्य दिखता रहे—इस प्रकार एक नहीं, दो नही बल्कि सैकड़ों अतृप्त इच्छाएँ मेरी दृष्टिके सामने साकार होने लगी।

तुरत ही मुझे लगा—स्वप्नकी धनाढ्यता भी मनुष्यको अधिक आत्मनिष्ठ बना देती है, इसमे संदेह नहीं। अभीतक मै स्वय अपने ही सुखका विचार कर रहा था। मेरी बराबरीसे जिन लोगोंने अनेक गरमियॉ और बरसातें देखी हैं, गृहस्थीकी यात्रामे पैर जलनेके बावजूद जिन्होंने हॅसते हुए मुझे ऐसा आभासित कराया जैसे मैं फूलोंके पावड़ोंपरसे चल रहा हूँ, उन अपने कुटुम्बके लोगोकी अतृप्त इच्छाएँ क्या मेरी इच्छाओकी तरह ही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं? क्या, मेरी बहनके मनमें यह कभी न आया होगा कि वह काशी-यात्रा कर सके? हमजोलियोंके कानोंमे हीरेके बुंदके देखकर मेरी पत्नीके मनमें कभी यह इच्छा पैदा नहीं हुई होगी क्या, कि उस तरहके बुंदके उसके कानोंमें भी हों? मुझे त्रास न हो, इसलिये इन दोनोंने अपनी इच्छाएँ मुझसे प्रकट न की होंगी। पर—

रातको भोजनके बाद एक तरफ़ झपकी लेते हुए और दूसरी तरफ़ खेलते हुए बच्चे मेरे आसपास कलोल करने लगे। तब मेरे मनमे आया कि इन लोगोंकी भी इच्छाएँ पूछ लूँ और मिलनेवाले एक लाख रुपयेके खर्चकी पूरी व्यवस्था कर डालूँ। मैने बच्चोसे पूछा,—'हमें अब एक लाख रुपये मिलनेवाले हैं। उन रुपयोंमें तुम्हें क्या क्या चाहिए वह...'

मै अपना वाक्य पूरा करूँ इससे पहले ही अवी चिल्ला पडा, – 'मुझे एक लाख रुपयेका आइस-क्रीम चाहिए!'

एक लाखका आइस-क्रीम! मै ठण्डा ही पड गया! मुझे ऐसा लगा कि किसी महासागरमे हिमालयको डालकर ही इतना आइस-क्रीम बनानेका इन्तजाम करना पडेगा।

मैने मन्दाकी ओर देखा। वह गंभीरतापूर्वक बोली, – 'मै एक लाख रुपयेके गुलाबके फूल लूँगी।'

एक दिनके लिये ही क्यों न हो घरको कश्मीर बना देनेका इरादा था उसका!

'तू क्या करेगी?' – मैने लतासे पूछा।

'मै गुडियॉ लूगी!' – उसने अपनी स्वप्निल ऑखोसे मेरी ओर देखते हुए उत्तर दिया।

एक लाख रुपयेकी गुडियॉ! घरको पदार्थ-सग्रहालय बनानेका कल्पलतादेवीका यह विचार सुनकर मुझे एकदम हॅसी ही आ गयी।

इसी समय सुलभा अपनी बाहोंको मेरे गलेमे डालकर बोली, – 'मै बताऊँ, भाऊ?'

मुझे लगा कि यह साढे-तीन सालकी छोकरी जो एक लाख रुपयेकी कल्पना भी नही कर सकती, आखिर क्या मॉगेगी। बहुत हुआ तो वह लाख रुपयेका पेपर-मिन्ट या चॉकोलेट चाहेगी। वह क्या कहती है उसे मै ध्यानसे सुनने लगा।

वह धीरेसे बोली, – 'हम रोटी लेगे!'

'रोटी?'

'हॉ! और वह रोज रोज पंढरीनाथको देगे!'

पढरीनाथ! मैने घड़ीकी ओर देखा। साढे-नौ बज रहे थे।

नित्यकी भॉति सडकसे करुण शब्द सुनायी पड़ने लगे – 'पढरीनाथा, विट्ठला, माईबाप! कोई रोटीका एक टुकड़ा देनेकी दया करो बाबाऽऽ!! पंढरीनाथ भला करेगे!'

सुलभा मेरी गोदसे एकदम उठकर अन्दर गयी और पंढरीनाथके लिये मॉसे रोटी मॉगने लगी। रोटीका एक चौथा हिस्सा लेकर दौड़कर बाहर आयी। अॅधेरेमे ही वह जीना उतरने लगी। इस भयसे कि एकाध सीढी चूककर छोकरी कही गिर न पडे, मैं उसके पीछे पीछे गया।

सुलभाने जल्दी जल्दी दरवाज़ा खोला और 'पंढरीनाथ' कहकर पुकारा।

नौ-दस सालका एक लडका आगे आया। अटारीकी रोशनी उसपर पूरी तरह पड़ रही थी। उसके शरीरपर मैले और फटे हुए कपड़े थे। जीर्ण कपड़ोके भीतरसे उसकी पसलियाँ साफ दीख रही थीं। ऑखे निराश-सी लग रही थी। उसके हाथमे मिट्टीका एक बर्तन था जिसमे बासा भोजन —

मैने शर्मसे अपनी गर्दन नीचे झुका ली। मेरे अविनाशकी ही उम्रके इस बालकको चार कौरके लिये रात-बेरात अँधेरेमे चिल्ला-चिल्लाकर दरदर घूमना पड़ता है। इस बालक सरीखे एक नहीं बल्कि लाखो लड़के मेरे देशमे इस क्षण अपने पेटकी ज्वालाको शान्त करनेके लिये घर घर भीख मॉगते फिर रहे हैं। ऐसी हालतमें, दॉव लगाकर केवल अपने मज़ेके लिये एक लाख रुपयेकी कल्पना मेरे मनमे आवे, इसकी मुझे बड़ी लज्जा आयी !

उस क्षण 'फाउस्ट' नाटकका मुझे तीव्रतासे स्मरण हुआ। इस नाटकमें महाकवि गटेने शरीर-सुखके लिये अपनी आत्मा शैतानको बेच देनेवाले एक व्यक्तिका चित्रण किया है। मुझे लगा – बीसवीं सदी यंत्र-युग नहीं है, आत्माको खरीदनेवाले शैतानका युग है। यह युग ऐसे मोहोसे भरा हुआ है कि उनके वशीभूत होकर, मनुष्य अपने मनुष्यत्वको भूल जाता है। इस युगमे शैतान बिना परिश्रम किये प्राप्त होनेवाले रुपयोके रूपमे अवतीर्ण होता है। इस शैतानके उन्मादक सहवासमे बिना परिश्रम किये, विलास करनेके लिये ललचाया हुआ प्रत्येक मनुष्य यह भूल जाता है कि मै हजारो मनुष्योको जानवरोकी तरह ज़िंदगी बितानेके लिये मजबूर कर रहा हूँ। एक लाख रुपयेमे क्या क्या करूँ, इस संबंधके मेरे सारे सकल्प अवीका आइस-क्रीम, मंदाके फूल और लताकी गुड़ियाँ – इनमे और मेरी अतृप्त इच्छाओमे ऐसा कौनसा बड़ा फर्क है?

कठिन परिश्रम करके भी यदि हमे एक लाख रुपये मिले, फिर भी जबतक 'पढरीनाथ' जैसे लड़के समाजमे मौजूद हैं, तबतक उन रुपयोका उपभोग करनेका हमे अधिकार नही।

दरवाजा वद करके सुलभा ऊपर आने लगी। उसे देखते-देखते मुझे यह विश्वास हो गया कि आजतक केवल काव्य-मय लगनेवाली वर्डस्वर्थकी यह उक्ति कि बच्चे ही बडे लोगोके लिये मार्ग-दर्शक होते हैं (The child is the father of man) बिलकुल यथार्थ है। इन्द्रधनुषके दर्शनका आनंद छोटा बच्चा ही

जिस तरह उत्कटतासे ले सकता है, उसी तरह मानवताकी यह मूलभूत भावना कि हम भाई भाई हैं, उसीके हृदयमे बड़ी मधुरतासे सहजमे प्रकट होती है।

ऊपर आते ही सुलभाने मुझसे पूछा, 'एक लाखकी रोटी लाकर दोगे न मुझे?'

मैने कहा, – 'वे लाख रुपये मेरे पास नहीं हैं, बेटा! तुम्हारे पास हैं!'

वह आश्चर्यसे मेरी ओर देखने लगी।

मैने उसे अपने पास खींचकर हृदयसे लगा लिया और उसका मधुर चुम्बन लेते हुए कहा, – 'यह है मेरी एक लाखकी बख्शिश!'

●●●

२९

दर्पण

महाभारतमें ऐसी एक कथा है जब कि धर्मराजने शौर्यसे न सही, पर बुद्धिमत्तासे अपने भाईयोंके प्राण बचा दिये थे। प्यासमे व्याकुल हुए भीमार्जुनके शस्त्र जिसके आगे बेकार हो गये थे, उस अदृश्य यक्षपर धर्मराजने अपनी बुद्धिके बलपर विजय प्राप्त कर ली थी। यक्षने अपने मतके अनुसार महान बिकट प्रश्न धर्मराजसे पूछे थे। परंतु कैसा भी घना अंधकार हो, फिर भी सूर्यकी किरण जिस तरह उसके भीतरसे अपना मार्ग निकाल लेती है, उसी प्रकार धर्मराजने उन प्रश्नोंको एक चुटकीमें हल कर डाला था। इस यक्ष-कथाका तात्पर्य कुछ भी हो, पर उससे धर्मराजके ज्ञानकी अपेक्षा यक्षका अज्ञान ही अधिक दिखायी देता है। बेचारा ऐसा एक भी प्रश्न पूछ न सका जो उत्तर देनेवालेको अड़ा देता। आजकलके ज़मानेमें मैट्रिककी तो बात ही छोड़िये, मामूली मिड्ल स्कूलका भी परीक्षक बनना उसके लिये संभव न होता। बेचारा कुबेरकी अलकानगरीकी पाठशालामे न जाने क्या सीखा था। कुबेर धनाधिपति होनेके कारण हो सकता है उसकी शालामें जमा-खर्चका विषय ही मुख्य विषय रहा हो। व्यापारी मनुष्य यदि विद्वानसे बहस करे तो यह अनधिकार चेष्टा ही है। हेन्री फोर्डको यह बात, कि व्यापारी दृष्टिसे सारी दुनियापर किस तरह अधिकार जमाया जा सकता है, सबसे अधिक अच्छी तरहसे मालूम

होगी। पर किसी सामाजिक प्रश्नपर यदि वह बर्नार्ड शॉसे बहस करने लगा, तो यह कहनेकी जरूरत ही नही कि इसमे वह हार जायेगा।

महाभारतके यक्षका यही हुआ।

धर्मराजसे पूछे जानेवाले प्रश्नोका प्रश्न-पत्र यक्ष यदि मुझे पहले दिखा देता, तो उसमें मै निम्न लिखित प्रश्न जरूर शामिल कर देता—'युवकोका अत्यन्त घनिष्ठ मित्र और वृद्धोंका कट्टर शत्रु कौन है?'

बहुत करके धर्मराज इस प्रश्नका उत्तर देते—'मदन'।

परतु मेरा उत्तर रटकर गया हुआ यक्ष विजयानन्दसे चिल्ला उठता,—'ग़लत! साफ ग़लत! दर्पण ही तरुणोका मित्र और वृद्धोका शत्रु है।'

गनीमत हुई कि उन दिनोंमे मै नही था। वरना इस तरह यक्ष जीत जाता और मृत पडे हुए भीमार्जुनादि पाण्डव फिरसे जिदा न होते—और इसलिये महाभारत-का युद्ध ही न हुआ होता। चूँकि मैंने यह प्रश्न यक्षको सुझाया था इसलिये सभव था कि दुर्योधन महाराज मुझे अपना मुख्य मंत्री बना लेते!

वैसे देखा जाय तो दर्पणने बूढोका ऐसा कौनसा नुकसान कर डाला है? यह बात भी नहीं है कि वह तरुणोको सजे-सजाये हाथीपर बैठाकर उनका जलूस निका-लता हो। उसके सामने यदि कोई जवान कुब्जा खडी हो जाय, तो उसकी जवानी-पर भूलकर वह उसे रभा नहीं बना देता। फिर कमानकी तरह झुके हुए बुढ़ऊ उसमे बाणकी तरह सीधे न दिखायी दें, तो इसमे उस बेचारेका क्या अपराध है! लेकिन तरुणोंसे दर्पण अपनी ऑखोके सामनेसे एक क्षण-भरके लिये भी दूर नहीं किया जाता, तो बूढ़ोसे वह अपनी ऑखोके सामने एक क्षण-भरके लिये भी नहीं रखा जाता। सृष्टिका यही नियम जान पड़ता है कि जवानी और बुढ़ापेमे हमेशा दो ध्रुवोका अन्तर होना चाहिए।

तरुणोकी कौनसी बाते बूढ़ोको अच्छी लगती हैं कि वे दर्पणको ही अच्छा समझे और अपनाले। तरुण नाटक और उपन्यास पढते हैं, वृद्ध उन्हें उपदेश देते हैं,—'भैया, 'दासबोध' [1] या गीता जैसी भी तो कोई किताब पढ़ा करो।' जहॉ तरुणियोंने कधेसे अपने बाल घुमायें तहॉ उनकी बूढी माताओं और सासोके सिर ही घूम जाते हैं। बीससे कम उम्रकी लड़कीकी मॉग जरा बायीं और झुक

१ सत्रहवीं सदीमेंके महाराष्ट्रके सत रामदास स्वामी द्वारा रचित नीतिपाठका श्लोकबद्ध मराठी ग्रथ।

गयी कि साठके पार गयी बुढ़ियोको वह बुरे मार्गपर लग गयी सरीखी लगने लगती है। तरुण और तरुणी यदि आपसमे खुलकर बाते करने लगे तो बूढ़ेके झुर्रीदार चेहरेकी शिकनें धीरेसे कहती है, – 'आजकलके लड़के!'

दर्पण आजकलकी खोज भले ही न हो, पर सच तो यह है कि वह आजकलके लोगोको ही अच्छा लगता है। जो आजकलके परे चले गये हैं, उन्हें वह अच्छा लग ही कैसे सकता है? तरुणोको दर्पणमे चिकने काले बाल, सेबकी तरह फूले हुए गाल और हीरो सरीखे चमकदार दाँत दीखते हैं। परतु जब बूढ़े लोग दर्पणके सामने अपना मुँह ले जाते हैं, तब सारी दुनिया ही बदल जाती है। काले केश सफेद बन जाते हैं, गालके सेबका रूपान्तर सतरेके छिलकेमें हो जाता है और जब हीरोके छोटे सदूकको खोलकर देखते हैं तो पोपला मुँह सामने आकर खडा हो जाता है। दर्पणको आगे रखनेसे तरुणाईको मदनकी मूर्त्ति दीखने लगती है, किन्तु बुढापेको जरूर मूर्त्तिमान मृत्युके ही दर्शन होते हैं। ऐसी हालतमें कौन वृद्ध दर्पणसे प्रेम करेगा? उनकी दृष्टिमे दर्पणसे प्रेम करना मृत्युसे मैत्री करनेकी तरह एक बड़ी कठिन परीक्षा है।

इन बड़ोके सतोषके लिये यदि दर्पण उन्हें यह सिद्धान्त बता दे कि 'जैसा दीखता है वैसा नहीं होता', तो पचासके पार गये लोगोमें वह अत्यन्त लोकप्रिय हो जायेगा। परतु इस सिद्धान्तके कारण उसके सारे तरुण ग्राहक उसे फोडकर टुकडे टुकड़े कर डालेगे। ऐसे विकट पेचमे तरुणोसे चिपके रहनेमें ही दर्पणकी दूर-दर्शिता व्यक्त होती है। यदि वृद्ध प्रसन्न भी हो गये तो दर्पणको सफेद साफे, पुराने कोट, फटे हुए पान सुपारी रखनेके बटुवे, मोटी छड़ियाँ और बाबा आदमके जमानेके जेवर आदि चीजोको छोडकर और कुछ भी न दिखायी देगा। लेकिन अगर तरुण खुश हो गये तो एक घड़ीके भीतर त्रिभुवनकी सारी सुन्दर वस्तुएँ दर्पणको देखनेको मिल जाती हैं। आजकी फैशनके कपड़े, जेवर और केश-रचना तरुणोंको छोड़कर, उसे और कौन दिखा सकता है? दर्पण और उसकी पत्नीमे अनबन हो जानेके कारण समय काटनेके लिये उसे साधनकी ज़रूरत होती है। तरुण-तरुणी अपनी वेशभूषासे उसका काफी मनोरंजन कर देते हैं।

इस सिलसिलेमें दर्पणकी पत्नीकी बात निकल आयी है। ऊपरसे यह भी मालूम हो गया है कि उसकी अपने पतिसे पटती नहीं है। इसलिये उसका हाल सुननेकी उत्कण्ठा प्रत्येकको लग गयी होगी। क्या, पतिके बुरे बर्तावके कारण वह उसे छोड़-

कर चली गयी अथवा क्या हुआ, उसे तलाक मिला या नहीं — इत्यादि प्रश्नोकी मारसे बचनेके लिये उसका हाल सुना देना ही अच्छा है। दर्पण और उसकी पत्नी आरसी (ऐनक) दोनों एक ही गोत्रके हैं। भाषा-शास्त्रमे पारगत उनके माता-पिताने दोनोके जन्मसे पहले ही उनका विवाह निश्चित कर डाला। आगे चलकर सगोत्र विवाहका प्रश्न खड़ा हुआ। तब आरसी एक नेत्र-वैद्यको गोदमे दे दी गयी। (उसका गोदमें दिये गये घरका नाम आरसी है।) गोद लेनेवाला बाप उसे कभी भी अपनी आँखोसे ओट नहीं होने देता था। इसके कारण उसे मनुष्यकी सिर्फ़ ऑखे ही अच्छी लगने लगी। इधर दर्पण शिक्षाके लिये घर छोड़कर बाहर गया। वहाँ पारेसे उसकी मित्रता हो गयी। दोनो मित्रोंने निश्चय किया कि चाहे जान चली जाय, पर हम एक दूसरेको कभी नही छोडेगे। विवाह मण्डपमे ही आरसीको पता चल गया कि मेरा पति मेरी अपेक्षा पारेसे ही अधिक प्यार करता है। वह झल्ला उठी और क्रोधसे भरी हुई अपने गोद लेने-वाले बापके घर चली गयी। यह देखकर कि अपना दामाद पारेका साथ छोडनेके लिये तैयार नहीं है, नेत्र-वैद्यने आरसीको अपने ही घरमे रख लिया। दुनियाके बूढ़ोने तय कर डाला कि दर्पण तरुणोंका मित्र होनेके कारण, इस मामलेमें सारा दोष उसीका है। वैसे पतिको छोड़कर रहनेवाली स्त्रीके बारेमे, बूढोंका मत बहुधा अनुकूल नहीं रहता। परतु आरसी इसकी अपवाद हुई। उसके लिये अलग घर लेकर, उसकी हिफाज़त करनेवाले और उसके हाथोंमे खुशीसे अपने दोनो कान दे देनेवाले वृद्ध लाखोंसे गिने जा सकते हैं।

दर्पणका पारिवारिक जीवन दुखी हो, पर वह कभी उदास और खिन्न नहीं दिखायी देगा। जब देखो तब हजरत कार्यमें मग्न हैं। उसके सामनेसे कोई निकल जाये तो ऐसा बहुधा कभी नहीं होगा कि उसके स्वरूपपर उसने प्रकाश न डाला हो! अमीर-ग़रीब, ऊँच-नीच आदि भेद-भावकी इस साधुतुल्य पुरुषको कोई परवाह नहीं! सम्राटके राज-प्रासादकी तरह नापितके कारखानेमें भी उसके मुँहपर उज्वल हास्य चमकता रहता है। हीरे और मोतियोंके अलंकार धारण करने-वाली सम्राज्ञीको निमिषार्धमे उसकी प्रतिमा चित्रित कर देनेवाला यह चित्रकार, केशोंमें जँगली फूलोंको गूँथनेवाली उसकी दासीकी छबिको भी उतनी ही उत्सुकता और कुशलतासे खींच देता है।

दर्पणके शिष्य-समुदायमें निःस्पृह आलोचकोंकी प्रमुखतासे गणना की जाती

चाहिए। आलोचकों द्वारा दिखाये गये दोष ग्रथ-कर्ताको बहुधा जॅचा नहीं करते। लेकिन दर्पणके द्वारा चित्रित किये गये स्वय अपने रूपको भी कितने लोग अनजान-की दृष्टिसे देखते हैं? ललाट-लेख लिखनेकी विधाताकी दवात उलट जानेसे बगरी हुई स्याहीमे सिरसे पैरतक डूबकर निकले हुए लोग भी दर्पणके सामने खड़े होकर गर्वसे आखिर अपनी गर्दने हिलाते ही हैं या नहीं? उनकी इन हिलती हुई गर्दनोंको देखकर प्रतिकूल आलोचनाके किसी एकाध अनुकूल वाक्यपर खुश होनेवाले लेखककी मूर्ति किसकी नजरोंके सामने नहीं खड़ी होगी?

भगुर कॉच और चॅचल पारासे उत्पन्न हुए दर्पणकी तुलना कवि कल्पनाकी दृष्टिमे मर्त्य शरीर और चॅचल मनके गर्भसे जन्म लेनेवाले प्रेमसे ही हो सकेगी। वस्तुके सामनेसे हट जानेपर, उसे पूर्ण रूपसे भूल जानेकी दर्पणकी शक्तिको देखकर तत्त्वज्ञ उसे स्थितप्रज्ञकी पॅक्तिमे बैठा देगा। किंतु दर्पणकी कोई कितनी ही प्रशसा करे, लेकिन मुझे उसके प्रति प्रेम एक ही बातके कारण लगता है। भापसे उड़नेवाले केटलीके ढक्कनके गर्भसे ही जिस तरह रेलगाड़ीका जन्म हुआ, उसी तरह बाह्य सृष्टिको हूब-हू दिखानेवाले दर्पणसे ही कभी न कभी अन्तःसृष्टि-के सत्यस्वरूपको दिखानेवाला दर्पण पैदा होगा।

ऐसे दर्पण यदि घर-घरमें हो गये, तो दुनियाके कम-से-कम आधे दुखोंको अपने मुँह काले करने पड़ेगे। मौसमी देशभक्त सभा-मचपर चढकर भाषण देने लगे कि यह नया दर्पण उनके हाथमे दे दिया जाये जिससे मुँहसे चूँतक न करके वे एकदम कूदकर मॅचके नीचे उतर पड़ेगे। प्रेम-याचना करनेवाले तरुणके हाथमे इस दर्पणको दे देनेसे उसकी रमणीको तुरत कल्पना आ जायगी कि उसके प्रेम-प्रवाहका उगम रूप, सम्पत्ति या कि दूसरी किसी उपाधिमे है। यदि इस प्रकारके दर्पणका अन्वेषण हो जाये तो दुनियामे वकील और गवाह दवाके लिये भी न मिलेंगे। अभियुक्त और प्रार्थीके हाथोंमे ऐसे दर्पण दे देनेसे उनमें उनके हृदयके प्रतिबिम्ब पड़ेगे। न्यायाधीशने जहॉ इन प्रतिबिम्बोंको देखा कि मुकद्दमेका फैसला हो गया! परतु ऐसा दर्पणका अन्वेषण क्या कभी होगा? इस प्रश्नका उत्तर कौन-सा धर्मराज देगा?

●●●

३०

अलंकारिक भाषा

'अलंकारिक भाषा कृत्रिम होती है। ऐसी भाषा केवल बुद्धिकी कसरत है। जिस देशमें नब्बे फी सदी लोगोंके लिये उपमा शब्दका अर्थ भी समझना संभव नहीं है, उस देशपर उपमाओंसे भरे हुए वाक्योंकी वर्षा करना बदहज्मीके रोगीको पकवान खानेका आग्रह करनेकी तरह है।' — अलंकारिक भाषाकी निन्दा करते करते फिर उसीका आश्रय लेना शुरू कर देनेवाले इस लेखकपर मुझे हँसी आयी। परंतु उसे रोककर अलंकारिक भाषाको भला-बुरा कहनेवाले इस आलोचनात्मक लेखको मैं आगे पढ़ने लगा। हजरत बड़े रंगमें आ गये थे। इस लेखको लिखते समय उन्होंने अपने माथेकी नसोंको कितना ताना होगा इसका चित्र मैं अपनी आँखोंके सामने खड़ा करने लगा। प्राथमिक शालाके विद्यार्थीका नीली स्याहीसे बनी नदियोंवाला भारतवर्षका नक्शा ही मेरी नजरोंके सामने नाचने लगा। सरस्वतीके दरबारमें अलंकारिक भाषाको फाँसीकी सजा दिलानेके लिये विरुद्ध पक्षके इस वकीलने उसपर अनेक अभियोग लगाये। वह रसका गला दबोचती है, स्वाभाविकताकी हत्या करती है, बुद्धिको भटकनेकी आदत लगाती है, इत्यादि इत्यादि। न्यायदेवतासे यह प्रार्थना करते समय कि उसे फाँसी देनी चाहिए अथवा कम-से-कम जीवन-भर अँधेरी कोठरीमें बन्द करके रखना चाहिए, उसका

लेखन अत्यन्त वक्तृत्वपूर्ण हो गया था। अलकारिक भाषा ठड़से जमी हुई नदी है। प्यासे प्राणियोके लिये उसके नीचेका पानी तिल मात्र भी कामका नही। बर्फसे आच्छादित उसका पृष्ठ-भाग अत्यन्त सुन्दर दीखता है। परतु उसपर घूमनेवालोंका जीवन सुरक्षित होता है क्या? बिलकुल नही। इसमे तो शककी गुंजाइश भी नहीं! किस समय उसे जल-समाधि मिल जाय इसका क्या ठिकाना?'

उसकी इस विस्तृत उपमाका अर्थ समझनेके चसकेमे मै न पडा, क्योंकि मैने देखा कि दूसरे ही क्षण शुभ्र और सफेद बर्फसे ढकी हुई नदीका सुनहले मृगमे रूपान्तर हो गया। 'अलंकारिक भाषा काचनमृग है। प्रतिभारूपी सीता उस सोनेके मृगपर मोहित हो जाती है। और जब विचाररूपी राम उस मृगका शिकार करनेके लिये आश्रम छोड़कर जाता है, तब रावण सीता हरण करता है।'

मैने बहुत दिमाग़ लड़ाया। मगर किसी भी तरह मेरी समझमे न आता था कि यह रावण कौन है। परतु मुझे सबसे अधिक हॅसी आयी इस अलकारिक भाषाकी। विष विषसे ही उतरता है। कुछ उसी तरहकी बात लगी यह। कदा-चित् 'आत्मैव रिपुरात्मनः'का तत्त्व लोगोको जॅचा देनेका उसका उद्देश्य हो। परसोकी ही एक बात है। एक वयोवृद्ध विद्वानने शिकायत की थी कि महाराष्ट्रमे आजकल विचारोंका दुर्भिक्ष (बिल्कुल दुर्गादेवीका) पड़ गया है। इन पडितजीकी रायमे हिंदुस्तानमें इस समय सिर्फ ढाई चतुर ऊर्फ विचारवान मनुष्य हैं। इस हिसाबसे यह तो स्पष्ट ही दीख रहा है कि पेशवाईके जमानेसे हमारी हालत गिर गयी है। ये ढाई चतुर हैं–गाधी और कृष्णमूर्ति पूरे चतुर और रवीद्रनाथ आधे।

उपरोक्त लेखको बड़े आदरके साथ पढ़कर मेरे एक मित्रने कहा,–'बड़ा मुॅहतोड़ लिखा गया है यह लेख। बाकी सब ठीक है। लेकिन मुझे एक शंका है। हिंदुस्तानके विचारवान ढाई लोगोंमे उपरोक्त लेखक–छोटेसे व्यवहारी अपूर्णाक-के रूपमे ही क्यों न हो–होगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। क्योकि उसने ढाई आदमियोंका ठीक हिसाब लगाकर दिखा दिया है। इस लेखकका कहना है कि इन ढाई आदमियोंको छोड़कर आजकल किसीको भी विचारवान नही कहा जा सकता। फिर उसका यह लिखना भी विचारपूर्ण है, या कि—'

दूसरोंका खण्डन करनेके आवेशमें मनुष्य स्वय अपना ही खण्डन कर लेता है इसका यह उदाहरण है। सच यही है कि उतावला शिकारी स्वयं अपनेको मार लेता है। परतु हिन्दुस्तानकी विचार-शून्यताका निषेध करनेवाले इस विद्वानकी तरह

अलंकारिक भाषाके विरुद्ध शस्त्र उठानेवाले लेखकके कथनसे यदि अतिशयोक्ति निकाल दें, तो उसमें सत्य है या नहीं? अलकारिक भाषाके विरुद्ध अनेक बार गिला सुनायी देता है। वह क्यो? क्या, हो-हल्ला करनेवाले ये लोग धज्जीका साँप बनाते हैं, या सीताकी लटको नाग मान लेते हैं या कि सचमुच सर्पदंशसे बेहोश हुए मनुष्यको देखकर दौड़धूप करते हैं?

मुझे एक छोटे उड़नेवाले जहरीले साँपने काट खाया था। इसलिये मेरा हमेशा 'जंगम' रहनेवाला पैर 'स्थावर'मे शामिल हो गया था! इसके कारण आरामसे लेटे-लेटे इस प्रश्नका विचार करनेके लिये मुझे पर्याप्त अवकाश था। परतु मैंने आँखे मूँदी ही थी – यदि किसीने यह कल्पना की होती कि मुझे नींद लग गयी है, तो वह ग़लत न होती! – परतु घरके सामनेवाले रास्तेसे गुजरनेवाले एक देहाती-के कर्कश शब्द मेरे कानोंमे पडे – 'उसके पीछे अट्ठाईस ग्रह हैं। इधर आओ – उधर जाओ।' चूँकी वह रास्तेसे आगे निकल गया था इसलिये मैं उसके आगेके शब्दोंको न सुन सका। परतु यह एक ही वाक्य – पूरे जीवनमे जिसने वर्णमालाके तख्तेमें लिखे 'अनार'के 'अ'का दर्शन नहीं लिया है, फिर 'अँगूठी'के 'अँ'-तक पहुँचनेकी बात तो दूर रही – ऐसे एक अशिक्षित मनुष्यके द्वारा बातचीतके आवेशमे उच्चारित हुआ यह वाक्य क्या अलकारित नही था?

इसी समय यह पूछनेके लिये कि मेरा सूजनवाला पैर कैसा है, एक महाशयजी पधारे।

'कहिये, आपकी सूजन कैसी है?' – उन्होंने पूछा।

'कलसे कुछ कम है।' – मैंने उत्तर दिया।

लेकिन तुरत ही मुझे अपने आपपर हँसी आयी। सूजनमें कहने लायक कोई फर्क नहीं पड़ रहा था। परतु मनको आशाकी आँखे होती हैं। वे महाशय मेरे पैरकी ओर बड़े ध्यानसे देखने लगे।

तुरत ही मैने कहा, – 'मेरा पैर भागके सवाल जैसा हो गया है। छोटे बच्चोको लगता रहता है कि एक बार और भाग चला गया कि सवालका उत्तर आ जायगा। उसी तरह मुझे लगता है कि और एक दिन बीता कि मेरी सूजन उतर जायगी। परतु —'

मेरी यह बात सुनकर वे हँस पड़े। मै भी हँसता। किन्तु मै मन-ही-मन सहम गया। मैंने जो कहा, क्या, वह सब अलकारिक न था? इस तरह बोलना कृत्रिम,

दुर्बोध, बुरा—और भी विशेषणोंकी जरूरत होती, तो उस लेखकको जरूरी तार देकर उससे मदद लेनेकी आवश्यकता थी।

उन महाशयने कमरेसे बाहर कदम रखा ही था तभी एक पालक आ धमके। उनके पुत्रने शालासे असहयोग करके होटल-प्रवेशके समर्थनमे आन्दोलन शुरू कर दिया था! जब लडका सोलह वर्षका हो जाय, तब पिताको उससे मित्रकी तरह बर्ताव करना चाहिए, इस नियमको अमलमे लानेका चिरजीवने अपने पिताको मौका ही न दिया था। वह स्वय ही पिताजीको अपना 'लगोटिया' मानने लगा। यह सोचकर कि मेरे कहनेका शायद कुछ उपयोग हो, उन्होने मुझसे उस लड़केको एक उपदेशपूर्ण पत्र लिखनेको कहा। पत्रका मजमून भी वे अपने साथ ले आये थे। उनके रुकसत होते ही मै उसको पढने लगा। बालकोको उपदेशामृत पिलानेके लिये पाठ्यपुस्तकोमे दिखायी देनेवाले 'पागल मेमना', 'प्रयत्नवादी मकडी' आदि प्राणियोके सम्मेलनका, उन्होने अपने मजमूनमे, जैसे एक अधिवेशन ही बुला रखा था।

मुझे अलकारिक भाषाकी निदाका स्मरण हो आया और हॅसी आयी। यह मै प्रत्यक्ष देख रहा था कि चिन्तासे व्याकुल हुए पिताके हृदयमे भी बेढब अलकारोको ही क्यो न हो, स्थान मिलता है। मुझे लगा अलकारिक भाषाकी निदाको पुराने साहित्यमे वर्णित शरीर और स्त्रीकी निदाके बराबर ही सच मानना चाहिए! स्त्री और वाणीके विषयमे दुनियाका बर्ताव 'उठाई जीभ और लगा दी तालूपर' की तरह ही नहीं होता क्या? इसके प्रमाणकी जरूरत हो, तो प्लैटेफार्मपर सबसे पहले भवभूतिको ही बुलाना होगा।

स्त्री और वाणी! दोनो जगकी माताएँ हैं! परतु जगको दोनोंके साथ दासीकी तरह बर्ताव करनेका मोह बिलकुल अमर्याद होता है।

'भयचकित नमावें तुज, रमणी
जन कसे, तुडविती तुज चरणीं ॥ ध्रु० ॥
समरधुरंधर, वीर धीर-गति
स्थितप्रज्ञ हरि उरीं कोंडिती
प्रसव तयांचा तूं जननी!
भूत निघाला तव उदरांतुन

वर्तमान घे अंकीं लोळण
भविष्य पाही मुलि! रात्रंदिन
तव हांकेची वाट मनीं!
तुझ्या कान्तिनें चंद्र झळझळे
फुला फूलपण मुली! तुजमुळें
रत्नीं राग तुझा गे उजळे!
तुजसाठींही प्रिय भगिनी!'[१]

ताबेजी[२]ने स्त्री-जातिको संबोधितकर जो उपरोक्त उद्गार निकाले हैं, वे वाणीके लिये भी अक्षर-अक्षर लागू पड़ते हैं। स्त्री और वाणी! जैसे दोनो सगी बहनें ही हैं। 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' जैसी घोषणा करनेवाली स्मृतियोंको स्त्री-जातिका व्याकरण ही कहना चाहिए! स्त्री घरमे काम कर-करके खपे, पर उसका श्रेय पल्ले पडता है पुरुषके! भाषाका भी ठीक वही हाल होता है! छटपटाती है वह, परतु पाठक कहते है—'कितने सुन्दर विचार हैं इस लेखमे!' दोनो यदि वेश-भूषा न करें तो उनकी ओर कोई झाँककर भी न देखे! परतु उनका नाज-नखरा जरा अधिक हो जाने दीजिये, फिर देखिये, लोग क्या सितम ढाने लगते हैं!

सच, अलंकारिक भाषाके विरुद्ध होनेवाले शोर गुलका उगम क्या स्त्रियोंके विषयकी लोगोकी कल्पनाओंमें ही होना सभव नहीं है? स्त्रियोंको अलंकारका शौक जन्मसे ही होता है। और उसमे अस्वाभाविक क्या है? तारे रजनीके बालोंमे ही शोभा देते हैं, दिनको उनका क्या उपयोग? परतु बहुत बार 'स्त्रियोंका शौक और पुरुषोंकी फाँसी'—इस तरह अलंकारोंका हाल हो जाता है। स्त्री जब टाप्सके

१ 'हे स्त्री जाति, तुझे भीतियुक्त आश्चर्यसे वदना करना चाहिए, परतु लोग तुझे अपने पैरोंतले किस तरह रोंद रहे हैं! समरधुरधर, वीर, धीरगति, स्थितप्रज्ञ (जो परमात्माको अपने हृदयमें वद रखते हैं) आदि सबकी तू जननी है! भूतकालने भी तेरे उदरसे जन्म लिया है। वर्तमान तेरी गोदमें खेल रहा है। हे रमणी, भविष्य तुझे देखा करता है। रातदिन तेरी पुकार सुननेके लिये उत्सुक रहता है। तेरे ही प्रकाशसे चदा चमक रहा है। पुष्पको पुष्पता भी तेरे ही कारण प्राप्त होती है। हीरेमें जो चमक है वह तेरी ही है। बहन यह सब तेरे लिये ही है!'

२ मराठीके आधुनिक प्रसिद्ध कवि—स्व० भा० रा० तांबे।

लिये मोतियोंकी मॉग करती है, तो पुरुषकी ऑखोंमे ऑसू आ जाते है। ऐसे समय अलंकारोंकी दिल खोलकर निन्दा करनेके सिवा पतिदेव और क्या कर सकते हैं?

अपने ही बच्चोंको खा जानेवाले बिलौटेको भी गीताका आधार दिखाया जा सकता है। फिर स्त्रियो और भाषाके अलकारके विरुद्ध आन्दोलन करनेवाले यदि 'सादगी'का तत्त्वज्ञान अपने समर्थनमें आगे बढाएँ, तो आश्चर्य क्या है? 'सीधा रहना और ऊँचा सोचना' कहावत तो उनकी जीभकी नोकपर डेरा डाले ही पड़ी रहती है। लेकिन सिर्फ सीधे-सादे रहन-सहनके कारण, शान्तिके लिये जेलके कैदियोको, और मिलके मजदूरोको साहित्यके लिये, 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त हो जाते! सादगीका रहन-सन उच्च विचारोका बच्चा है, मॉ नहीं। तुकाराम[1] महाराज नीचता ऊर्फ सादगीको अच्छा कहते हैं जरूर, परतु वह क्यो? चिऊँटियोको चीनी खानेको मिलती है इसलिये। सादे विषयमे बड़ा आशय दीखता है—न दीखता हो यह बात नहीं है। परतु वह दीखता है 'कवि' को और वह भी 'कभी कभी'। अलकारोका मुख्य उद्देश्य यह है कि दूसरोका ध्यान हमारी ओर आकृष्ट हो। बड़े लोगोकी सादगीसे ही वह पूरा होता है। लेकिन जिसका वह ख्याल हो कि सिर्फ 'पचा' की सादगीके कारण ही महात्मा गाधीको महत्त्व प्राप्त हुआ है, तो उसे यह जरूर देख लेना चाहिए कि 'खडाष्टक'[2] के पचाधारी कोंकनी बूढेका दर्शक-गण किस तरह स्वागत करते हैं?

बहुत हुआ तो निर्जन वनमे रहनेवाला रॉबिनसन क्रूसो सादगीसे रह सकता है। परतु जहॉ समाज आया, मनुष्यके विचार-विकारो और मतोका खेल शुरू हुआ कि वहॉ अलकारोका प्रवेश हुआ ही समझिये। जंगली लोग पत्थरोंको गलेमे बॉध लेगे तो सुधरे हुए लोग हीरे और माणिकोंको सिरपर धारण कर लेंगे। कई एक देशोंमे सुनहली केशोंपर नैसर्गिक कृष्ण-फूल नाचेंगे। तो कई एकमे काले केशोके समूहपर सुवर्णके बने फूल खेलते रहेगे। छोटा लड़का आईनेके सामने जाकर यह देखेगा कि उसकी जरकी टोपी सिरपर ठीक फिट हुई है या नहीं! उलटे, उसके दादा उसी साधनके जरिए अपनी पगड़ीको ठीकठाक करेंगे। तरुणी

१ सत्रहवीं सदीके महाराष्ट्रके सत।

२ मराठीके नाटककार स्व. श. प. जोशीका एक मराठी नाटक।

अपने केशोके बीच बीचकी लटोको माथेपर नचाते रहनेकी व्यवस्था करेगी और प्रौढ स्त्री अपने बीच-बीचके सफेद बालोको काले केशोके नीचे छिपानेकी दक्षता बरतेगी। वय, देश, काल और परिस्थितिके कारण अलकार बदलेगे। परतु उनकी रुचि सामान्य पुरुषोके—विशेषतः स्त्रियोंके मनसे कभी लुप्त न होगी। और जैसी रमणी, वैसी ही वाणी—यह तो त्रिकालाबाधित सिद्धान्त है।

यह सच है कि भूखा नन्हा बच्चा दूध पीते समय माँके जेवरकी ओर नही देखता, बहुत दिनके बाद मायकेसे लौटी हुई पत्नीकी ओर उत्कठित दृष्टिसे देखते समय पतिका ध्यान उसके शरीरके अलकारोकी ओर नही जाता, और बीमारीमे जब लड़की हमारी सेवा-शुश्रूषा करती है, तब हम उसके शरीरके अलकारोको नही गिनते। परतु इस प्रकारके रसोत्कट प्रसग क्या जीवनमे, और क्या साहित्यमे पद पदपर नहीं आते। अन्य अवसरोपर अलकार-विहीन स्त्री विशोभित ही नही दीखती क्या? यह सच है कि वल्कलसे भी किसी स्त्रीका सौन्दर्य आकर्षक हो जायगा। पर कब? वह मेनका जैसी अप्सराकी लड़की होगी, तभी!

इस तरह अलकार अपरिहार्य हो, फिर भी एक बात स्वीकार करनी ही होगी। चूँकि अलकार शोभादायक होते हैं इसलिये यह बात नहीं है कि चाहे जो अलकार चाहे जहाँ शोभा दे दे। कानोमें हार और गलेमे कगन पहनकर यदि कोई स्त्री ठाट-बाटसे निकले, तो सराहनाके बदले उसकी हँसी ही होगी। भाषाके विषयमे ऐसे मूर्खता पूर्ण काम हमेशा हुआ करते हैं। कुछ ही दिनके पहले 'घटानाद' नामक पुस्तकपर आलोचना करते हुए एक समाचार-पत्रने लिखा था—

> 'इस घटानादको सुनकर जितने कुभकर्ण जाग्रत होगे, उतना ही ग्रामोद्धार जल्द होगा!'

यदि यह कल्पना करे कि जागनेपर कुंभकर्ण अपने लम्बाये हुए पेटमे कितना अन्न भरा करता था, तो यह शका होती है कि क्या यहाँपर ग्रमोद्धारका मतलब गाँवको वीरान कर देना ही है? लेकिन किसी वस्तुका दुरुपयोग होता है, इसलिये उसका पूर्ण रूपसे बहिष्कार कर दिया जाय, तो इस ख्यालसे हमे अन्न और अग्निको भी अपने जीवनसे देशनिकाला दे देना होगा। यदि हम ऐसा कर दे तो रोज ही 'निर्जला ग्यारस' दिखानेवाला पञ्चाँग देखनेवालेको, अथवा बीड़ी जलानेके अपराधमे फाँसी जानेवाले मनुष्यको, देखनेके लिये इस दुनियामे बचेगा कौन?

‘ आप कुछ भी कहे, परतु अलकार मुझे अच्छे नही दीखते ’ – इस प्रकार अब भी कहनेवाले पाठकोंसे मै कहूँगा,– ‘ हमारा और आपका मत बिलकुल अक्षर-अक्षर मिलता है । इसमे शक नहीं कि वे बिलकुल अच्छे नही दीखते । अजी, दीखता है वैसा होता कहाँ है ? ’

● ● ●

३१

तात्पर्य

परसो पड़ा-पड़ा मै 'ईसपकी कहानियॉ' के पन्ने उलट रहा था। किस उम्रमे कौनसी पुस्तके पढ़नी चाहिए, इस विषयमे किसी स्मृतिमे कोई उल्लेख है या नही, यह मै नही जानता। यदि वैसा हो तो इस उम्रमे, उपनिषद् न सही, पर कम-से-कम 'गुरुचरित्र' पढनेके बदले मुझे ईसपकी कहानियॉ पढ़ते हुए देखकर चित्रगुप्तने क्रोधसे उबलकर अपनी बहीमे कुछ न कुछ जरूर लिख मारा होगा! लिखता रहे बेचारा! परतु यह जरूर सच है कि ईसपकी कहानियोको पढनेका मोह मै अभीतक सवरण नही कर सकता।

कुछ बातोकी मिठास अत्यत आकर्षक होती है। उनका सबध अविनाशी आनंदसे ही होता है! ऊँची टेकड़ीसे अथवा समुद्र तटसे सूर्यास्त देखनेका एक भी मौका मै आज भी हाथसे नही जाने देता।

मेरे मित्र कहते हैं – 'कितने पागल हो तुम! उस तप्त लोहेके गोलेमे अब क्या रह गया है देखने लायक? उसी चीज़को बार-बार देखनेसे तुम्हे अरुचि नही होती?'

मुझे लगता है वे ही पागल हैं। कहते हैं, सूर्यास्त यानी एक ही चीज! विविध रंगोंसे सजे हुए संध्याकालीन मेघोकी ओर देखनेसे क्या यह भ्रम नही होता कि

द्रौपदीकी लाज रखनेके लिये कृष्णके द्वारा दिये गये वस्त्र ही एकत्रित हो गये है? राजा-महाराजाओके यहाँ हर तरहके साल् होंगे, परंतु मेघोकी तरह क्षण-क्षणमे रग बदलनेकी शक्ति उनमे कहाँ होती है? इस वस्त्र-भण्डारके नज़दीक ही सूर्यका सुवर्ण-कलश समुद्रके पृष्ठभागपर तैरता हुआ दीखने लगता है। ऐसा लगता है जैसे आकाशमें शीघ्र ही चद्र और रजनीका विवाह होनेवाला है और उसीके लिये ये सब तैयारियाँ हो रही हैं! यदि कोई चित्रकार गुरु खोजने जा रहा हो, तो मै उसे सलाह दूँगा,–'डूबते हुए सूर्यनारायणको तुम अपना गुरु बना लो!'

सूर्यास्तकी तरह अखड आनंदके अनेक स्रोत हमारे जीवनमे सदैव बहते रहते है। बालकविकी 'फुलराणी'[१] को मैने कितनी बार पढ़ा है, इसकी गिनती ही नही हो सकती। कविता वही हो, परतु इस लतामे लगनेवाले आनदके फूल हर समय नये ही लगते हैं। जब मै समुद्रपर जाता हूँ, तब मुझे हमेशा ही यह लगता है कि पानीमे जाकर खड़ा रहूँ और लहरोका किनारेसे हो रहा नटखट खेल देखूँ। बिल्लीके छोटे बच्चेके सामने डोरी नचाकर उसे खिलानेमे भी मै निमग्न हो जाता हूँ। मुझे कभी ऐसा नही लगता कि बिल्लीके बच्चेको मैने आजतक सौ बार खिलाया होगा। अब इस उम्रमे जब कि 'युवक-परिषद्'मे जाऊँ तो मैं जानता हूँ कि मुझे बूढोकी पंक्तिमें बैठन पड़ेगा – बिल्लीके साथ खेलनेमे क्या मज़ा है? छिः! यह विचार भी मेरे मनमे नहीं आता। बिल्लीका बच्चा क्या खिल रहे जीवनका प्रतिबिंब ही नहीं है? इस समय वह खुद अपनी दुमसे खेल रहा है! क्षणार्धमे उस तरफ रखे पलंगकी मसहटीसे खेलने लगेगा। खिड़कीसे ऊँचा कूदना, दवातके कॉर्कसे फूटबॉल खेलना, मुसम्मीके छिलकेका शिकार करना इत्यादि हजार तरहके खेलोमे वह खो जाया करता है।

बिल्लीसे खेलनेवाला मनुष्य ईसपकी कहानियाँ पढता है इस घटनामे, मुझे आशा है कि काक-दृष्टि रखनेवाले आलोचकको भी कोई असंभाव्यता नहीं दिखायी देगी। ईसपके बारेमे मै हमेशा कहता हूँ – 'गुलाम बड़ा बुद्धिमान!' इसी लिये परसो मैंने सहजभावसे ईसपकी कहानियोंका एक पृष्ठ खोला और पढ़ने लगा।

इसी समय एक मित्र आ गये। बैठते-बैठते बोले, – 'पढो, जरा जोरसे पढ़ो; हम भी सुनेंगे।'

१ 'फूलरानी' – एक कविताका नाम।

लिये मेरा महान् प्रयत्न हो रहा है ! परतु सच बात दूसरी ही थी । मै यह देख रहा था कि 'गदहे आगे पढी गीता 'वाली कहावतमे 'गीता'के बदले 'ईसपकी कहानियॉ' रखकर क्या कोई कहावत तैयार की जा सकती है ? 'गदहेके आगे पढ़ी ईसपकी कहानियॉ, और वह कहता है मेरे कितने पैर ?' छि : ! कुछ सूझता नही था ! तब मैने कहा, –'तात्पर्य (सार) तो सुन लीजिये पहले ।'

ईसपसे थोडी देरके लिये सुलह करके वे तात्पर्य सुनने लगे ।

कत्लके मुकद्दमेका फैसला पढ़नेवाले न्यायाधीशकी तरह गभीर स्वरमे हरएक शब्दका स्पष्ट रूपसे उच्चारण करता हुआ मै पढ़ने लगा —

'तात्पर्य – देवके आगे कपट नहीं चल सकता ।'

मित्र बोले, –'यार, तात्पर्य जरूर बहुत सुन्दर है । यह बात अवश्य सच है कि महाबीरजीकी ताकत जिस तरह उनकी दुममें है, उस तरह ईसपकी बुद्धि तात्पर्यमें है ।'

इस तात्पर्य-पडितसे मिथ्या-विवाद करनेमे मतलब न था । लेकिन उसने तात्पर्यको जो दुमकी उपमा दी वह जरूर मुझे पसद पड़ी । जब कभी मनुष्यके दुम रही हो और उस वक्त वह जैसा दीखता होगा उसी तरह तात्पर्ययुक्त कविता अथवा कहानी मुझे हमेशा लगती है । यह सच है, कि 'नरक चौदस'[1] को 'सात्विण' नामकी एक कडुई लताका रस अथवा 'गुढी पाड़वा'[2] को नीमकी पत्तियोका सेवन करना पड़ता है । परतु कम-से-कम वह पकवानके पहले तो पेटमे जाता है ! तात्पर्यवादियोंकी सभी बात निराली है । 'जिसका अंत मीठा वह सभी मीठा' कहनेवाला मनुष्य उन्हें महामूर्ख लगता होगा । किसीके यह कह देनेके कारण कि 'जिसका अत सूखा होता है उसकी ओर ध्यान लगता है', कहावत सर्व धर्मोंको मान्य है, उन्हें कहानियोंके अन्तमे तात्पर्य देनेका मोह होता होगा क्या ? कारण कुछ भी हो, परतु तात्पर्य पढते समय मुझे ऐसा लगता है जैसे रग-मॅचपर महलका परदा उठकर एकदम श्मशान दीखने लगे !

कहानीमे किसी तत्त्वका होना अलग बात है, और उसका तात्पर्य कहना अलग बात है । इन दोनोमें आलूबोखारा और बदाम इतना फर्क है । आलूबोखारा खानेवालेको पहलेसे ही पत्थर नहीं खोजना पड़ता । ऊपरका गूदा खाकर मुँह मीठा होनेपर

१ दिवालीकी चौदस । २ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा ।

अगर इच्छा हुई तो भीतरकी गुठलीको फोड़िये, चाहे तो फेंक दीजिये। इससे कहीं कुछ नहीं बिगड़ेगा। परतु बदामकी सभी बात निराली है। (ईसपकी कहानियोकी तरह इतिहासके पन्ने पलटानेका भी शौक है मुझे।) यदि फोड़नेका कष्ट न किया तो वह और रास्तेका कंकर दोनो बराबर हैं। अच्छा, फोड़कर भी, भीतरकी गरी मीठी ही निकलेगी, यह क्या बिलकुल निश्चित होता है? बड़ी आशासे उसे मुँहमे डाले, और—और क्या! प्रेम-भग हुए नायकका सुदर चित्र यदि कोई चाहता हो, तो उसे उस मुँहका फोटो खींचनेकी झटपट व्यवस्था करनी चाहिए!

यदि यह कहे कि तात्पर्य केलेके फूलकी तरह होता है, तो कोई हर्ज नही। केलेके फूलकी सब्जी बनती है। अगर खानेवालेको केलेके फूलकी और कद्दूकी सागोमेसे किसी एकको चुननेके लिये कहा जाय तो केलेके फूलकी सागको कद्दूसे अधिक गुण प्राप्त होनेकी सभावना भी है। लेकिन घौंसमे लगे हुए केलेके फूलको चटपट तोड लेनेकी जो दक्षता दिखायी जाती है, तो क्या यो ही? यदि केलेका फूल लगा रहने दिया जाय, तो फलोका ठीक तरहसे पोषण नहीं होता। तात्पर्यके विषयमे ठीक यही होता है। उसका अस्तित्व कहानीके रसके लिये मारक हुए बिना नही रहता।

अन्य दृष्टियोसे भी तात्पर्य कहनेकी प्रणाली ग़लत मालूम होती है। तात्पर्य देनेमे क्या पर्यायसे यह नहीं सुझाया जाता कि पाठक इतने दुर्बुद्ध है कि उसे समझ नहीं सकते। ईसप गुलाम था, इसलिये पाठक यदि उसपर बेइज्जतीकी नालिश कर देते, तो इससे उसकी कोई हानि न होनेवाली थी। इसी लिये कहानीके अन्तमे तात्पर्य देनेका उसने साहस किया। अच्छा, यह धारणा, कि एक कहानीमें एक ही तात्पर्य निकलता है सर्वस्वमे ग़लत नहीं है क्या? यह तो इसी तरह कहने सरीखा होगा कि आईनेके सामने कुरूप मनुष्य खड़ा है, इसलिये आईना ही कुरूप है। वॉल्टर रेलेने स्वय लिखा हुआ दुनियाका इतिहास व्यर्थ नहीं जला डाला!

परसोका ही मेरा अनुभव लीजिये। दयानन्द सरस्वतीकी जीवनीपर एक कहानी कहकर मैने कुछ लड़कोसे उसका तात्पर्य पूछा। कहानी एक दृष्टिसे बड़े महत्त्वकी थी। महाशिवरात्रिके दिन दयानदने शकरजीकी पिंडीपर एक चूहेको फुदकते हुए देखा। सच बात यह है कि इस दृश्यको देखकर दयानंदका मूर्तिपूजासे विश्वास उड़ गया। गनीमत है कि चूहोंमे कोई वकील नहीं है! वरना उस चूहेने यह अर्जी

पेश कर दी होती कि 'आर्य समाज'को स्थापित करनेकी स्फूर्ति देनेका श्रेय मुझे ही प्राप्त होना चाहिए!

परतु इस दृश्यसे दयानंदके द्वारा निकाले गये तात्पर्य और मेरे बालगोपालों द्वारा निकाले गये तात्पर्योका अन्तर जमीन-आसमान – नही, आसमानके भी उसपार जो हो उसके बराबर था! लडकोके तात्पर्य कम-से-कम एक दूसरेसे मिलते-जुलते ही होते, पर वह भी न था!

प्रति दिन नियम पूर्वक पुराण-श्रवणके लिये जानेवाली भावुक दादीके नातीने निष्कर्ष निकाला — गणेशजीने चूहेको कोडे लगाये होंगे, इसलिये वह चूहा शिकायत करनेके लिये महादेवजीके पास गया। महादेवजीने गणेशजीको काफी सजा दी होगी। पिताजी जब नाराज होते हैं, तब या तो मेरे कान पकड़ते हैं या मुँहपर एक चॉटा जमा देते हैं। परतु महादेवजीने गणेशजीकी सूँड ही पकड़कर मरोड़ दी होगी! तात्पर्य – गूँगे प्राणियोपर दया करनी चाहिए।

दूसरे लड़केने – सुनते हैं उसके मामा कहीं इजीनियर हैं – कहा—मंदिर बनाते समय कहीं भूल हो गयी होगी। वरना पत्थरके बने मदिरमे चूहा आया कहॉसे? तात्पर्य – कोई भी कार्य हो, उसे व्यवस्थित ढगसे करना चाहिए।

तीसरे लड़केने तर्क लडाया — वह चूहा बहुत भूखा होगा। इसलिये वह भगवानके पास आया। तात्पर्य – सकटके समय भगवानकी प्रार्थना करनी चाहिए!

परतु एक भी लड़केके मनमे दयानदकी तरह मूर्ति-पूजाके विषयमे तिरस्कार पैदा न हुआ! और हो भी किस तरह? 'देव और नास्तिक'वाली कहानी ही लीजिये। मेरे मित्रको इस कहानीका तात्पर्य बहुत अच्छा लगा। परतु मुझे वह बिलकुल नहीं जँचा। नास्तिकके कपटका जिस तरह देवको पता चल गया, उसी तरह उत्तर देते समय देवने जो कपट किया उसका पता क्या नास्तिकको न चला होगा? फिर इस कहानीका तात्पर्य यदि यह दे कि 'देव कपटी है' तो क्या हर्ज है?

हर्ज यही है कि वह अपनी रूढ़ कल्पनासे असगत है। तात्पर्यवादियोंका यह ख्याल है कि कहानीमे चाहे जो लिख दो, पर उसका तात्पर्य 'देव दयालु है', 'सत्यकी ही अन्तमे जीत होती है', 'ससार असार है', 'प्रेम अमर है' इत्यादि जैसे स्थायी सॉचेमे ढले हुए तत्त्वोमे ही होना चाहिए। सच पूछा जाय, तो तात्पर्य दिये हुए उदाहरणका क्रमप्राप्त उत्तर होना चाहिए। परतु उत्तर देख-

कर रीतिमें गड़बड़ी करनेवाले विद्यार्थीकी तरह हमेशा तात्पर्य निकाले जाते हैं। दुख, रोग और मृत्यु देखकर बुद्धकी सन्यास-वृत्ति जाग्रत हुई। उसके स्थानपर यदि कोई चार्वाक होता तो अपने मनको यह उपदेश करता हुआ ही, कि 'कलका कौन देख आया है? आज जितना सुख प्राप्त किया जा सकता है, उतना ले लूँ', राजप्रासादको लौट आता!

आनंदको यदि सूर्य मान लें, तो रसिकताकी तुलना चन्द्रमासे की जा सकती है। परतु तात्पर्यकी पृथ्वी इन दोनोके बीचमे आ गयी, तो चन्द्रमाको खग्रास ग्रहण ही लग गया समझिये! कभी कभी मुझे कविता लिखनेका शौक हो जाता है। (खुशामद करके उन्हे छपानेका शौक न होनेके कारण मुझे आशा है कि शराब, जूआ और घुडदौड़के शौकोमे इसकी गिनती न की जायगी!!)

कविताके शौकमे जब मेरे दो-तीन घटे व्यर्थ खर्च हो जाते है, तो यह देखकर मेरे तात्पर्यवादी मित्र बड़े प्रेमसे मुझसे कहते हैं, – 'इतनी कविताएँ घसीटकर तुम्हे क्या मिल गया? यदि इतनी देरतक सिर्फ घूमनेका ही व्यायाम करते, तो खूनके चार सफेद जन्तु ही कम-से-कम लाल हो जाते, यदि बैठे-बैठे सिर्फ 'राम-राम' ही रटते रहते, तो चित्रगुप्त तुम्हारे खातेमे पाव तोला पुण्य जमा कर देता, परतु कविता लिखकर तुम्हें क्या मिल जाता है? खैर, यदि कविता ही लिखना है, तो कम-से-कम वह किसी राजा-महाराजापर ही लिखो। मौकेपर चार छन्दोंकी चौकडी[1] मोतियोंके भाव बिक जायगी!'

तात्पर्य निकालनेकी वृत्तिपर मुझे जो क्रोध आता है वह इस कारणसे ही। जीवनका तात्पर्य क्या? पैसा! संसारका तात्पर्य क्या? परमार्थ! रेलगाडीमे बैठकर जिस समय दौड़ते हुए वृक्षोंकी होड़ देखनेमे निमग्न हो जाना चाहिये, उस समय इस कल्पनासे कि रेल-दुर्घटना हो जायगी, अपना वसीयतनामा लिखकर रखनेवाले प्राणीसे क्या कहा जाये? बहुत-ही-बहुत यह कह सकते हैं कि 'भैया, थाना[2] की स्टेशनपर उतर जाना।' मनुष्य तैरने जाते हैं तो क्या इसलिये कि व्यायाम हो? तैरनेसे बहुत अच्छा व्यायाम होता होगा। लेकिन मनुष्य तैरता है, तैरनेके आनंदके लिये। समुद्रकी लहरोंपर तैरते समय, अथवा नदीके प्रवाहसे बाहर निकलते हुए क्या उसके मनमे यह विचार उठना सभव भी है कि उसके फेफड़ोंमे प्राणवायु कितनी अधिक जा रही है? मुझे लगता है कि

१ चारका समूह। २ यहाँ पागलखाना है।

कला और जीवनके सागरमे भी इसी तरह विहार करनेमे सच्चा आनद है।

बहुतसे लोगोको मेरा यह मत अच्छा नहीं लगता। मेरे एक सम्पादकजी मित्र हैं। वे मासिक-पत्रिकाओपर सम्मति देते हुए निबधोके नाम लिखकर, 'ये बड़े उद्बोधक, विचारप्रवर्तक और समाजोद्धारक है' – लिख देते हैं। लेकिन कहानियों और विनोदी लेखोके बारेमे उनकी सम्मति होती है– 'इनके कारण घडी भर मनोरजन होगा, बस।'

परतु जब खुफिया पुलिस बनकर मैंने जॉच की तब मुझे पता चला कि सम्पादक महोदय निबध कभी पढते ही नहीं हैं, सिर्फ कहानियॉ और विनोदी लेख ही पढते हैं। पढ़नेके लिये एक घडीकी अपेक्षा अधिक समय शायद उन्हे मिलता न हो!

जीवनकी ओर देखनेका हिन्दुओका दृष्टिकोन भी दुर्भाग्यसे इसी प्रकारका है। जिधर देखिये उधर धर्मके पंडिताई टट्टू डटे हुए हैं। कहते हैं कि किसी धर्म-ग्रंथमे यह भी लिखा है कि शौच जाते समय किस दिशाको मुँह करके बैठनेसे पुण्य प्राप्त होता है! मुझे लगता है यदि अच्छी लगनके साथ खोज की जाय तो कही न कही यह जानकारी भी मिल जायगी कि रातके किस प्रहरमे किस स्वरमे खर्राटे भरनेसे स्वर्गमे अमृतके प्याले अधिक मिलते हैं! लडका जहॉ मराठीकी तीसरी कक्षामे आया कि पिलाया उसे 'मनाचे श्लोक'[1] का काढा!–'मना सज्जना भक्ति पथेंचि जावे'[2] फिर वह शालासे भागकर बगीचेके अमृत चुराने, जाता हो, तो भी कोई हर्ज नहीं। थोड़ी-सी सस्कृत आने लगी कि हमने उसे पढा ही तो दिया—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन!'

चॉदनी रातमे मस्तीसे घूमते हुए धूपका स्मरण करनेमे क्या मतलब है? जिन्हें यह लगता है कि मतलब है, तो मै उनसे इतना ही कहूँगा– 'हम साधारण लोग कथाकी तरह होते हैं। परतु आप पडित लोग मूर्तिमान 'तात्पर्य' हैं!'

यह सुनकर वे खुश होगे।

परंतु मै जरूर धीरेसे कहूँगा जिससे वे सुन सके– 'लेकिन तात्पर्य कहानीपर अवलबित होता है।'

१ स्वामी रामदासके द्वारा मनको सबोधित कर मराठीमें लिखे गये श्लोक।

२ 'हे सज्जन मन, भक्तिके मार्ग पर चलो।'

●●●

३२
निर्णय दीजिये ! (How's that ?)

क्रिकेटके मैचमे कोई भी टीम अपने ग्यारहवें खिलाडीकी हैसियतसे मुझे लेनेके लिये तैयार न होती थी । यह कहनेकी जरूरत ही नहीं है कि इसका कारण यह था कि मैदानपर मैं ग्यारहवें खिलाड़ीकी हैसियतसे जाता, फिर भी पहली ही गेंद मेरे बारह बजा देगी ! मैं भी इस तत्त्वज्ञानसे अपने मनको संतोष दे दिया करता, कि लड़ाईमें होनेवाली ज़ख्मोंकी अपेक्षा उसके वर्णनसे रोंगटे खड़े हो जानेमे ही सच्चा सुख होता है । घड़ीके ' पेंडूलम 'की तरह तीन-तीन स्टॅम्प्सके बीच ' लॅंगड़ी तोड़ ' खेलकी तरह दौड़ लगानेकी अपेक्षा बीच-बीचमे तालियाँ बजानेका काम ही अधिक प्यारा होता है । साथ ही ' जिसका खाना उसका बजाना ' कहावतके अनुसार ' जिसकी पियो चाय, उसकी करो चाह ' भी पैविलियनमे बैठे हुए चतुरोंका कर्तव्य है । कहते हैं कि बड़े बड़े योद्धाओंकी तलवारका पानी उनकी रमणियोंकी आँखोंसे उधार प्राप्त किया जाता है । क्रिकेटके ' रन ' भी तालियोंसे ही पैदा होते हैं । एक हाथसे ताली नहीं बजती अथवा ' रन ' बनाने लायक टोला भी लगाते नहीं बनता, इसपरसे ही दोनोका रिश्ता साबित हो जाता है ।

क्रिकेटका शिवाजी या नेपोलियन होना तो दूर ही रहा, परंतु फौजकी खुगीर भरती करनेवाला सिपाही भी मुझसे होते न बन सका । परतु मेरा क्रिकेटका

शौक नहीं छूटता था। क्रिकेटका मैच हुआ, कि घरमे माँ बीमार हो, छोटे भाईको पढाना हो, अथवा और भी कोई काम हो, 'न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः' ध्येयके अनुसार मेरे पैर मैचके मैदानका रास्ता कभी न छोडा करते। आगे चलकर तो, घरमे भी मै क्रिकेटकी परिभाषाका ही उपयोग करने लगा। एक शादीमे जेवनारके वक्त परसनेवालेने मोतीचूरका एक लड्डू मुझे इस तरह परोसा कि वह मेरी पत्तलके बाहर जा गिरा। तुरत ही मैं एकदम चिल्ला उठा– 'वाइड बॉल!' यह दिखानेके लिये कि मालिक घरमे हैं या नही 'इन' और 'आउट' शब्दोंकी तख्तियाँ लगा देते हैं। लेकिन 'इन' शब्दका उच्चाटन करके मैने उसके बदले 'नॉट आउट' शब्दकी स्थापना कर दी। मेरे छोटे भाईने 'दि डॉग वॉज बोल्ड' शब्दका मतलब पूछा, तो यह सोचकर कि किसी वक्त कुत्ते भी क्रिकेट खेल करते थे, मुझे बड़ी खुशी हुई। मैंने 'बोल्ड'का अर्थ बताया–गेदसे स्टम्प्सकी लकडियाँ गिरकर, आउट होना। दूसरे दिन उसके हाथपर मास्टरसाहबकी लकडी और नामपर गेदके आकारकी सख्या पडी, यह बात दूसरी है! 'कैच इट' (पकडो इसे) शब्दकी तो मुझे इतनी आदत हो गयी है, कि नीदमे भी मै लगातार वही चिल्लाया करता। इसके कारण अग्रेजी समझनेवाले एक भी चोरको अभीतक हमारे घरमे चोरी करनेकी हिम्मत नही पड़ी!

क्रिकेटकी मेरी यह भक्ति एक दिन अचानक सफल हो गयी। नाटक देखनेवाला दर्शक नाटककार न हो सके, पर आलोचक हो सकता है। उसी तरह खिलाडियोंमे शामिल होना मेरे लिये सभव न था, फिर भी न्यायाधीश (Umpire) की माला मेरे गलेमे पड़ी। क्रिकेटके खिलाडी यदि वीर हैं, तो अम्पायर परमेश्वर होता है, क्यो कि उसने जो निर्णय दे दिया, उस ब्रह्म-लिखितको कोई भी नही मिटा सकता। शायद इसलिये हो कि मै सबसे पुराना दर्शक था, अथवा प्रयत्न करनेसे परमेश्वर भी मिल सकता है इस वजहसे हो, मैं उस दिन मैदानपर न्यायाधीशकी हैसियतसे जाकर खड़ा हुआ। उस समय वे सब खिलाड़ी मुझे अभियुक्तोंकी तरह लगने लगे। इस कल्पनासे कि मेरे एक शब्दसे ही इनमेके वीरशिरोमणि मर सकेगे, मुझे आकाश छोटा हो गया। खेल शुरू हुआ और पहली ही गेंदको टोला मारकर खिलाडी दौडने लगा। खिलाड़ीका 'क्रीज'के पास पहुँचना और गेदका स्टम्प्सको लगना दोनो काम एक साथ ही हुए।

'How's that umpire?'[१] –बोलिंग करनेवालेकी तरफसे गर्जना हुई।

१ 'न्यायाधीश महाराज, निर्णय दीजिये!'

मैंने कह दिया – 'आउट !'

'आउट ? मेरा कदम तो स्टम्प्सको गेंद लगनेसे पहले ही 'क्रीज 'में पहुँच चुका था ।' – मेरे एक शब्दसे मार दिया गया खिलाड़ी ऐसे स्वरमें चीखा जैसे उसकी हत्या हो रही हो ।

मुझे उसपर दया आयी और मैंने कहा, – 'नॉट आउट हुआ-सा दीखता है।'

'जैसा दीखता है वैसा नही होता।' – पहला दल चिल्लाया ।

दूसरा दल भी खम ठोकने लगा !

क्या करूँ, यही मै नहीं समझ पा रहा था । एक बार लगता खिलाड़ीका पैर सीमाके भीतर पड़ा होगा, दूसरी बार लगता गेंद ही पहले स्टम्प्सको लगी होगी। आउट देता हूँ तो एक टीमका नाहक नुकसान होता है । नॉट आउट कहता हूँ तो दूसरेकी अकारण हानि होती है । न्याय-अन्यायकी कैंचीमें फँसकर मेरे मनकी धज्जियाँ होने लगीं । यह कहकर कि धूपके कारण मैं ठीक तरहसे देख नहीं सका, मैंने अपने न्यायाधीशके पदसे इस्तीफा दे दिया और वापस पैविलियनमे आ गया।

पहली गेंदने खिलाड़ीके बदले न्यायाधीशको ही खत्म कर दिया !

खेलके मामूली निर्णयके समय मन इस प्रकार चकरा जाता है तो फाँसीकी सजा देनेवाले न्यायाधीशके अन्तःकरणमे कितनी हलचल होती होगी ? खेलके बित्ता-भर पानीमें जिस निर्णयात्मिका-बुद्धिकी आँखे फिर जाती हैं, उसकी कठोर व्यवहारके तूफानी सागरमे क्या दशा होती होगी ?

सर वॉल्टर रैलेने स्वय लिखा हुआ दुनियाका इतिहास इसी कारणसे फाड़ डाला। स्वयं अपने आँखोंसे देखे हुए एक झगड़ेके बारेमें जब उसका और दूसरेका एकमत न होता था, तब उसे लगा कि कालके गर्भकी बातोंकी चर्चा करना जन्माधके द्वारा किये गये सुंदर स्त्रीके वर्णनकी तरह है और उस विरक्तिके आवेशमे उसने अपनी पाडुलिपीको नष्ट कर डाला।

परतु दुनियामे ऐसे सर वॉल्टर रैले अँगुलियोंपर गिने जाने इतने ही मिलते हैं। न्याय और अन्याय दोनों एक-से ही दीखनेवाले जुड़वाँ भाई होनेके कारण, यह बात नहीं है कि उनके स्वरूपकी समानतासे हम साधारण लोग एकदम डर जाते हैं। चोरको छोड़कर सन्यासीको फाँसी देनेवाले न्यायाधीशकी तरह हम सब बातोंका चटपट निर्णय दे दिया करते हैं । शालामे यदि कोई लड़का अपना सबक याद करके न आया हो, तो हम फौरन उसे 'आवारा 'की उपाधि देनेके लिये

एक पैरपर तैयार रहते है ! यह कल्पना भी हमारे मनको नहीं छू जाती कि वह नन्हा जीव किसी चिन्तासे जल रहा होगा अथवा घरमे कामके मारे उसे थूक गुटकनेकी भी फुरसत न मिलनी होगी। किसीने चोरी की, तो पवित्रताकी डींग हॉकनेवाला समाज उसकी छीः थूः करने लगता है, परतु यह जरूर कोई नही देखता कि उसने वह चोरी अपनी बेटीकी प्राण-रक्षाके लिये की है या अमीर बननेके लालचसे की है ! एक चॉवल टटोलकर भातकी जॉच करनेका भी कोई कष्ट नही उठाता। हॉडी कितनी जली इसी परसे भातकी बहुत बार जॉच होती है। विधवा जहॉ पथ-भ्रष्ट हुई कि बस करो उसकी फजीहत ! उस पद-भ्रष्टताके पार्श्वमें छिपे हुए नरपिशाच फिर दूसरी विधवाको पाप-गगामे डुबानेके लिये आजाद बने ही रहते हैं।

'How is that?' प्रश्न पद पदपर दुनिया हमसे पूछती रहती है और हम बेधडक निर्णय देते रहते है। २०० पृष्ठोंकी नयी पुस्तकके तीन-चार मिनट तक पन्ने पलटकर, 'कहो कैसी है?' प्रश्नका 'कुछ नही – चोचोका मुरब्बा है!' कहकर उत्तर देनेमे हम ज़रा भी नही झिझकते। किसी मनुष्यके विषयकी अवफाहें कानोंकान सुनकर ही उसे एकदम नरकमे ढकेल देनेके लिये भी हम नही डरते। हरएक बातपर देखते ही अपनी फबतियॉ कसना या समालोचना करना तो जैसे हम अपनी घुट्टीके साथ ही पीकर आये हैं। परंतु क्या, किसीको यह कल्पना भी है कि इस तरहके तड़ाकफड़ाक न्यायसे कितने अन्याय हो जाते होंगे ! न्याय करनेवालेका तो मनोरजन होता है, किन्तु जिसपर न्याय होता है उसके प्राण जाते हैं। बाहरसे पथरीले दीखनेवाले पर्वतके उदरमे रत्न प्राप्त होते है। ऊपरसे काला-कलूटा दीखनेवाला मेघ जगको जीवित रखनेवाले जलसे परिपूर्ण होता है। उसी तरह बाह्यतः कठोर दीखनेवाले मनुष्य अन्तरगमे कोमल होंगे और दुनिया जिसे पाप मानती है वह भी वैसा न होगा। जिसे इसका भी पता नहीं रहता कि उसके पीछे एक हाथके अन्तरपर क्या हो रहा है, वह दुर्बल मनवाला दूसरोंके अथाह हृदयसागरके रहस्योको कैसे जान सकेगा! और उसे सर्वसाक्षी होनेका दावा भी क्यो करना चाहिए? 'How is that?' (निर्णय दीजिए!) प्रश्नका यदि एकदम उत्तर देना हो तो, 'God knows' (सच्चा न्यायाधीश ईश्वर ही है) यही उत्तर उचित होगा।

● ● ●

३३

वायुलहरी

पंचमहाभूतोके परिवारमें, आकाश और पृथ्वी दम्पतिको तेज, जल, और वायु नामके तीन बच्चे हुए। परतु इन तीनो भाईबंदोके स्वभाव कितने भिन्न ! तेजको अपने पितासे ही बड़ी ममता। आकाशके हाथसे पृथ्वीकी गोदपर जब इस प्रसन्न-वदन बालककी स्थापना होती है, तब क्षण-भर मॉका चेहरा आनन्दसे खूब खिल उठता है ! परतु थोडी देर दोनोंका सहवास होने दो। मॉके रूप और वेश-भूषाके दोषोंकी ओर ही अनजाने, बालक अँगुलियॉ दिखाने लगता है ! मातृपद प्राप्त हो गया, इसलिये स्त्रीहृदय कुछ बधिर नहीं हो जाता। तेजकी इस शरारतके कारण पृथ्वी, क्रोधसे जलने लगती है। ऐसे समय जलदेवी और पवनकुमारकी प्यारी लीलाओसे कितना मनोरजन होता है उसका !

जलदेवी आकाशकी अपेक्षा पृथ्वीसे ही अधिक हिली हुई है, इसमें संदेह नहीं। परंतु उसके पैर कभी एक जगह स्थिर नहीं रहेंगे। उसकी रात-दिन निरंतर दौड़धूप होती रहती है ! उसकी नटखट लीलाको देखकर, पृथ्वीके शरीरपर आनंदके रोमाच खड़े हो जाते हैं। उसकी मधुर गुनगुन सुनकर और प्यारे हाव-भावोंको देखकर, पृथ्वी माता मनमें पागल हो उठती है। उसे ऐसा हो जाता है कि अपनी बिटियाको कहॉ रखूँ ! प्रिय वस्तुको हृदयमें सुरक्षित रखनेकी बात

मनुष्य अलकारिक दृष्टिसे कह सकता है। परतु पृथ्वी उन उद्‌गारोको व्यवहारमे उतारती है। लेकिन बिटियासे इतना स्नेह होते हुए भी पृथ्वी उसे बार बार आकाशके हवाले करती रहती है। हमारे हर घरमे भी क्या यह बात नहीं होती? बच्चा कितना भी लाडला हो, फिर भी गृहिणी उसके साथ हमेशा ही थोडे खेलती रह सकती है–! अपना सारा समय वह सिर्फ़ उसे ही नहीं दे सकती! इसलिये इस अन्दाजसे कि 'उन्हें' सुन पडे, 'सुनिये तो, जरा बच्चेको तो ये लीजिये' उद्‌गार प्रत्येक घरमे निकलते रहते हैं। पृथ्वी भी आखिर नयी बात क्या करती है? चन्दाकी नाव बनाकर, तारोंके फूल तोडकर और सुबह शाम रगपंचमीका खेल खेलकर, जलदेवीको खिलानेमे आकाशका समय कब बीत जाता है, यह कहा नहीं जा सकता। लेकिन बीचहीमे उसे मॉकी याद हो आती है। पिताके कॅधेसे वह धीरेसे नीचे कूद पड़ती है और दुडुदुडु दौड़ती हुई आकर मॉकी गोदमे घुस जाती है।

परतु पवन महाराजके सभी ढग निराले हैं। हजरत एक क्षण पिताजीकी कमरसे लिपट जायेंगे, तो दूसरे ही क्षण माताजीके गलेमे बाहे डाल देगे। कभी चोरी चोरी आकर मॉको गुदगुदा देगे, तो कभी चिल्लाते चिल्लाते पिताजीको डरानेके लिये दौड़ पड़ेगे! किसकी आवाजकी नकल पवन नहीं कर सकता? है कोई ऐसा? अभी, 'रानारानात गेलि बाई–'[1] गीत सीटीमे बजायेगा, तो तुरंत ही सर्कसके सिहकी गर्जनाकी याद दिला देगा। वृक्षोंके पत्तोका झुनझुना बनाकर बजानेमे महाशयजी जितने कुशल हैं, उतने ही विमानका पतंग बनाकर उसे ऊँचा उड़ानेमे भी आप सिद्धहस्त हैं! जहाज़ोके मस्तूलोमे घुसकर जब आप बातें करना शुरू कर देते हैं, तब पता ही नहीं चलता कि कितने मील पीछे छूट गये हैं। स्वभाव जितना खिलाड़ी उतना ही चतुर! अनजाने ऑखका काजल निकाल लेनेवाले मनुष्य होते हैं न? ठीक उसी तरह। क्या, कोई यह कह सकता है कि बाग़की कलियोंसे कनबतियॉ करते करते उनकी सुगंधको धीरेसे यह कैसे प्राप्त कर लेता है? इतना होनेपर भी उसमें स्वार्थ रत्ती-भर भी देखनेको नहीं मिलता। ज्यों ही सुगंधि प्राप्त की, कि तुरत ही उसे लुटाना भी शुरू कर देता है। ऐसे गुणी बालकको दीठ न लग जाये इसलिये सृष्टिदेवीने एक दिठौना जरूर

१ 'एक जगलसे दूसरे जगलमें चली गयी—'

लगा रखा है उसके गालपर! मूल स्वभाव इतना कोमल, कि कलियोको भी न दुखाये। परतु जहॉ गुस्सा आया, तो बडे बड़े पेडोको भी जड़से उखाड देनेमे पीछे नही हटते हजरत! जलपृष्ठपर कोमलतासे ॲगुलियॉ फेरनेमे कितना कुशल! श्रोताओको ऐसा भ्रम होने लगे, जैसे कोई संगीतज्ञ जलतरग बजा रहा है! लेकिन किसी कारणसे गुस्सा होकर, इस जलसेको भग करनेकी सनक उसपर सवार हुई, कि फिर कुछ न पूछियेगा! वाद्योके टुकडे भी हाथ न लगेगे!

सच पूछा जाय, तो इस झक्कीपनके कारण ही पवनको मै अधिक चाहता हूॅ। तेजका सब काम बिलकुल यत्रकी तरह – जलदेवी थोडी-बहुत झक्की जरूर है! परतु विशाल समुद्रमे उसकी सनककी मर्यादा होती ही है। वायुलहरियोकी यह बात नही है। वे कभी कनबतियॉ करेंगी, तो कभी कनपटीपर चॉटा जड़ देगी। पवनकुमार जलदेवीके खिलौनेकी गुलाबदानी लाकर, उसका सुगंधित शीतल फुहार बदनपर उडायेगा, तो दूसरी घडी तेजके हाथकी गरम पानीकी सुराही लाकर, बदनपर उडेलकर उसे जला भी देगा। आप द्वारको मजबूतीसे बन्द करके लिखनेको बैठे अथवा चार दिनोतक एकान्तमें न मिली हुई पत्नीके गालोकी लाली क्यों फीकी पड गयी है इसका पॉच मिनटमे अन्वेषण करना शुरू कर दे, आपके बद द्वारके किवाड़ बजने लगते हैं। हैरान होकर, द्वार खोलने जाइये, तो क्या? द्वार खटखटाकर पवन महाशय कभीके चपत हो गये होते हैं! गरमीमे कुछ ठड़े ठडेकी इच्छा होती है, उस समय उष्णता लेकर आनेवाला और ठड़ेमे गरमाहटके लिये शरीर उत्सुक होता है उस समय ठड़ लानेवाला पवन विनोदी है, इसमे सदेह ही नही। परतु झक्कीपनके गुणके कारण विनोदकी तरह काव्यकी स्फूर्ति भी उसे हो सकती है। वसत ऋतुके रम्य सायकालको कोयलके सगीतको मधुर ताल देनेवाला इसके सिवा दूसरा कौन है? मेघोकी पालकीमे बैठकर ठाटसे आनेवाली और अपने ऊपर बिजलीके चॅवरोको डुलवाती हुई वर्षादेवी जिस समय पृथ्वीपर उतरने लगती है, उस समय उसके आगमनकी डोडी क्या हवा ही नहीं पीटती? कोई छोटा बालक पलनेमे पड़े हुए अपने छोटे भाईको दुलारसे सहलाये, उस तरह खेतोके हॅस रहे भुट्टोको हवा जब प्रेमसे मसकने लगती है, तो वह दृश्य कितना हृदयंगम दीखता है! और जनवरीके महीनेमे, झाडोके पके हुए पत्तोंपर जब उसकी वक्रदृष्टि घूमती है, तब तो ऐसा आभास होता है, जैसे ल्यूथर अथवा आगरकर सरीखा तेजस्वी समाज सुधारक ही अवतीर्ण हो गया

है । 'Ode to the West Wind' नैऋतिकी ओरकी हवा, वातचक्र इत्यादि कविताओंमे विविध वायुलहरियोंका जो गुणगान किया है, कौन कहेगा कि वह काल्पनिक है ?

वायुका झक्कीपन उसकी प्रतिभाके कारण ही शोभित हो जाता है। वह धनिकोकी झक नही, बल्कि कविकी झक है। मुझे लगता है कि ऐसी स्फूर्तिदायिनी झक मानवी जीवनका महत्त्वपूर्ण भाग है। बहुतसे लोग ऐसे रावसाहब और रावबहादुरोको जानते होगे, जिनका बरसोंसे शामको पॉचसे छः तकका घूमना, एक दिन भी नहीं चूका। ठड़के दिनोंमें शामको सात बजे अँधेरा हो जाता है, इसलिये वे नौकरके साथ लालटेन लेकर घूमने जायेंगे। मै भी शामको घूमने जाता हूँ। परतु वर्षा ऋतुके अन्तमें संध्यादेवी जब अपनी चित्रकलाकी प्रदर्शनी खोलती है तब, और गरमीमे शुक्ल पक्षकी चॉदनी मूक सगीतसे वातावरणको मुग्ध कर देती है, तब कलाईपर बॅधी घड़ीकी ओर देखनेका भी होश नही रहता मुझे! ऐसा लगता है कि यदि घड़ीको भावनाएँ होतीं, तो ऐसे काव्यमय प्रसगपर उसके कॉटे भी चलनेसे रुक जाते। स्वास्थ्य विज्ञानकी प्राथमिक पुस्तक पढ़कर (बल्कि न पढ़कर भी) यह मालूम हो सकता है कि जाग्रण स्वास्थ्यके लिये अच्छा नहीं है। परतु कोजागरी (शरद्) पूर्णिमा, हीराबाईका गाना, घनिष्ठ मित्रोंकी गप्पोंकी बैठक अथवा किसी नयी कहानीकी कथावस्तु आदिके मोहको दूर हटाकर, ठीक दस बजे खर्राटे लेने लगनेसे यदि कोई कहे, कि हम जगकी प्रगति कर सकते हैं, तो उसपर मैं तिलमात्र भी विश्वास न करूँगा! नियमित समयपर निश्चित मार्गसे घूमने जानेवाले मनुष्य जब मैं देखता हूँ, तो कठिन कारावासवाले कैदियोकी मुझे याद हो आती है। मनुष्य ब्रह्माजीके द्वारा नियमितताके लिये जन्मभरकी गैरंटी दी हुई घड़ी है, या कि दुनियाके कारागारका काले पानीकी सजा पाया हुआ कैदी है ? उसे कम-से-कम थोड़ी भी स्वतत्रता नहीं चाहिए क्या ? मुझे लगता है कि यह स्वतंत्रता स्फूर्तिजन्य झक्कीपनसे ही अधिक व्यक्ति होती है। एकादशीके दिन बहुतसे भक्त लोग उपवास करते होंगे। परतु झक आये उस दिन उपवास करनेमे क्या मजा है, वह मुझ जैसा ही जानता है। आजकल नगे सिर घूमनेकी प्रथा तरुणोंमे बहुत रूढ हो रही है। लेकिन सिरपर टोपी लगाकर घरसे बाहर निकलना और फिर टोपी हाथमें लेकर अपनी इच्छाके अनुसार सिरका बोझ हलका करना ही कम-से-कम मुझे

तो अधिक अच्छा लगता है। परसो हमारे यहॉ मुझसे मिलने, एक मेहमान पधारे। उन्होने मुझे पहले कभी न देखा था। यह देखकर कि दिन भर मै अपनी पत्नीसे एक शब्द भी नहीं बोला उन्हें कुछ ऐसा तअज्जुब हुआ कि वापस अपने घर जानेपर उन्होने मेरे एक मित्रको मुझपर बड़ा तरस खाकर लिखा —

'भाऊरावका मन कुछ ठिकानेपर नही दीख रहा है! भोजन करते समय भी वह भला आदमी अपनी पत्नीसे न बोला! बडोदा छः महीने रहकर तलाक देनेका इरादा उसके मनमे न आये तो हमे अपना भाग्य समझना चाहिए।'

गरीब बेचारा चौबीस घटेका मेहमान! वह क्या जाने कि उसके आनेसे तीन दिन पहले मैने बाते कर-करके पत्नीके कान पका दिये थे! शायद उसकी यह धारणा होगी कि रेल्वेकी गाड़ियोके टाइम टेबुलकी तरह अथवा शालाके समय-चक्र-विभागके घटोंकी तरह प्रेमकी बाते भी ठीक समयपर ही निभना चाहिए। गनीमत थी कि हम पति-पत्नीके प्यारके झूठे झगड़े उसके दृष्टि-पथमे न आये। वरना, वह मेरे ससुरको एकदम एक जरूरी तार ही ठोक मारता! बुँदिया लड्डुओंकी मिठास जीभको अपनी भुजाओंमे कसकर न पकड़ ले, इसलिये यदि पंगतमे छाछ परोसनेके लिये लाया जाये, तो इस किस्मके लोग लड्डू समाप्त होनेका ही ढिंढोरा पीटने लगेगे! ऐसे लोगोको कुछ उपदेश देनेके बदले क्या यह कह देना ही अच्छा नहीं होगा, कि 'मिस्टर, जरा हवा खाओ।' नवीनताके बिना जीवनमे माधुर्य नहीं और पुरानेको नष्ट न करके उसे नवीन स्वरूप प्रदान करनेकी कीमिया जितनी वायुलहरीको सधी है उतनी और किसीको भी नही सध सकती। 'The old order changeth yielding place to new' वाली उक्ति यदि क्षण-क्षणमे कहीं सच होती है, तो वायुमडलमे ही!

इसलिये हवाकी निंदा करनेवाली कहावतें अथवा सम्प्रदाय जब मेरे कानोमें पडते हैं, तब मुझे हॅसी आये बिना नहीं रहती। जरा सुनिये कहावत क्या कहती है – 'जैसी चले बयार पीठ पुनी तैसी दीजे'। यदि कोई मनुष्य इस उपदेशका अक्षर-अक्षर पालन करनेका निश्चय कर ले, तो उसे देखकर, लोगोंको यह लगे बिना न रहेगा, कि वह नशेमे लड़खड़ा रहा है। बरातमे जानेके लिये अत्यन्त उतावले हो रहे तरुणोंकी यही इच्छा होती है कि बरात 'हवा' न हो जाये। उन्हें इसकी कल्पना ही नही होती कि वायुलहरियॉ प्रणयी दम्पतियोंके मिलनके लिये कितनी छटपटाती रहती हैं! लेकिन यदि पवनने विरोध किया होता, तो

क्या, मेघदूत अलका पहुँचकर यक्षका काव्यमय संदेश उसकी वल्लभाको भेज सकता था? 'नयी हवा' शब्दोंका प्रयोग तो बहुतसे लोग गालियोकी तरह ही काममें लाते हैं! बेचारोंके यह ध्यानमें ही नहीं आता, कि दुनियामें पुरानी हवा ही नहीं होती। प्रत्येक क्षणको वातावरणमे नयी हवा उत्पन्न होती रहती है। और उसकी यह नवीनता रमणीयताका मूर्त्तिमान अवतार ही है! 'क्षणे क्षणे यन्नवता-मुपैति तदेव रूप रमणीयतायाः' वचन जितना वायुलहरियोके बारेमें सार्थ होता है उतना और किसीके भी बारेमे नही हो सकता।

●●●

३४

पुराने लिफाफे

एक बार मैने बहुतसे लिफाफे खरीदे । वे दीखनेको अच्छे और थोडे सस्ते थे । यह बात उस खरीदकी जड़मे थी ही! यह मेरा दुर्भाग्य था कि जिसकी दूकानसे उन्हें मैने खरीदा था उसके सिवा, मेरी दूरदर्शिताकी सराहना करनेवाला दूसरा कोई मनुष्य वहाँ हाजिर न था! यदि किसी समाचार-पत्रके सवाददाताने उस समय मेरी मुलाकात ली होती, तो एकदम बहुतसे लिफाफे ले लेनेके कारण, मेरे खर्चमे कितनी बचत होनेवाली है, इसकी तीन दशमलव स्थानोंतककी सख्या मै दे सकता था।

लिफाफोंका गड्डा लेकर मै घर आया तभी एक मित्रने अलपीनोंके बहुतसे पैकट (भरे हुए) मुझे भेटके रूपमे ला दिये । उपर्युक्त मित्रमहाशयका एक भाई रेल्वे या इसी तरहके किसी एक दफ्तरमे नौकर था । उसके द्वारा लायी गयी इस लूट-को स्वीकार करते समय मेरे मनको क्षण-भर कुछ अजीब-सा लगा । परतु इस वचनके आधारपर कि कहीं की भी खानगी सम्पत्ति चोरीका ही माल होता है (Property is theft) मैने अपनी निर्णयात्मिका बुद्धिको संतोष दिया। मुफ्तकी अलपीने मिल जानेके कारण, रातको सोतेतक मुझे ऐसी आशा लग रही थी कि मेरे पास नोटपेपर और कलम आदि सामग्री भी भेंटके रूपमे आ जायेगी। परंतु मेरे अन्य मित्रोंके भाई या रिश्तेदार रेल्वे और दूसरे ऐसे किसी विभागमें नौकर न होनेके कारण, वह विफल सिद्ध हुई ।

दूसरे दिन मैंने उन लिफाफोका उपयोग करना शुरू किया। उपयोग कहनेके बजाय दुरुपयोग ही कहना अच्छा। क्योकि कोई भी लिफाफा मुझसे खोलते ही न बनता था। लिफाफे मोल लेते समय मैंने वही किया जो लडकी देखते समय करते हैं। यानी मैंने केवल रगकी ओर ही ध्यान दिया! परतु ऐसा कहाँ होता है कि लडकीके रगके कारण गृहस्थीको भी निश्चित रूपसे रग चढ ही जाता है। लिफाफेके बारेमे भी मुझे वही अनुभव हुआ। हरएककी पिछली बाजू जमकर चिपकी हुई थी। किलेका ही बदोबस्त समझिये न! एककी दँतौड़ी खोलने लगा, तो उसकी बत्तीसी ही झड गयी। बेहोश मनुष्यकी आँखोको पानी लगाते हैं, उस तरह दूसरे लिफाफेको पानी लगाकर देखा, पर वह आँखे खोले तो कसम! दूकानदारने वह जूने ही लिफाफे मुझको दिये थे। किस बरसातमे उन्होने अपने मुँहपर ताला लगा लिया था, कौन जाने? उस तालेके लिये एक भी ताली काम नही देती थी।

तब जरूर मुझे अलपीनोंके बारेमे भी शक होने लगा। मैंने दो-चार अलपीनें निकालकर देखीं, सबपर मुर्चा लगा हुआ। मै उसी समय यह जान गया कि सत्यनारायण भगवानके सामने रखी थालीमे चिकने पैसे ही क्यो इकट्ठे होते हैं। परतु मित्रकी उदारताके बारेमे सोचनेकी मुझे फुरसत ही न थी। मुँह खोलते हुए फटनेवाले लिफाफो और मुर्चा लगी हुई अलपीनोका उपयोग पत्रोंके काममे कैसे करूँ? क्या पत्र-प्रिय मनुष्योसे होनेवाला लिखित सभाषण ही नही होता? और किसीसे मिलने जाते समय अथवा उससे बातचीत करते समय अपनी पोशाक अव्यवस्थित रहे, यह किसे अच्छा लगेगा? यदि 'एक नूर मजमून, पाँच नूर नोट-पेपर और दस नूर लिफाफा' कहावत रूढ कर दी जाये तो वह कोई अधिक झूठ सिद्ध न होगी।

खार खाकर उन लिफाफो और अलपीनोको मैंने मेजके बड़े दराजमे डाल दिया। मुर्चा लगी अलपीन उस स्त्रीकी तरह होती है जिसने कँघी-चोटी नही की हो और फटा हुआ लिफाफा तो भिखारीका मूर्तिमान अवतार ही समझिये! अपने पत्र-दूतोंके साथ यदि मैंने उन्हे भेजा होता, तो कालिदासके यक्षसे लेकर कॉलेजके लड़के-लड़कियोको रगबिरगी पत्र-सामग्री पुरानेवाले दूकानदारोतक सारे रसिक क्या मुझपर हँसे बिना रह जाते?

महीनेके बाद महीने गुजर गये, परंतु मेरी मेजके दराजमे रखे 'लिफाफे,

अलपीन और मंडली' जैसी की तैसी रही आयी। किसी समय जल्दी-जल्दीमे मेजका दराज खोलकर, किसी जरूरी चीजको खोजने लगता, तो किसी पैकटसे झॉककर बाहर देखनेवाली अलपीन हाथमे चुम जाती। उस समय विलक्षण क्रोध आ जाता मुझे और लगता—'इन लॅगडी अलपीनों ओर गॅूगे लिफाफोको उठाकर घरके बाहर फेक दूॅ! व्यर्थ ही मेजका स्थान दबाये हुए हैं ये। किस कामके हैं ये? पुराने कविसंकेतों और काई जमे हुए सामाजिक संस्कारोके बराबर ही इनका मूल्य है!'

ऐसे विचार मनमे उठते हुए भी वे लिफाफे मेजके अन्दर ही पड़े रहे। यदि मैं आत्म चरित्र लिखता, तो उसमें यह लिख भी मारता, कि मित्रके द्वारा अत्यन्त प्रेमपूर्वक दी गयी अलपीनोको फेक देनेकी मुझे हिम्मत नही हो रही थी। किन्तु इसमें संदेह नही, कि उन लिफाफोंके लिये खर्च हुए निजी रुपयोंको वसूल करनेके लिये ही, मैने उन्हे अपनी मेजके भीतर बन्द कर रखा था। एक कथा है कि कैदीका खर्च बरदाश्त न कर सकनेके कारण किसी राजाको उसे बधन-मुक्त कर देना पड़ा था। ऐसा रग दीख रहा था कि इन पुराने लिफाफोंके बारेमे मेरी भी वही दशा होगी। उस दराजका इतना स्थान उन्होने हड़प लिया था कि नये लिफाफोके लिये उसमें जगह ही न बची थी। परपरासे ग्रस्त हुए हिन्दू मनका प्रतिबिम्ब ही दिखा करता था उस दराजमें! जब जरूरत होती और जितने लगते उतने ही लिफाफे मैं खरीदने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐन वक्तपर खुले मनके पॉच-दस लिफाफोकी यदि जरूरत पड़ जाती, तो उनका मेरे घरमे मिलना मुश्किल हो गया। ऐसे समय प्राथमिक पुस्तककी काव्यमय 'मकड़ी' को गुरु बनाकर मै बड़ी आशासे पुराने लिफाफोकी दूसरी बाजूको पानी लगाकर देखता। परतु उन चीमड़ पुरुषोमेसे एकके भी अन्तःकरणमे मेरे प्रति दया उत्पन्न न होती थी!

महीनोंतक उन निरुपयोगी पुराने लिफाफोको सुरक्षित रखनेवाली झूठी आशापर अब मुझे अपने आप ही हॅसी आती है। परतु पद पदपर अपने समाजमें भी यही सस्करण देखता हूॅ तो मेरी हॅसी जाने कहॉ अस्त हो जाती है! परसों एक महाशय अपनी लड़कीके बारेमें शिकायत कर रहे थे। उन्होने उसे उच्च शिक्षा दी थी। वह डिग्रीधारी हो गयी। परतु विवाहके समय जब उसने अपने स्वयंवरके अधिकारको बड़ी धूमधामके साथ सम्पन्न किया, तब पिताको बड़ा

दुख हुआ। उनका कहना था कि जिस वरको हम निश्चित करते उसीके गलेमें उसे वरमाला पहनानी चाहिए थी। उनका इरादा यह था कि बालविवाहके जमानेका पुराना लिफाफा खोलकर उसमे अपनी बीस-इक्कीस वर्षकी कन्याको बन्द करके सील लगा दूँ और फिर वह सीलबंद पैकेट कन्यादानके रूपमें अपने दमादबाबूके हाथमे रख दूँ। बिलकुल मामूली बात लीजिये। कुछ दिनोंके पहले ही किसीनें यह खोज की कि नाककी नथसे तंदुरुस्ती बढती है। मानापमान'[1] के लक्ष्मीधर[2] के सभापतित्वमें सभा बुलाकर, पुरुषोंकी नाकमें जबरदस्तीसे नथ पहनानेका प्रस्ताव शीघ्र ही पारित होगा। ये नथ-अन्वेषक इतना भी नही जानते कि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यदि नथ लाभदायक होती, तो सूर्यनमस्कारसे धर्मका सबंध जोड़नेवाले हमारे पूर्वज, पुरुषोंकी नाकमे नथ लटका देनेमे भी क्या कोई कसर रखते ? कानकी बाली कुछ भी हो, फिर भी पार्श्व-संगीतकी तरह होती है। उलटे, नथ मीठे कठसे निकली हुई सुरीली तान है। लेकिन हमारे आर्य पूर्वजोंने शायद यह महसूस कर लिया होगा कि शरमाना, मुड़ना, 'हुश' कहना, इत्यादि नाजुक हावभावोंमें पुरुष निपुण न होनेके कारण, नाकोंमे नथ पहननेपर भी उनका सौदर्य नहीं बढेगा। लज्जाकी रक्तिमा चेहरेपर आ जानेसे युवतीकी नथके मोती क्या सध्यारगकी पार्श्व-भूमिपर खिलनेवाली तारिकाओंकी तरह सुन्दर नहीं दीखते ? नाक सुकोडनेकी अभिजात कला स्त्रियोको ही अधिक अवगत होती है। इसके कारण बीच-बीचमें नथके मोतियोमें टूटनेवाले तारोका सौन्दर्य भी वे निर्मित कर सकती हैं। इस विषयमे पुरुष निसर्गतः पिछडे हुए हैं। यदि यह मान ले कि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे हिन्दू स्त्रियोंकी नाकमे नथें चमकने लगीं, तो कोई भी दादीजी शीघ्र ही यह खोज करके दिखा देंगी कि पुराने जमानेकी कसी हुई वेणीसे मस्तिष्कका रक्त शुद्ध होता था और गलेमे हॅसली जैसे जेवर होनेके कारण गलेकी ग्रंथियॉ आजकलकी तरह नहीं बढ़ा करती थी," इत्यादि।

चिपके हुए पुराने लिफाफोंकी चिपके रहनेकी यह प्रवृत्ति सर्वत्र दिखायी देती है। मेरे एक बड़े विद्वान मित्र हैं। यदि उनके मुँहसे यह सुनो कि मानवी समा-

१ महाराष्ट्रके प्रसिद्ध नाटककार और संपादक स्व० कृ० प्र० खाडिलकर (सन १८७२–१९४८) का मराठी नाटक।

२ 'मानापमान' नाटकका एक पात्र जो जेवरोंका बहुत शौकिन है।

उमें ईश्वरकी कल्पना किस तरह बदलती गयी तो वे इस विषयका इतना मार्मिक वर्णन करते है, कि किसी भी हिन्दू भक्तकी आस्तिक बुद्धिका पारा तेतीस कोटिसे उतरकर शून्यकी ओर आने लगता है। लेकिन महाशयजीके घरमे जाकर देखो, तो वहाँ ब्रह्मचारी हनुमानजीसे लेकर सौतोंकी कैंचीमे फँसे कृष्णजीतक सब देवताओके चित्र दिखायी देते हैं। दूसरी एक बम्बईमे ब्याही गयी कोंकनकी मेरी मित्र, एक लडकीका भी वही हाल है। पीठपर वेणी लहरानेसे लेकर पॉच गजी साडी पहननेतककी सारी अपरिचित बातोंको उसने इतनी अल्पावधिमे अपना लिया है, कि स्त्रियोकी अशिक्षित-पटुताकी सराहना करनेवाला कालिदास भी उन्हे देखकर दॉतोतले ॲगुली दबा लेगा। एक बार उसका पति बीमार पड गया। बड़े बडे डॉक्टर बार बार चक्कर लगाने लगे, फिर भी बीमारी किसी तरह कम नहीं हो रही थी। उस समय उसने चटसे अपनी कुलदेवीको मनौती मनायी। इस जानकारीके आधारपर ईश्वरका अस्तित्व सिद्ध करनेवाली अथवा परिवारके महत्त्वको दिखानेवाली उत्तम सत्य-कथा लिखनेवाले लेखक मिल जायेंगे, ऐसा नही कि न मिले। परतु मुझे जरूर मनौती माननेकी बुद्धि मनकी दुर्बलताकी द्योतक ही लगती है। सूत कितना भी अच्छा हो, फिर भी कपडा यदि कॉटोंपर गिर गया तो वह थोडा-बहुत जरूर फटेगा ही। मनुष्यका मन भी उसी तरहका होता है। परंतु मनमे जो छेद हो गये हैं उन्हे कोमलतासे सीनेके बजाय यह दिखाना कि वे उसका बड़प्पन दर्शानेवाले हैं, क्या पागलपन नही है?

मेरी मेजके दराजमे रखे हुए 'लिफाफे, अलपीन और मण्डली'का जो उच्चाटन हुआ वह जरूर एक सयोगकी बात थी। हम तीन-चार मित्र मिलकर एक बड़ा शहर देखने गये थे। उस गॉवका अजायब-घर अत्यन्त दर्शनीय था। अठारहवीं सदीके महाराष्ट्रीय स्त्री-पुरुषोंके विविध चित्र उस म्यूजिअममे मैंने देखे—उस रातको मुझे स्वप्नमें भी वह अजायबघर दिखायी दिया। वहॉके पुराने विलक्षण पोशाक पहने हुए मनुष्योको मै बड़े कुतूहलसे देखने लगा। परतु यह देखते ही कि उनमेसे एक मनुष्यका चेहरा हुब-हू मेरी तरह है और उसके सिरपर पगड़ी, बदनमें बारावन्दी आदि पुराने जमानेकी पोशाक है, मैंने दूसरी ओर गर्दन मोड़ ली। वहॉ एक स्त्री खड़ी हुई थी। चेहरेसे परिचित-सी लगी। अरे हॉ, यह तो मेरी श्रीमतीजी ही हैं! परतु मुझे देखते ही उसने अपनी गर्दन इतनी नीचे झुका ली कि मेरा ध्यान सिर्फ उसकी केशरचनापर ही पड़ा। वहॉ गठे हुए जूड़ेके

बदले 'खोपा'[१] देखकर मैं चौका तो चारपाईपर हाथ पटककर जाग गया! वह स्वप्न यदि बीचहीमे भंग न हो जाता तो इसके आगेका चमत्कार देखकर, मैं चीखता-चिल्लाता हुआ ही उठा होता, इसमे सदेह नही।

घर आनेपर सबसे पहले मैंने मेजके बोझको हलका करनेका काम किया।

जल रहे पुराने लिफाफोंका धुआँ देखकर पत्नीने हँसते हँसते पूछा—'इतने दिनोंके बाद सूझी यह?'

उसे सारे स्वप्नको कह सुनानेकी मुझे हिम्मत न पड़ी। लेकिन ऐसे स्वरमे जिससे वह सुन ले मैंने कहा,—'ऐसे स्वप्न हमारे समाजको कब दिखेगे?'

●●●

१ एक विशेष रचनाकी वेणी जिसका प्रचार पुराने जमानेमें था।

३५

महापूर

बचपनकी बात है। ठेस लग जानेसे अथवा किसी दूसरी वजहसे मेरे पैरमें दर्द था। उस पीड़ासे यथाशक्ति लाभ उठाकर, मैंने उस दिन स्कूलका नाग कर दिया! एक तो पहलेसे ही पैरमे दर्द होनेके कारण सारे बदनमें सिहरन थी! ऊपरसे बरसातके दिन! मुझे कहीं ज्वर न आ जाये इस भयसे पिताजीको भी मेरी छुट्टी मंजूर हो गयी थी। परतु स्कूल न जानेका तुरत ही मुझे पछतावा हुआ! उस दिन कृष्णा नदीमे खूब पानी आया था। तीसरे पहर पूर इतना बढ गया कि स्कूलकी भी जल्दी छुट्टी हो गयी। लड़कोके झुंडके झुंड नदीकी ओर जाने लगे। बरामदेसे उन झुंडोंको देखते हुए मेरे मनमे आन्दोलन आरभ हो गया। शालाके पारितोषक-वितरण समारभके समय शानसे मचपर जाकर परितोषक लेकर लौटने-वाले लड़कोसे भी मुझे इतनी ईर्षा न हुई होगी जितनी बाढ़ देखनेके लिये जा रहे लड़कोंसे होने लगी। मुझे अपने पैरपर तो बेहद गुस्सा आया! अन्तमे जब पिताजी दर्शन करने मन्दिर गये, तब इस मौकेसे लाभ उठाकर, मैं लँगड़ता हुआ ही घाटपर गया और बाढ़ देखकर धीरे धीरे लौट आया। मैं यह नहीं जानता कि हिन्दुस्तानपर चढ़ाई करनेवाले तैमुरलगका स्वागत उसकी मातृभूमिने किस तरह किया। परंतु कृष्णा नदीके दर्शनका प्रसाद घर आने पर मुझे भरपूर मिला, यह कहनेकी आवश्यकता ही हो यह बात नही है!

जब जब मुझे उस दिनकी याद आती है तब तब मेरे मनमें एक ही प्रश्न खड़ा होता है। बाढ़का सौंदर्य देखनेके लिये क्या मै उस दिन घाटपर गया था? नदी-पर लगी बेहिसाब भीड़ – पानीके पूरकी तरह दीखनेवाली लोगोकी बाढ – वे सब सौदर्यपिपासु लोग थे क्या? उनमेंसे सभी लोगोने ऑखे भरकर यद्यपि उस भव्य दृश्यको देखा होगा, फिर भी उसका यथार्थ अथवा काव्यमय वर्णन एकसे भी करते न बनता। ऐसी बाढ़ – ऐसा महापूर पाँच-दस बरसोंमें एकाध बार ही आता था। नदीके दोनो किनारोके खेत कभीके जलमे डूब चुके थे। भाषणके प्रवाहमे वक्ताके व्यक्तिगत दोषोका होश भी न रहे, उस तरह नदीका ऊँचा-नीचा पात्र और घाट आदि सब अदृश्य हो गये थे।

नदीमे बाढ़ कैसी! मानवी जीवनका दौड़ता हुआ प्रतिबिम्ब ही था वह! जीव-मात्रकी तरह प्रत्येक लहर चढती थी, गिरती थी, छटपटाती थी। पानीमे ठौर ठौर-पर छोटे-बड़े भँवर निर्मित हो रहे थे, जैसे जीवन-मार्गके गढ़े और खाइयाँ ही हो। पानीके साथ बहती चली आ रही लकडियाँ, साँप, घास इत्यादि चीजें, मानवी जीव गुण-दोषोकी जो आनुवशिक गठड़ी अपने साथ लाता है, उसका स्मरण दिलार ही थीं।

दूसरे दिन मास्टर साहब यदि बाढपर निबध लिखनेके लिये कहते, तो उप-रोक्त अलंकारिक वर्णन मेरे मस्तिष्कमे कभी न आता। परतु इतना होने पर भी नदीका वह विशाल जलाशय देखते हुए दर्द कर रहे पैरकी, और घर लौटने पर जो मार पड़नेवाली थी उसकी, मुझे सुध भी न रही थी। ऐसी खोयी हुई स्थितिकी यदि ब्रह्मानदसे तुलना की जाये तो यह कोई बडी भूल न होगी। उम्र, जाति, धर्म, सस्कार इत्यादि बातोंमे अत्यन्त भिन्न ऐसे हजारों लोगोंको आनन्द देने-की शक्ति उस पूरमे कहाँसे आयी? यह तो निश्चित है कि केवल सौदर्यकी ही शक्ति नहीं थी वह। चंद्रमाके सुकुमार पैरोंमे कुछ चुभ न जाये, इसलिये सफ़ेद-शुभ्र मेघोंके कोमल गद्दे, शारदीय रजनी आकाशके मन्दिरमें जब बिछा देती है, उस समयका दृश्य क्या रमणीय नहीं होता? त्रिपुरी पूर्णिमाके दिन श्रद्धालु स्त्रियाँ नदीके पृष्ठ-भागपर जब दीप-मालाएँ छोड़ देती हैं, तब आनदसे नाच रहीं ज्योतियोंके पानीमे पड़े हुए प्रतिबिम्ब क्या मनोहर नहीं दिखायी देते? लेकिन जनसमुद्र समुद्रकी अपेक्षा भिन्न ही है थोडा-सा! समुद्रको नन्ही-सी चन्द्रकला नचा सकती है। किन्तु जनसमुद्रकी हलचलोमे सूर्यनारायण ही ज्वार लाता है। सच तो यह है कि उत्कट अलौकिकता अथवा उदात्त भव्यताकी मोहनी जनमनपर सहज रूपसे पड़ जाती है।

वैसे देखा जाये तो पचमहाभूतोकी सभी क्रीड़ाएँ मुझे अच्छी लगती हैं। फिर वह वायु द्वारा बजायी जानेवाली सीटी हो अथवा सूर्यकी परावर्तित किरण हो। लेकिन ऐसे रम्य दृश्योके कारण मेरा मन आनदसे भले ही गुनगुनाने लगे, पर उसे पचममे गानेके लिये वाध्य करनेवाले दृश्य बिलकुल ही दूसरे है। मृगपर सवार होकर बरसाती हवा जब दौडती हुई आती है और मेरे घरके आसपास लगे नारियलके पेड जब बेहोश होकर नाचने लगते हैं, तब मेरा हृदय भी अनजाने नृत्यमे निमग्न हो जाता है। जमीनसे चलते हुए दीखनेवाले आकाशके नन्हे-से नीले भागको देखकर मेरे मनको कभी भी सतोष नही होता। यदि किसी पॅछी-का सुन्दर पॅख दीख जाये तो उसके प्यारे मालिकको देखनेकी इच्छा हमारे मनमे पैदा हो ही जाती है या नहीं? ठीक उसी तरह होता है मुझे ऐसे समय! लोग भले ही कहते रहे कि अपने घरके नजदीककी टेकडीपर मै हवा खाने जाता हूॅ। विशाल आकाशके दर्शन हो इसी लिये मै उसपर चढनेके कष्ट उठाता हूॅ। हाथोमे प्राण लेकर सहाराकी मरुभूमिमेसे सफर करनेवाले जो साहसी अन्वेषक हो गये, उन्हें पृथ्वीके भव्य विस्तारने क्या कुछ भी हिम्मत न दी होगी? वर्षा ऋतुमे सूर्य कृपणकी तरह हाथ खींचकर प्रकाश देने लगता है तब हम तो भई बिलकुल ऊब जाते हैं! ग्रीष्ममे उसके द्वारा की जानेवाली अपने तेजकी फिजूलखर्ची उस समय अच्छी लगने लगती है। लगती है न? जलदर्शनसे प्राप्त होनेवाला आनन्द कुछ निराला ही होता है, यह झूठ नहीं। ओसकी बूॅदोके रूपसे अवतीर्ण हुए नन्हे बच्चोके चुम्बन, अल्हड तरुण-तरुणियोके हृदयकी तरह कलकल निनाद करते हुए दौड़ रहे निर्झर, खुशहाल परिवारोकी तरह दीखनेवाले सरोवर, और आसपासके रुक्ष प्रदेशको अपने मातृहृदयसे नंदनवनका स्वरूप प्राप्त करा देनेवाली नदियोके दर्शनसे आनदित न होनेवाला अभागा आज समूची दुनियामे भी मिलेगा क्या? परतु इस दृश्यका आनद मुझे अत्यन्त आकर्षक जरूर नहीं लगता। समुद्र तटपर जाकर और क्षितिजतक भिड़े हुए जलदेवीके साम्राज्यको देखकर, मनुष्य क्षणार्धमें अपने आपको भूल जाता है। समुद्रकी ओर किसी भी समय देखिये, उसका भव्य विस्तार और अलौकिक जयघोष हमेशा नया ही प्रतीत होता है। भगवान विष्णुके लिये सागरका शयन-मन्दिर निर्मित कर देनेवाले कवियोंकी प्रतिभाकी जितनी सराहना की जाये थोड़ी ही है।

पौराणिक प्रतिभाने शंकरजीको कैलासके शिखरपर ले जाकर बैठा दिया। इसका

भी दूसरा और क्या कारण होगा? क्या, देवत्व धर्म द्वारा मान्य की गयी भव्यता और मानवपर मोहनी मंत्र फूँक देनेवाली अलौकिकता ही नहीं है? बागमे एक फूलसे दूसरे फूलपर उड़नेवाली तितलियोंके रग कितने मोहक होते हैं! लेकिन हम उनकी ओर देख रहे हैं और तभी आकाशमे यदि कोई चील तेजीसे चक्कर खाने लगे अथवा कोई हलचल न करके वातावरणमे तैरती रहे, तो हमारा ध्यान उन प्यारी तितलियोपरसे उडकर, उसकी ओर खीच जाना क्या स्वाभाविक नही है? कागजके टुकडे और छोटे-छोटे धागे किसी भी घरके कोने-कोनेमे क्या कम पड़े रहते है! लेकिन कागजके एक टुकड़ेको धागेके आधारसे विशाल आकाशमे जाकर शानसे घूमने दीजिये और फिर देखिये कि बालगोपालोंके आनदमे कितनी बाढ़ आती है। ऐसा कोई नियम नही है कि झण्डेके आधारकी लकड़ी धोये हुए कपडोंको सुखानेके काममे आनेवाली लकडीसे अधिक लबी होनी ही चाहिए। परतु केशवसुत[1] सरीखे कविने भी उसका जो यशोगान किया है उसका कारण क्या अलौकिक भावनाओका महापूर उत्पन्न कर देनेकी झण्डेकी शक्ति ही नहीं है?

रावसाहब मडलिक पिछली पीढीके एक श्रेष्ठ पुरुष हो गये हैं इसमें सदेह नही। उनके आने-जानेपर लोग अपनी घडियाँ मिलाया करते थे। केवल इसी लिये कि मेरी घडी हमेशा पीछे रहती है मुझे यह बात महत्त्वकी मालूम होती हो, यह बात नही। यह तो कोई भी स्वीकार करेगा कि इस यात्रिक युगमे नियमितताका मूल्य बढ गया है। यह अनुभव किसे नहीं है कि स्टेशन समयपर न पहुँचनेसे गाडी चूक जाती है और फिर या तो ताँगेके पैसे व्यर्थ चले जाते हैं अथवा दूसरी गाड़ीके आतेतक रुके रहनेसे चायके दूकानदारको पैसे देना पड़ते हैं। लेकिन हालहीमे मैने रावसाहब मडलिक और अच्युतराव कोल्हटकरके संक्षिप्त जीवन-चरित्र एकके बाद एक पढ़े, तब रावसाहबकी अपेक्षा अच्युतराव मुझे अधिक अच्छे लगे। मै जानता हूँ कि रात-भर जागकर 'सदेश'[2] के लिये मजमून लिखनेका उद्योग रावसाहबकी घडीको बिलकुल पसद न पड़ता। किन्तु जिस समय निद्रादेवीने सारे जगको अपने पाशमे बाँध रखा है, तभी एक पुरुष निसर्गकी

१ मराठीके अर्वाचीन कवि—स्व० कृष्णाजी केशव दामले।

२ महाराष्ट्रका एक तत्कालीन समाचार-पत्र—जिसके सपादक स्व० अच्युतराव कोल्हटकर थे।

इस मोहनीको दूर हटाकर एकके बाद एक कागजपर एक ही कलमसे चटपटा मजमून लिखता रहे और सोये हुए जगके जागते ही उसे अपने इस सुंदर साहससे चकित कर दे, तो क्या यह बात नियमित रूपसे ऑफिसमे जाकर काम करनेकी अपेक्षा अधिक सराहनीय नही है? अहिल्याबाईके द्वारा किये गये दानधर्मसे उसने राघोबादादाको जो मुँहतोड़ उत्तर दिया था उसके लिये मुझे अधिक आदर लगता है। गागाभट्टने गंगाजलका सिंचन करके शिवाजीको जो अभिषेक किया था, वह दर्शनीय रहा होगा, परतु शिवाजीके चरित्रका अधिक रमणीय प्रसंग देखा था केवल आकाशकी तारिकाओने ही! बालक संभाजीके साथ आगरेके किलेसे बाहर निकलकर, शिवाजी महाराजने उस अँधेरी रातको शत्रुपर जो विजय प्राप्त की उसके स्मरणमात्रसे ही आज भी रोमाच खड़े हो जाते हैं। 'शाकुन्तल'के तीसरे अंकमे 'तें मुख वर केले परि नाही चुंबियेलें'[1] प्रसगके होते हुए भी रसिकगण चौथे अंकका ही मूल्य अधिक मानते हैं, इसका भी मर्म यही है। पाली हुई लड़कीको ससुराल भेजते समय होनेवाली वैराग्यशाली कण्व मुनिके हृदयकी बेचैनी—उस शात आश्रमने इससे अधिक भव्योत्कट दृश्य पहले कभी न देखा होगा।

बचपनमे मैं लँगड़ता हुआ पूर देखने गया उसका कारण क्या अलौकिक उत्कटताकी ओर मानवी मनका खिंचाव ही नही है! लोकमान्य तिलकके इस अर्थके उद्गार, कि 'पृथ्वीकी अँधी न्यायदेवताको चेतावनी देकर यह कहनेवाली शक्ति कि मै निर्दोष हूँ, स्वर्गमे है', यदि छापे जायें, तो पूरी चार सतरें भी न भरेगी। परतु वे उनके विशाल ग्रथ 'गीतारहस्य'से भी अधिक जल्दी जाकर हृदयको छू जाते हैं। एक बार हमारी मित्रमण्डलीमे किसीने यह कल्पना निकाली कि हरएक अपने सस्मरणीय घटना सुनाये। मैं बड़े सोचमे पड़ गया। उथले विनोदसे लेकर उत्कट करुणतक सभी रसोको जन्म देनेवाली बातें मेरे जीवनमें घटी हैं। परतु घटते समय ताज़े लगनेवाले अनुभवके अनेक फूल कालान्तरसे निर्माल्य हो जाते हैं। विश्वविद्यालयकी डिग्रियाँ, बहन और पत्नीके प्रेमके अगणित अनुभव, कीर्तिके द्वारा—ऐसे कितने ही रमणीय स्मृति-चित्र चटसे मेरे मनःचक्षुके सामनेसे सरक गये। लेकिन किस चित्रको प्रदर्शनीमे रखूँ यही मै नही सोच पा रहा था। मनमे कोई पक्का निश्चय करूँ इससे पहले ही मेरी बारी आ गयी। मंत्रमुग्धकी तरह

१ 'उस मुखको ऊपर उठाया फिर भी उसे नहीं चूमा।'

मै कहने लगा। मैने जो घटना सुनायी वह उस प्रसग की थी जब कि तैरकर काफी थक जानेके बाद भी, एक विद्यार्थीके प्राण बचानेके लिये, फिरसे मैं पानीमें किस तरह कूद पडा था। अभिमान, आनद और सुखसवेदनाकी अनेक घटनाओ-को छोड़कर, मेरे मनने उसी प्रसगको क्यों चुना? सामने मृत्युका द्वार खुला था। मृत्युके गलेमे बाहे डालनेके लिये दौड़ना और वह भी खुद अपने पैरोंसे! पीछे खीचनेवाले मायाके पाश, बहनकी सजल आँखे और पत्नीके थरथराते हुए होठ वापस लौट आनेके लिये बड़ी गिड़गिड़ाहटसे उपदेश कर रहे थे। परंतु प्राण-रक्षाके लिये करुण क्रंदन कर रहे उस अभागे लड़केको देखकर, मेरी सुध ही जाती रही और एक क्षणमे ही मै पानीमे कूद पडा। सच तो यह है कि तर्क, विचार, वैयक्तिक आदि सब भावनाओको डुबा देनेवाले किसी महापूरने मेरे मनको व्याप डाला था।

●●●

दो शब्द

१

साहित्यका लघुनिबंध-अंग पाश्चात्य देशोंमें पिछली दो-तीन शताब्दियोंसे विकसित होता आया है। मौंटेन्, ऐलिसन् और लैंबसे लेकर लिंड, गार्डिनर और चेस्टरटन्तक कितने ही प्रतिभासपन्न लेखकोंने इसके विकासमे हाथ बटाया है। उस परिमाणमे वह हमारे यहाँ नया ही है। हमारी पोशाकके बुशकोटकी तरह वह बिलकुल हालहीमे प्रचलित हुआ साहित्यका एक अंग है।

लेकिन मैं इस अंगकी ओर मुडा वह इसलिये नहीं कि मुझे यह लगा हो कि अॅग्रेजीके लघुनिबंधोंको पढ़कर मै भी इसी तरहका कुछ लिखूँ। कहते हैं, कि जीवनकी तरह दूसरा शिक्षक नही होता। लेखकके विषयमें भी वह सत्य है। क्या लिखे और कैसे लिखे यह वह अपने अनुभवोंसे ही सीखता रहता है।

सन १९२७ मे मैंने पहला लघुनिबंध लिखा। उस समय मै कोकनके एक कोनेमें स्थित शिरोड़ा नामक गॉवमें अॅग्रेजी शालाका संचालन कर रहा था।

शालामे पढ़ाते समय और समाजमें रहते हुए मुझे अनेक मजेदार अनुभव हुआ करते। शामको जब मै समुद्र तटपर जाकर बैठता, तो वे जागृत हो जाते। कल्पनाका वेश परिधान करके आनेके कारण, उनका स्वरूप अधिक मनोहर प्रतीत हुआ करता। लेकिन उनका कलात्मक प्रदर्शन कैसे किया जाये, यह किसी भी

तरह मेरी समझमे नही आता था। उनमेके कुछ अत्यन्त चचल रहा करते। कुछ सिर्फ दिलचस्प ही होते। किन्हीके कारण मन अन्तर्मुख होकर चिन्तन करने लगता। मुझे विश्वास था कि इन अनुभवोमेसे अनेकको कहानीका रूप देना असभव न हो, फिर भी बड़ा कठिन काम है। उन दिनों शाला मेरा मुख्य कार्य-क्षेत्र था। और लिखना अवकाशके समयका एक शौक था। इसके कारण प्रत्येक छोटे-बड़े अनुभवको कहानीमे रूपान्तरित करनेके लिये आवश्यक तल्लीनता भी मुझे प्राप्त होना सभव न था। ऐसी दशामे वे आकर्षक अनुभव मनके भीतर रद्दी चीजोके अडारकी तरह कुछ दिन पड़े रहा करते और जब वहाँ नये मेह-मानोकी भीड़ लग जाती, तब धीरे धीरे वे पुरानी रद्दी चीजे बाहर फेक दी जाती।

सन १९२७ में एक छोटेसे प्रसगने मुझे यह सिखाया कि हर तरहकी कल्पना-ओका उपयोग किस तरह करना चाहिए। एक शनिवारको हमारी शालामे क्रिकेटका मैच हो रहा था। बचपनसे मुझे पुस्तकोके बाद क्रिकेटका शौक था! जिस समय मै दूसरी या तीसरी अँग्रेजीमे पढ़ता था उस समय क्रीडागणमे मैने एक अभूत-पूर्व विक्रम भी किया था! वह यह था कि मेरी नाकपर गेद लग जानेके कारण मै दो घंटेतक बेहोश पड़ा रहा था!

जिस शिक्षकने क्रिकेटमे इतनी प्रवीणता प्राप्त कर ली थी, वह अपनी शालाके विद्यार्थियोके खेलमे शौकसे भाग ले यह स्वाभाविक ही था। उस दिनका मैच बड़ी स्पर्धाका होनेके कारण लड़कोने मुझे 'अम्पायर' (निर्णायक) बनाया था। चिलचिलाती धूपमे सिरपर छाता लगाये मै उस कामको यद्यपि प्रामाणिकतासे करनेका प्रयत्न कर रहा था, फिर भी बीच बीचमे मुझे ऊँघाई-सी आ जाया करती। यही समझ लीजिये कि उस क्षण मुझे यह पहेली हल हो गयी कि न्याय-देवीको हमेशा अँधी क्यों दिखाया जाता है! धूपके कारण ऊँघाई-सी ही आ रही हो, फिर भी इस इच्छासे प्रेरित होकर कि, कर्तव्यसे कभी मुँह नही मोड़ना चाहिए, जितना सभव था उतना, खुली आँखोंसे मै बराबर देख रहा था। इसी समय 'हाउज दैट अम्पायर?' की मेघगर्जना मेरे कानोंमे पडी। मैने चौंककर 'आउट' कह दिया। बादमे मुझे लगा कि उस गेदको मैने ठीक तरहसे देखा ही न था, और ऊपरसे दूसरी टीमके लड़कोंने शोर मचाना शुरू कर दिया। इस-लिये मैने 'नॉट आउट' कह दिया। नतीजा यह हुआ कि पहली टीमके लड़के

चिढकर हो-हल्ला मचाने लगे। मै असमजसमें पड गया। मुझे तअज्जुब होने लगा कि बडे लोग अपने बच्चोंको यह उपदेश देनेके बदले कि किसीकी जमानत न लो, यह उपदेश क्यो नही देते, कि किसी भी वादमें 'निर्णायक' न बनो? दोनो टीमको वस्तुस्थितिसे अवगत कराकर, घर जाकर सो जानेके लिये मैने अम्पायर-पदसे त्याग-पत्र दे दिया। घर जाकर मैं बिस्तरपर लेटा जरूर, पर एक घड़ी पहले घटा हुआ वह मजेदार प्रसग किसी भी तरह मेरे मनसे न जाता था। रह रहकर 'हाउज दैट अम्पायर?' का कर्कश आवाजमे पूछा गया प्रश्न मेरे कानोमे गूँजता रहता। मुझे लगने लगा, यह प्रसग मजेदार हो, पर उसके पीछे एक विलक्षण सत्य छिपा हुआ है। हर घड़ी हम जगमे न्याय दिया करते हैं। मित्र, पडोसी और समाजके हम न्यायाधीश बनते हैं! लेकिन न्याय करना, क्या सचमुच इतना सहज है? न्यायदान सत्यकी पवित्र पूजा है। परतु इस दुनियामे, क्या, सत्यका किसीको सहजमे दर्शन मिला है? असत्य और अर्धसत्य ही नकली चेहरे पहनकर हमारे आसपास रात-दिन निःसकोच घूमते रहते हैं। न्यायाधीशका मन भी पूर्व [illegible]से दूषित हुआ हो सकता है। किसी समय शरीर अथवा मनकी दुर्बलताके [illegible] सत्यासत्यका निर्णय करनेके लिये आवश्यक बुद्धिकी सूक्ष्मता भी उसमे [illegible] रहती। दोनो ओरके गवाहोके चेहरे धोखा देनेवाले होते हैं। कुछके हृदयमे हलाहल और जिव्हापर अमृत होता है। यह ध्यानमे रखकर न्याय देना यानी इस तरहके विचारोके भँवरमे चक्कर खाते हुए मैने वह दिन काटा। अन्तमें लगा, मनके इस सारे कोलाहलको कागजपर उतारे बगैर मुझे अच्छा न लगेगा। मै लिखने बैठा और 'निर्णय दीजिए!' लघु-निबध लिखकर उठा।

२

मेरा पहला लघुनिबंध – 'निर्णय दीजिये!' (अनुक्रमाक ३२) इस रीतिसे निर्मित हुआ। जिस समय मैने उसे लिखा, उस समय स्वय मुझे ही यह पता न था, कि मैं किस साहित्यागको हाथ लगा रहा हूँ। परतु उसको लिख चुकनेके बाद, मुझे इस बातका आनंद हुआ, कि अपनी कल्पनाओं और विचारोंको व्यक्त करनेके लिये, मुझे एक नया माध्यम मिल गया। इस प्रकारके लेख मै शौकसे लिखने लगा। हर जगह भटकनेवाले लड़केको रगबिरगी तितलियाँ दिखे और वह उनके पीछे दौड़ने लगे, उस तरह मेरी स्थिति हो गयी। इस संग्रहके 'दर्पण', 'अलं-

कारिक भाषा', 'तात्पर्य', 'निर्णय दीजिये!', 'वायुलहरी', 'पुराने लिफाफे', 'महापूर' शीर्षक लघुनिबंध सन १९२७ के बादके छः वर्षोंमें लिखे गये निबधो-मेसे है। विषय और शैली, दोनों दृष्टियोंसे मैने उस समय जो प्रयोग किये थे, वे इन लघुनिबधोमे प्रतिबिबित हुए है। इन लघुनिबधोको लिखते समय मैने अनेक नये और पुराने अँग्रेजी लघुनिबधकारोका धुँधला-सा परिचय प्राप्त कर लिया। उनके परिचय और मेरे अनुभवसे लघुनिबध साहित्य-अंगके विषयमें मेरे जो मत बने, वे सक्षेपमे इस प्रकार हैं :

लघुनिबंधोमे विषयको महत्त्व नहीं होता, उस विषय-सूत्रके आधारसे अपने व्यक्तित्वके सब पहलुओंको प्रकट करनेवाले लेखकके विकासशील अन्तरगको ही महत्त्व प्राप्त है। इस दृष्टिसे सुदर लघुनिबंधकी रबड़के फुग्गेसे तुलना करनेकी इच्छा होती है। सिकुड़े हुए छोटे-से रबडके टुकडेको मुँह लगाकर धीरे धीरे फूँकनेसे उसकी क्रमसे बड़ी होती जानेवाली आकृति जिस तरह मनोहर रूप धारण कर लेती है, उसी प्रकार किसी मामूली, पर सुंदर अनुभवसे, धुँधले-से, कुतूहलजनक विचारोसे अथवा क्षण-भर चमक जानेवाली चमत्कृतिजनक कल्पना-क्रीड़ा करते करते लघुनिबध-लेखक अपनी कला-कृतिको जन्म देता रहता है। यदि मूलके सिकुड़े हुए टुकडेको हम धाँधलीसे फूँके, तो उसका सुंदर रबडका फुग्गा नही बनता। फुग्गाके फूलते फूलते उसे एकदम बीचहीमे जोरसे फूँक देनेसे भी काम नही चलता। वह तुरत ही फूट जाता है। लघुनिबंधके प्रारभ और विकास करनेकी कला भी इसी प्रकार कोमल है।

इस मोहक और व्यक्तिनिष्ठ प्रकारको यदि दूसरी उपमा देनी है, तो आस-मानमे शानसे उड़नेवाले और वायुलहरियोपर जैसे स्वच्छन्दतासे तैरते रहनेवाले पतंगकी दी जा सकती है। पतगकी अन्तरालकी मनमानी क्रीडा अत्यन्त आक-र्षक होती है। परतु बाह्यतः पतग स्वच्छन्दतासे नाचता हो, पैर उसकी डोर जमीनपर खड़े हुए एक खिलाड़ी बालकके हाथमे ही होती है। यह सच है कि लघुनिबंधको लघुकथाकी तरह निश्चित तात्रिक बधन नहीं हैं, परतु वैयक्तिक दृष्टि-कोनके सूक्ष्म सूत्रको पकड़कर ही वह मनमाना नाचता रहता है। जो यह कहा जाता है कि लघुनिबंध घनिष्ठ मित्रके साथ होनेवाले संभाषणकी तरह होना चाहिए, उसका कारण यही है। लघुकथा अथवा उपन्यासकी सजावटमें लेखककी अलिप्तता अनेक बार गुण हो सकती है, परतु लघुनिबंधमें अवश्य वह अक्षम्य

दोष है। प्रिय मित्रोंसे गुप्त बाते करते समय मनुष्य अन्तरंगपर पड़े हुए परदोंको कोमल हाथसे दूर कर देता है कि नहीं? लघुनिबंध लेखकको भी वही करना चाहिए। अपनी रुचि-अरुचि, अपने हर तरहके दोष, अपनी फजीहतके प्रसंग आदि बातोंको घरवालोंसे छिपानेकी जिस तरह कोई कोशिश नही करता, उसी तरह लघुनिबंध-लेखक भी अपने मनकी झक और अपने जीवनके अनुभव पाठकोंसे नही छिपाता। यही नहीं, बल्कि कृष्ण अपने ऊधमीपनके कारण ही जिस तरह गोकुलमे प्रिय हुए उसी प्रकार स्वयं अपने व्यक्तित्वके प्यारे नटखट स्वभावके कारण ही लघुनिबंध-लेखक पाठकोंको प्रिय लगने लगता है!

सुंदर लघुनिबंधकी मुख्य कसौटी लेखकके व्यक्तित्वका आकर्षक दर्शन है। यह व्यक्तित्व जीवनके भिन्न भिन्न रसोंसे जितना अधिक विकसित हुआ होगा, उस व्यक्तित्वके पीछे खड़ी हुई आत्मा जितनी अधिक अनुभवसम्पन्न और विनोदप्रिय होगी, उतना ही उससे पाठक बात-की-बातमे एकरस हो जायेगा। ऐसा व्यक्तित्व, संवेदनाशील मन और निरीक्षणकुशल बुद्धिके संगमसे विकसित हो जाता है।

कवि, तत्वज्ञ, विनोदी लेखक इत्यादि भिन्न भिन्न अभिनयोंका लघुनिबंध-लेखकोंमे जो संगम हुआ दिखायी देता है उसका कारण यही है, कि वैचित्र्यपूर्ण व्यक्तित्व इस साहित्यांगकी आत्मा है। यदि हम यह कहे कि लघुकथा, निबंध, गद्यकाव्य और विनोदी लेख—ये लघुनिबंधकी चतुःसीमा है, तो हम कोई बड़ी भूल नही करेंगे। लेकिन एक बात ध्यानमे रखना आवश्यक है, कि लघुनिबंधका काव्यविलास बग़ीचेकी सैर नही। खेतोंकी पगडंडियोंसे जाते समय बीच-बीचमे जैसे जंगली फूल दिखायी देते है उस तरह लघुनिबंधका काव्य होना चाहिए। इस लेखन-प्रकारमे जो विनोद हो वह पूरबी बारिशकी तरह नही होना चाहिए। इससे काम नही चलेगा। सुबह गिरनेवाली ओसकी तरह उसका स्वरूप होनेसे वह बड़ा खिलकर दीखता है। कोई कोई लघुनिबंध कहानी सरीखे दिखायी दे, तो अच्छा यही होगा कि उनमे कहानीके लिये आवश्यक होनेवाली एकाग्रता न होनी चाहिए। निबंधकी तरह यदि लघुनिबंधको भी तात्त्विक बैठक दी जाये, तो वे आकर्षक हो जाते हैं। परंतु उसमेका तत्त्वप्रतिपादन सरोवरमे खिलनेवाले कमलकी तरह मोहक लगना चाहिए, जंगलमे उगनेवाले झाड़ोंकी तरह नहीं।

३

किसी अच्छी बातके विषयमे उपदेश करना अलग है और उसे आचरणमे उतारना अलग बात है। इसलिये अच्छे लघुनिबधकी जो कसौटी मैने ऊपर सक्षेपमे कही है, उसपर मेरे लघुनिबध कहाँतक उतरते हैं, यह मैं नही कह सकता। परतु दो बाते निश्चित है। पहली, इस सग्रहमेके 'नया जेब', 'सावन', 'ऑसू,' 'मौनव्रत', 'खोटी अठन्नी', 'एक लाखकी बख्शिश', 'मृत्यु', 'तात्पर्य', 'वायु-लहरी', 'महापूर' इत्यादि निबध लिखते समय मुझे जो आनद हुआ था, उसका आज भी मुझे पूर्ण स्मरण है। दूसरी बात, लघुनिबध लिखनेकी मेरी इच्छा अभी तक तृप्त नही हुई है। तीस साल हो रहे हैं। परतु प्रत्येक नया लघुनिबध लिखते समय, अपने पहले निबध 'निर्णय दीजिये!' को लिखते हुए मेरी जो आतुर, किंचित् उन्मत्त, परतु सशक मनःस्थिति हो गयी थी, उसका मुझे अनुभव होता है। अनेक बार मुझे लगता है, मनुष्यके मनमे अमूर्ति रूपसे विचरण करनेवाली कल्पना-ओको शब्दोका रूप देनेवाला कोई यंत्र निकल जाये, तो क्या ही अच्छा हो जायेगा! फिर हम हररोज एक लघुनिबध लिख दिया करेगे। पर तुरत ही दूसरा मन कहता है, – 'कितना विक्षिप्त विचार है यह? लघुनिबध क्या कभी यॉत्रिक हो सकेगा? स्वच्छन्दता ही उसकी आत्मा है। स्वच्छन्दतामे ही उसका सौंदर्य और सामर्थ्य है।'

लेखकका व्यक्तित्व सुन्दर कल्पनासे अथवा अभिनव संवेदनासे जब विकसित हो जाता है तो उसमेसे आप ही आप लघुनिबध निर्मित होता है। खिले हुए हर-सिगारको क्षण-भर हिला देनेसे ही फूलोका छिडकाव हो जाता है। परतु यदि वह खिला हुआ न हो, तो उसे घडी भर हिलाते रहनेपर भी सिवा सूखे पत्तोके हाथ-मे और क्या आयेगा? लघुनिबंध-लेखन भी इसी तरह होता है। कही भी पढी हुई कहानियोको कथावाचककी तरह कहकर अथवा बहुत-सी जानकारीका व्यर्थ विस्तार पाठकोंके आगे फैलाकर अथवा किसी सिद्धान्तका शास्त्रोक्त खडन मडन करके लघुनिबध निर्मित नही होता। ऐसे निबधोमे लेखककी पुस्तकीय विद्वत्ताकी अपेक्षा उनके अंतरगकी रसिकताको ही अधिक अवसर मिलता है। शास्त्र-ज्ञानकी अपेक्षा उसकी आत्माका ही मूल्य अधिक माना जाता है! पाठकोके गुरु होनेके बदले उनका मित्र, नही जिगरी दोस्त होनेमे ही उसके यशका रहस्य होता है।

यह विशिष्ट मनोवृत्ति (Mood) जब सिद्ध हो जाती है, तब लेखक किस विषय-पर लिख रहा है, अथवा किस पद्धतीसे लिख रहा है यह प्रश्न नहीं रह जाता। उस लेखनको सुन्दर लघुनिबधका रूप आप ही आप प्राप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ, ए० पी० हरबर्ट अपने 'चित्रकला' निबधका प्रारभ ही, देखिये, कितने मजेदार ढगसे करते हैं:

'कहते हैं स्नानगृहमे हरएक मनुष्य गवैया हो जाता है। इसमे आश्चर्यकी कोई बात ही नहीं। गायन कलाकी तरह सरल चीज दुनियामें दूसरी नही है। उस परिमाणमे चित्रकला अवश्य बहुत कठिन है, समझे जनाब? पूर्ण अनुभवसे कह रहा हूँ मै। चित्रकलाकी उपासनामे मेरा बहुत समय खर्च हुआ है। मुझे कितनी ही कमिटियोंकी सभाओंमे हाजिर रहना पडता है। इसके साथ ही जो सार्वजनिक सभाएँ होती हैं वे अलग ही। अब आप ही कहिये, ऐसे स्थानोमे लबे-चौडे भाषण शुरू हो जानेपर चित्रकलाके सिवा दूसरी किस कलाकी उपासना करना मनुष्यको सभव है? जब भाषण हो रहा है उस समय यदि मै गाने लगा तो लोग मुझे पागलोमें गिनने लगेंगे। इसलिये ऐसे समय मै आरामसे बैठे बैठे चित्र खींचा करता हूँ! मै नहीं कहता, कि इस कलामे मै अभी निष्णात हो गया हूँ। परतु और थोड़े सभा-सम्मेलन पूरे हो जायँ, तो चित्रकलामे मै पूर्ण निष्णात हो जाऊँगा, इसमें मुझे ज़रा भी संदेह नहीं लगता!'

सभा-सम्मेलनोंके उबा देनेवाले कार्य-क्रमोपर मारी गयी यह मजेदार फटकार किसे अच्छी नहीं लगेगी? फटकार है जरूर! पर वह झब्बेदार कोड़ेकी है, है न?

यदि यह देखना हो कि विनोदकी तरह विचारोंकी नवीनताके कारण भी लघु-निबधपर कैसी रगत आ जाती है, तो रिचर्ड किंगके किसी भी संग्रहका कोई भी पृष्ठ उलटकर देख लीजिये। विचार-प्रवणता ही उसका मनोधर्म है, ठंड़के दिनोंमें सुबह जहाँ तहाँ ओस पड़ी हुई दीखती है न? उस तरह उसके विचार-मौक्तिक लगते हैं। उनमें ओसके बूँदोंकी मोहकता है, पर क्षण-भंगुरता नहीं है। कोई भी विषय हो, उसके बारेमे उसने जो विचारधारा व्यक्त की है, उसमे पाठकोंको आत्मीयता और आकर्षकताका संगम दिखे बिना नहीं रहता।

उसने मैत्रीकी प्रीतिसे जो तुलना की है, देखिये, वह कितनी मार्मिक है

' मैत्री और प्रीतिको तीन अवस्थाओमेसे जाना पडता है।

पहली अवस्था उन्माद की ! परतु वह जब समाप्त हो जाती है और सिंहावलोकन करनेकी दृष्टिसे मनुष्य जब उसकी ओर देखने लगता है, तब उसके मुँहसे सतोषकी सॉस निकले बिना नही रहती !

दूसरी अवस्था निराशाकी ! इस समय आकाक्षा और वस्तुस्थितिके बीचके अन्तरका मनको तीव्र रूपसे बोध होता है।

तीसरी अवस्था शान्त और सुखी स्थितप्रज्ञताकी ! इस समय अपनी लतापर लगे फूलों और कॉटोंकी मनुष्यको पूर्ण कल्पना हो जाती है। उसे विश्वास हो चुकता है कि कॉटोकी चुभनसे फूलोकी सुगन्धि अधिक है। और इस मधुर ज्ञानसे कि मुझमे अनेक दोष होते हुए भी लोग मुझसे प्रेम कर रहे हैं, उसके मनको अत्यन्त सुख मिलने लगता है।'

लिड, मिल्ने, बेलाक, गार्डिनर इत्यादि प्रसिद्ध अँग्रेज निबंधकारोंके लघु निबधोको सहजमे उलटकर देखिये। हरएकमे इसी प्रकारकी कोई विशेष आकर्षकता मनको प्रतीत होती है और हमें इसका भी तुरंत बोध हो जाता है कि उस विशेषिताकी आत्मा उस लेखकके विकसित व्यक्तित्वसे पैदा हुई है।

मैने कभी नही सोचा था कि इस प्रकारके अभिनव आकर्षक साहित्यागपर कोई कुछ तात्त्विक आक्षेप करेगा। परतु थोड़े दिनके पहले ही एक सुप्रसिद्ध लेखक मित्रने मुझे लिखा :

' आप कहते हैं कि बाह्यतः रुक्ष दीखनेवाले लौकिक जीवनके छोटे-छोटे भागोमे भी सौन्दर्य, विनोद, कारुण्य और तत्त्वज्ञानके सुवर्णकण मिलते हैं। इन विविध कणोको चुनकर मनुष्यको जीवनकी सम्पन्नता जँचा देना और उसे यह बोध करा देना कि जगमे नीरस कुछ नहीं है, लघुनिबन्ध-लेखकका मुख्य कर्तव्य है। परतु मुझे लगता है लघुनिबन्ध लिखनेवाले लेखक लोगोंकी हानि कर रहे हैं। जीवनके छोटे-बडे सुखपर प्रसन्न होनेवाले अल्पसतोषी लोगोकी हमारे देशको जरूरत नही। राष्ट्रमे असतुष्ट लोग होना चाहिए। अल्प-सतोषियोंसे कोई प्रगति नहीं होगी।'

उनका यह विधान पढ़कर क्षण-भर मुझे अपने आपपर ही क्रोध आया। यह चिन्ता मेरे मनमे बीच-बीचमे लगती ही रहती है कि दारिद्र्य और अज्ञानके पंकमे फॅसे हुए देशकी प्रगतिकी गाड़ीको आगे बढानेके लिये हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं। परतु इस पत्रसे मुझे यह नया ज्ञान मिला कि देशकी प्रगतिकी गाड़ीको हम पीछे खीच रहे हैं। मेरे मनमे आया—सत्कर्म करना कठिन होगा, परतु क्या सामान्य मनुष्यको इतनी सावधानी न बरतनी चाहिए कि मुझसे कम-से-कम कोई दुष्कर्म तो न हो? ज़ख्मको धोकर उसकी ठीक तरहसे मरहमपट्टी करनेके लिये डॉक्टरकी जरूरत हो, फिर भी डॉक्टरी न जाननेवाले मनुष्यको इतना तो जरूर ही मालूम होना चाहिए कि उसपर नमक न रगड़ा जाये।

छि, लघुनिबंध लिखनेका महत्पाप यदि हम न करते, तो बड़ा अच्छा होता। हमने राष्ट्रकी प्रगतिमें अनजाने रुकावट पैदा कर दी, लोगोको अल्प-सतोषी बनाकर एक प्रकारका देश-द्रोह कर डाला!

एक क्षणमे इस तरहके कितने ही विचार मेरे मनमें आ गये! लेकिन दूसरे ही क्षण मुझे मेरे मित्रके उस पत्रपर हँसी आयी। वैसे सोचा जाय तो लघुनिबधके विषयमें उनका यह दृष्टि-कोन पुराना ही है। हमारी कविता जितनी होनी चाहिए उतनी राष्ट्रीय नहीं है, इसलिये ख्यातनामा समालोचकोने पहले क्या कम शोर मचाया था? उस आलोचनाका ही यह नवीन अवतार है।

यह मुझे भी स्वीकार है कि ललित-साहित्य राष्ट्र-जीवनसे सर्वस्वमे अलिप्त नहीं रह सकता। परतु, यह आग्रह क्यों, कि राष्ट्रके पैरोंमे पराधीनताकी शृखलाएँ हैं, इसलिये साहित्यमे यहाँसे वहाँतक उनकी खनखनाहट ही सुनायी देनी चाहिए अथवा समाजके दलित वर्गके पेटमें आज भूखकी आग भड़की हुई है, इसलिये प्रत्येक ललितकृतिमें उसकी ज्वालाएँ दीखनी ही चाहिए? क्या, ऐसा आग्रह उचित होगा? राष्ट्रीय और सामाजिक आन्दोलनोंके प्रतिबिम्ब ललित-साहित्यमे अवश्य पड़ने चाहिए। विषमता, दरिद्रता और अज्ञानके चॅगुलमे बुरी तरहसे फॅसे हुए समाजकी छटपटाहट और तड़पको अपनी लेखनी द्वारा चित्रण करनेवाले कलाकार जितने पैदा होंगे उतने भारतीय साहित्यको आवश्यक ही हैं।

लेकिन यद्यपि यह सूर्यप्रकाशकी तरह स्पष्ट है कि इसके आगे कलाकारोंको केवल आत्मनिष्ठ बने रहनेसे काम नहीं चलेगा, फिर भी यह भूलकर कि वैयक्तिक संवेदनाक्षमता ललित-साहित्यके सृजनका एक महत्त्वपूर्ण भाग है और वह उसी